PUBLICATIONS DE L'INSTITUT FRANÇAIS D'INDOLOGIE N° 15. II

ÉTUDE SUR LES SOURCES ET LA COMPOSITION DU RĀMĀYAṆA DE TULSĪ-DĀS

par Charlotte VAUDEVILLE

TRADUCTION EN HINDI

par J. K. BALBIR

fasc. II

तुलसीदास रचित रामचरितमानस
का
मूलाधार व रचनाविषयक समालोचनात्मक
एक अध्ययन

(फ्रांसीसी भाषा में)

लेखिका : शालौत वोदविल
हिन्दी अनुवादक : जगवंश किशोर बलबीर

द्वितीय भाग

INSTITUT FRANÇAIS D'INDOLOGIE
PONDICHÉRY
1965

GANGANATHA JHA KENDRIYA
SANSKRIT VIDYAPEETHA LIBRARY
ALLAHABAD

गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ-पुस्तकालय,
प्रयाग ।

Acc. No. 27842
Call No. H.002 VAU/E.S.

PUBLICATIONS DE L'INSTITUT FRANÇAIS D'INDOLOGIE N° 15. II

ÉTUDE SUR LES SOURCES ET LA COMPOSITION DU RĀMĀYAṆA DE TULSĪ-DĀS

par Charlotte VAUDEVILLE

TRADUCTION EN HINDI
par J. K. BALBIR
fasc. II

तुलसीदास रचित रामचरितमानस
का
मूलाधार व रचनाविषयक समालोचनात्मक
एक अध्ययन

(फ्रांसीसी भाषा में)

लेखिका: शार्लोत वोद्विल
हिन्दी अनुवादक: जगवंश किशोर बलबीर

द्वितीय भाग

INSTITUT FRANÇAIS D'INDOLOGIE
PONDICHÉRY
1965

निवेदन

फ्रांसीसी मूल पारीस् शहर में सन १९५५ में एक जिल्द में छपा हुआ था। परं तु हिन्दी अनुवाद दोनों भागों में छपा करना पड़ा। प्रथम भाग तो सन् १९५९ में छपा गया था और दूसरा भाग तो कुछ डेर से अबी छपा गया है। हिन्दी अनुवाद के टिप्पणियों में फ्रांसीसी मूल में दिये हुये पत्राङ्कों को यथाप्रकार देना पड़ा। इन पत्राङ्कों के संबन्धी हिन्दी अनुवाद ग्रन्थ के पत्राङ्कों की सूचि इस भाग के अंत में दिया गया है।

H
087
VAU, E.S

27842
1-3-84

G. N. Jha Library
Verified By

अध्याय—८

रामचरितमानस का अरण्यकाण्ड

अयोध्याकाण्ड के अन्तिम पद्यों में, नन्दीग्राम में भरत की तपस्या का वर्णन है। पर अरण्यकाण्ड के आरम्भिक पद्यों में दृश्यपरिवर्तन होने पर हम राम और सीता के चित्रकूटस्थित आश्रम में पहुँचते हैं। मानस के अयोध्याकाण्ड और अरण्यकाण्ड का विषयव्यवच्छेद वाल्मीकि रामायण के बंगाली 'ख' तथा उत्तरपश्चिमी 'क' संस्करण के समान है, और उसके दक्षिणी संस्करण 'ग' से भिन्न है। परिणामत: कथा तर्कयुक्त तथा सामञ्जस्यपूर्ण होजाती है क्योंकि विषयव्यवच्छेद स्थलपरिवर्तन के अनुकूल है।

रामचरित मानस का अरण्यकाण्ड छोटा ही है, इसमें केवल ४६ पद्य हैं[1]: वाल्मीकि रामायण के दक्षिणी संस्करण में अरण्यकाण्ड तथा बालकाण्ड लगभग एक समान लम्बे हैं (बालकाण्ड में ७७ और अरण्यकाण्ड में ७५ सर्ग हैं); अध्यात्मरामायण के अरण्यकाण्ड में १० सर्ग हैं, और लंकाकाण्ड के बाद इस सारे ग्रन्थ में अरण्यकाण्ड ही सबसे लम्बा है।

वाल्मीकि रामायण के बंगाली व उत्तरपश्चिमी संस्करण के समान, मानस में भी, अरण्यकाण्ड में सीताहरण के पश्चात् राम के विलाप का वर्णन है, यद्यपि वाल्मीकि के दक्षिणी संस्करण तथा अध्यात्मरामायण में यह प्रसंग किष्किन्धाकाण्ड में लिया गया है। परन्तु वस्तुत: मानस का अरण्यकाण्ड, वाल्मीकि रामायण के किसी भी संस्करण से सर्वथा मिलता जुलता नहीं, क्योंकि मानस के अरण्यकाण्ड का अन्त पम्पासर के तट पर राम के पास नारद के आगमन के प्रसंग से होता है और यह न तो वाल्मीकि रामायण के किसी भी संस्करण के अरण्यकाण्ड में है और न अध्यात्मरामायण के।

अरण्यकाण्ड में पद्यव्यवस्था बहुत ही अनियमित है। ऐसे पद्य बहुत कम हैं जिन में चार चौपाइयों के बाद एक दोहा हो, अधिकतर पद्यों में चार से अधिक चौपाइयां और दो या इससे भी अधिक दोहे हैं। यहाँ पद्यों में, विशेषकर वन में युद्ध के वर्णन और राम की स्तुति वाले पद्यों में छन्दों का प्रयोग हुआ है, परन्तु ये सब छन्द हरिगीतिका ही नहीं है और न वे प्रत्येक २५ वें पद्य के बाद आते हैं, (बहुत ही कम छन्दों को छोड़कर) इन छन्दों में कवि 'तुलसी' का नाम भी नहीं आता।

---

[1] अयोध्याकाण्ड के पद्यों की अपेक्षा अरण्यकाण्ड के पद्य कुछ अधिक लम्बे हैं, पर कुल मिलाकर अरण्यकाण्ड, अयोध्याकाण्ड का एक पाँचवां भाग है।

अरण्यकाण्ड तथा इसके बाद के काण्डों में मुख्य प्रस्तुतकर्ता शिव हैं और वे पार्वती को कथा बताते हैं। यहाँ से लेकर, रामकथा, बालकाण्ड के प्रथम भाग में आरब्ध शिव-पार्वती संवाद के अन्तर्गत वर्णित हुई है।

परन्तु अरण्यकाण्ड से लंकाकाण्ड तक केवल शिव ही एकमात्र प्रस्तुतकर्ता नहीं हैं। पक्षिराज गरुड को कथा बताते हुए काक भुशुण्डि कभी कभी स्थानापन्न हो जाता है। अरण्यकाण्ड में, भुशुण्डि तीन स्थानों पर (२, ३; १७, ३; २८, ५) बोलना आरम्भ करता है यद्यपि उसकी वाणी निरुद्देश्य है।

कथा का सारांश

वन्दना—श्लोक १—शिव की वन्दना
श्लोक २—राम की वन्दना

कवि बताता है कि वह अब उन चरित्रों का वर्णन करेगा जो प्रभु राम ने वन में किये। इन्द्र के पुत्र जयन्त ने कौवे का रूप धारण कर सीता के चरणों में चोंच मारी तो खून बहने लगा, और वह भाग गया। पर राम ने बाण मारा। जयन्त सारे लोकों में भागा फिरा, पर अन्त में राम की शरण में आपहुँचा (१-२)।

राम, सीता व लक्ष्मण चित्रकूट से अत्रि मुनि के आश्रम में गये तो वहाँ अत्रि मुनि ने राम की स्तुति की (यह संस्कृत में है)। सीता ने अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया को प्रणाम किया। अनसूया ने स्त्रीधर्म के विषय में सीता को उपदेश दिया। अन्त में वे लोग वहाँ से विदा हुये (३-६)।

राम की विराध नामक असुर से भेंट का संक्षिप्त वर्णन। तत्पश्चात् राम शरभङ्ग मुनि से मिलते हैं, वे स्वर्ग में पहुँचने से पहले राम की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। मार्ग पर अग्रसर होते राम हड्डियों के एक ढेर को देखते हैं और उन्हें पता लगता है कि ये उन तपस्वियों की हड्डियां हैं जिन्हें राक्षसों ने मार डाला था इसपर राम प्रण करते हैं कि वे इस पृथिवी को राक्षसों से मुक्त करदेंगे। वे अन्य तपस्वियों के आश्रम में जाते हैं (७-९)।

राम अगस्त्य के शिष्य सुतीक्ष्ण के आश्रम में जाते हैं। वे इनका हार्दिक स्वागत करते हैं और राम की स्तुति करते हैं। फिर राम से अनन्य भक्ति का वर प्राप्त करते हैं। सुतीक्ष्ण वर मांगते हैं कि राम उनके हृदय में मानव रूप में ही रहें। तत्पश्चात्, सुतीक्ष्ण के साथ राम, सीता व लक्ष्मण अगस्त्य के आश्रम में जाते हैं और वहाँ अगस्त्य भी राम की महिमा का गान करते हैं। राम उनसे रहने के स्थान के विषय में पूछते हैं और ऋषि अगस्त्य दण्डकारण्य में पंचवटी में निवास करने को कहते हैं। सीता व लक्ष्मण के साथ राम वहाँ जाते हैं। वहाँ गृध्र राज जटायु से भेंट और उससे मैत्री करते हैं (१०-१३)।

राम पंचवटी में निवास करते हैं। एक दिन लक्ष्मण उनसे मुक्ति के साधनों को पूछते हैं। राम संक्षेप में ज्ञान-मार्ग की, और विस्तार से भक्ति के सुगम मार्ग की व्याख्या करते हैं (१४-१६)।

राम के सौन्दर्य से विकल शूर्पणखा राक्षसी सुन्दर रूप धर कर राम के पास आती है! राम और लक्ष्मण दोनों भाई उसका उपहास करते हैं। क्रुद्ध होकर वह अपना भयंकर रूप धारण कर लेती है।

लक्ष्मण उसके कान व नाक काट लेते हैं। प्रलाप करती वह खर व दूषण के पास जाती है। वे राक्षस इन दोनों भाइयों के विरुद्ध अपनी एक बड़ी भारी सेना भेजते हैं। लक्ष्मण तो सीता की रक्षा करते हैं और उधर राम राक्षसों की सेना का सामना करते हैं। एक भयंकर युद्ध छिड़ जाता है। राम के बाणों से राक्षसों के टुकड़े टुकड़े होजाते हैं और मरते समय, वे राम राम पुकारते जाते हैं। राम की विजय पर देवता सन्तुष्ट होते हैं और राम पुनः सीता के साथ वन में जीवन व्यतीत करने लगते हैं (१७-२०)।

शूर्पणखा रावण के पास जाती है। उस से जाकर वह अपने निरादर तथा राक्षसों की पराजय की चर्चा करती है और इसका बदला लेने को कहती है। रावण मन में यही विचार करता है कि यदि किसी ने खर और दूषण पर विजय पाती तो वह निश्चय ही भगवान का अवतार है; और यदि वह स्वयं भी उसके हाथों से पंचत्व को प्राप्त हो तो मुक्ति निश्चित है। अतः रावण मारीच के पास जाता है। इधर भविष्य को जानते हुए राम सीता से अग्नि में प्रवेश करने को कहते हैं और जब तक वे सारे राक्षसों का ध्वंस न करलें तब तक सीता को वहीं छुपे रहने को कहत हैं। सीता इस कथन का पालन करती हैं और अपनी एक छाया मूर्ति वहाँ छोड़ देती हैं, इस सब रहस्य का लक्ष्मण को भी ज्ञान नहीं (२०-२४)।

रावण अपनी युक्ति को मारीच से बताता है और उससे एक हिरन बनने को कहता हैं, इस प्रकार वह सीता-हरण में रावण की सहायता करेगा। राम को परब्रह्म-स्वरूप जानकर मारीच रावण की बात नहीं मानता। तब रावण धमकी देता है और अन्त में इसी आशा से कि वह भी राम के हाथों मरेगा, मारीच रावण की बात को मान लेता है (२५-२६)।

मारीच सोने के एक मृग का रूप धारण करता है। सीता को प्रसन्न करने के लिए राम उसका पीछा करते हैं और लक्ष्मण से सीता की रक्षा करने को कह जाते हैं। मारीच राम को दूर निकाल लेजाता है। बाण लगने पर वह लक्ष्मण को पुकारते हुये मरजाता है। इस ध्वनि से सीता को चिन्ता होती है और वह लक्ष्मण से अपने भाई की सहायता के लिए जाने को कहती हैं। तब सीता अकेली रह जाती हैं और साधुके वेष में रावण उनके पास आता है। पहले तो वह मीठी मीठी बातों से उन्हें अपने पक्ष में करना चाहता है और बाद में धमकी देकर; पर वह सब व्यर्थ रहता है। अन्त में वह अपने भयंकर रूप को धारण करता है, और सीता को अपने रथ पर बिठा कर अन्तरिक्ष में उड़जाता है। सीता के करुण क्रन्दन से आकर्षित होकर गृध्र जटायु सीता हरण में बाधा उपस्थित करता है और रावण से लड़ता है। पराजित होने पर वह तो गिर जाता है और रावण सीता को लेजाता है। शिलाओं पर वानरों को बैठे देखकर सीता अपना वस्त्र नीचे गिरा देती है। लंका में पहुंचकर जब रावण सीता को विचलित करने से हार जाता है तो सम्पूर्ण व्यवस्था करके उन्हें अशोक वाटिका में रखदेता है (२७-२९)।

लक्ष्मण के आने पर राम चिन्तित होते हैं और आश्रम में लौटकर व सीता को न पाकर उन्हें बहुत निराशा होती है। वे मरणासन्न जटायु से मिलते हैं और उससे ही उन्हें सारा समाचार प्राप्त होता है। राम ने जटायु को जीवन का वर दिया पर जटायु ने उसे स्वीकार नहीं किया। वह स्वयं हरि में परिणत होगया और वैकुण्ठ जाने से पहले उसने राम की स्तुति गाई (३०-३२)।

राम और लक्ष्मण सीता की खोज में लग जाते हैं। वे कबन्ध पर विजय पाते हैं। कबन्ध कहता है कि राम के दर्शनमात्र से ही वह दुर्वास ऋषि के शाप से मुक्त होगया है। इसपर राम उससे ब्राह्मणों का आदर करने को कहते हैं। तदुपरान्त राम तपस्विनी शबरी के पास जाते हैं। शबरी राम की स्तुति गाती है। तब राम उसे नवधा-भक्ति समझाते हैं और उससे सीता के विषय में पूछते हैं। शबरी

उन्हें पम्पासर जाकर सुग्रीव से सन्धि करने का परामर्श देती हैं। तत्पश्चात् वह योगाग्नि से देह त्याग करके हरिपद में लीन हो जाती है (३३-३६)।

लक्ष्मण के साथ राम अपनी यात्रा में अग्रसर होते हैं और सीता हरण पर विलाप करते हैं। राम, वसन्त से उल्लास पूर्ण वन की, कामदेव की व्यूह-रचना से विस्तार पूर्वक तुलना करते हैं। पम्पासर का वर्णन (३७-४०)।

पम्पासर के तट पर बैठे राम से मिलने वहाँ नारद आते हैं और उनकी वन्दना करते हैं। वे राम से प्रार्थना करते हैं कि राम-नाम ही प्रभु के सब नामों से बढ़कर हो और राम उनकी यह प्रार्थना स्वीकार करलेते हैं। उसके पश्चात् नारद राम से पूछते हैं कि पुरा काल में इन्होंने उनके विवाह में बाधा क्यों डाली; तब राम समझाते हैं कि वे उनकी रक्षा से ही प्रेरित हुए थे, क्योंकि नारी अत्यन्त दारुण दुःख देनेवाली है। अन्त में नारद के पूछने पर राम सन्तो (अर्थात् भक्तों) के लक्षण बताते हैं। तब नारद ब्रह्मलोक में वापस जाते हैं (४१-४६)।

हरि की भक्ति के उपदेश से यह काण्ड समाप्त होता है। राम की स्तुति का गान तथा श्रवण करने वाले को भक्ति का वर प्राप्त होता है। नारी से बचे रहने का और राम की स्तुति करने का उपदेश (४६, छन्द व दोहा)।

वन्दना

अरण्यकाण्ड की वन्दना पिछले काण्ड की वन्दना के सदृश है। इसमें भी संस्कृत में दो श्लोक हैं जिनमें से पहला शिव की और दूसरा राम की स्तुति में है। अयोध्याकाण्ड में "सर्वाधिप" "सर्वगत" कहकर शिव की वन्दना हुई है और तुलसी 'महादेव' मानकर उनसे रक्षा की विनती करते हैं। अरण्यकाण्ड में शिव को "धर्म तरु के मूल", "मोह के विजेता" और "प्रभु राम के प्रिय" (श्री रामभूप प्रिय) देव के रूप में सम्बोधित किया है।

अयोध्याकाण्ड में इन दोनों श्लोकों के पश्चात् दोहा आता है पर अरण्यकाण्ड में इन दो के स्थान पर एक सोरठा दिया गया है जिसमें शिव-पार्वती संवाद अकस्मात् आरम्भ हो जाता है—

उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति॥[1]

इसप्रकार की घोषणा यहाँ पर अप्रासंगिक और निरर्थक प्रतीत होती है। विचार यह होता है कि यहाँ इस सोरठे के अस्तित्व का कारण शिव-पार्वती संवाद को प्रस्तुत अथवा पुनः प्रस्तुत करना है।

अरण्यकाण्ड के छः प्रारम्भिक पद्य

पहले पद्य की पहली चौपाई पिछले काण्ड की संक्रामक है:—

---

[1] रा. च. मा. ३, सोरठा १।

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन॥

अत: अरण्यकाण्ड में अयोध्याकाण्ड की कथा का विस्तार ही हुआ है—यहाँ पर भी राम के "चरित" का ही उल्लेख है; ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्तुतकर्ता भी वही है, और उत्तम पुरुष के प्रयोग से अभिप्राय निश्चय ही कवि से है। इसप्रकार का संक्रमण बालकाण्ड के पद्य १८८, ३ और पद्य २०६, १ के समान है।[1]

चित्रकूट में राम व सीता के कालयापन का विवरण वाल्मीकिरामायण के बंगाली संस्करण के अयोध्याकाण्ड में (१०५, १-३०) दिया-गया है। पर यह विवरण उसके दक्षिणी संस्करण में और अध्यात्मरामायण में नहीं है। मानस में इसका संक्षिप्त संकेत है—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥[2]

इसी समय इन्द्र का पुत्र जयन्त ने कौवे के रूप में सीता पर आकस्मिक प्रहार किया और उनके चरणों[3] में चोंच मार दी जिससे रक्त बह निकला। कौवा भाग जाता है और राम का बाण उसका पीछा करता है।

टेसिटोरी[4] ने इस विषय में कहा है कि तुलसीदास ने वाल्मीकि रामायण के सीता तथा राम के मनोविनोद विषयक सर्ग के सम्पूर्ण पूर्वार्ध को केवल दो अर्धालियों में सारबद्ध करदिया और कौवे के कथानक से संबन्धित उत्तरार्ध को अधिक "विकसित तथा प्रचुर मात्रा में परिवर्तित" कर दिया है। यह कथानक वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड के उस स्थान पर पुन: दिया गया है जब हनुमान सीता से बात कर रहे होते हैं। और यह अवतरण, वाल्मीकि रामायण के तीनों संस्करणों में[5] एक समान है, यद्यपि यह वाल्मीकि रामायण के बंगाली संस्करण के अयोध्याकाण्ड (सर्ग १०५) के विवरण से कुछ भिन्न है। टेसिटोरी के विचार में सुन्दरकाण्ड का यह अंश "कथानक की अधिक अर्वाचीन व्याख्या है" और तुलसीदास ने इस ही अंश का अनुकरण किया है।

वस्तुत: वाल्मीकि के सुन्दरकाण्ड में और मानस के अरण्यकाण्ड में इस कथानक के वर्णन में काफ़ी अन्तर है यद्यपि कथा एक ही है। कौवे के भागने का वर्णन वाल्मीकि ने निम्नवत् किया है।

---

[1] दे० अध्याय ५ पृ० १०७।

[2] रा. च. मा. ३, १-२।

[3] वा. रा. में कौवे ने सीता के स्तन पर चोंच मारी, यह बात तुलसीदास को अश्लील प्रतीत हुई होगी।

[4] इं. ऐं. ४२ (१९१३), पृ० ७।

[5] वा. रा. उत्तरपश्चिमी संस्करण ५, ३५; बंगाली संस्करण ५, ३६; दक्षिणी संस्करण ५, ३८, २१-३९।

“इस कौवे के प्रति राम ने दर्भ फेंका और वह आकाश में उसका पीछा करने लगा। इस प्रकार पीछा किए जाने पर कौवा, शरण की खोज में कभी इधर व कभी उधर जाने लगा और इस प्रकार वह सारे ब्रह्माण्ड में घूमा। पिता द्वारा परित्यक्त और सभी परम ऋषियों द्वारा तिरस्कृत, वह तीनों लोकों में घूमा और अन्त में राम की शरण में पहुँचा। भूमि पर गिरते समय उसने राम की शरण मांगी और कृपापूर्ण रघुनाथ ने वध के योग्य उस पक्षी की रक्षा की। वह कौवा थक कर चूर होगया था, उसका रंग फीका पड़ गया था। राम ने उस से कहा—यह असम्भव है कि यह ब्रह्मास्त्र निष्फल होता, इसको अच्छी तरह जान लो। तब उन्होंने कौवे के दक्षिण नेत्र को निकाल दिया व उसकी आँख निकल ने से ही उसके जीवन की रक्षा की। उसने राम तथा राजा दशरथ की विनती की, और राम की आज्ञा प्राप्त होने पर वह अपने निवास को लौटा।”[1]

मानस में विलक्षण ढंग से इसका विस्तार हुआ है—

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं॥
भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥
काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥
मित्र करइ सत रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥
नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही॥
आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहि पाई॥
निज कृत कर्म जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी॥

कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम॥[2]

इस अंश का विषय तथा इसमें नारद का चित्रण, उत्तरकाण्ड की भूमिका का सा है: क्योंकि उत्तरकाण्ड में शिव पार्वती को बताते हैं कि पुराकाल में पक्षिराज गरुड़ ने नारद से राम की दिव्यता विषयक

---

[1] वा. रा. दक्षिणी संस्करण ५, ३८, ३१-३८।

[2] रा. च. मा. ३, २, १ तथा सोरठा।

सन्देहों को प्रगट किया था; इससे नारद ने कृपा से परिपूर्ण होकर गरुड़ को ब्रह्मा के पास जाने को कहा, पर ब्रह्मा ने उसे राम के पास भेजा[1] इसी उत्तरकाण्ड में आगे चल कर, भुशुण्डि ने स्वयं गरुड़ को बताया कि मैं प्रभु की माया के वशीभूत होगया था और अपने पंखों की शक्ति का आश्रय लेकर भी तीनों लोकों में उड़ने पर उस से बच न सका।[2]

ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदास ने कौवे के इस प्रसंग को, अथवा कम से कम उसकी कुछ विशेषताओं को, उस साम्प्रदायिक आधार से ग्रहण किया जिससे उत्तरकाण्ड का द्वितीय भाग प्रेरित हुआ। इस स्थल में भुशुण्डि का प्रस्तुतकर्ता के रूप में उपस्थित होना भी इसी दिशा की ओर संकेत करता है।

इस कथा से जो उपदेश मिलता है वह स्पष्ट है जो कोई भी राम की मैत्री को खो बैठा उसका सर्वस्व नाश होगया। राम के बिना मुक्ति सम्भव नहीं। मानस के अरण्यकाण्ड में कौवे की यह कथा प्रभु राम के प्रताप व गौरव को दर्शाती है।

चित्रकूट से राम के प्रस्थान के कारणों का उल्लेख वाल्मीकि तथा अध्यात्मरामायण में भिन्नतया हुआ है। वाल्मीकि रामायण में (२, ११७, १-३) राम, चित्रकूट के निवास से प्रस्थान इसलिए करते हैं कि वहाँ भरत तथा रानियों का दुःख पूर्ण संस्मरण हो आता है, और इसलिए भी कि उसके आस पास भरत की सेना के डेरा डालने से वह स्थान दूषित होगया था। अध्यात्मरामायण (२, ९, ७७-७८) में चित्रकूट में राम की उपस्थिति से बहुत सी भीड़ वहाँ आकर्षित होगई थी और उससे बचने के लिए राम ने वहाँ से प्रस्थान किया। मानस (३, ३, १) में भी राम के प्रस्थान का यही कारण बताया गया है।

इसप्रकार सीता व लक्ष्मण सहित राम वहाँ से चल पड़ते हैं और अत्रि ऋषि के आश्रम के पास पहुँचते हैं। अयोध्याकाण्ड (२, ३०८-३१०) के भरत-चरित में भरत के अत्रि ऋषि के आश्रम में जाने तथा वहाँ पर ऋषि से उपदेश प्राप्त करने का उल्लेख है। परन्तु यह नहीं बताया गया कि राम उन ऋषि के पास गये थे या नहीं—वाल्मीकि रामायण के समान, मानस में भी राम और अत्रि की भेंट भरत के प्रस्थान के **पश्चात्** होती है। वाल्मीकि ने अत्रि द्वारा राम के अभिनन्दन का संक्षेप से वर्णन किया है—

"अत्रि ऋषि के आश्रम में पहुँचने पर, राम ने नम्रता पूर्वक उनका अभिवादन किया और उधर अत्रि ऋषि ने पुत्रवत् राम का स्वागत किया।"[3]

अध्यात्मरामायण (२, ९, ८२) में अत्रि ऋषि राम को परब्रह्म जानकर अभिवादन करते हैं। मानस में ऋषि उनकी स्तुति गाते हैं जिसका प्रारम्भ तो एक (हिन्दी) सोरठे से होता है पर बाद में रचना संस्कृत के १२ अनुष्टुप छन्दों में है, यद्यपि यहाँ पर संस्कृत काफी ढीली और कहीं कहीं अशुद्ध भी है। भाषा तथा छन्द की इस विशेषता के अतिरिक्त यह 'अत्रिस्तुति' मानस की उन कम स्तुतियों में

---

[1] रा. च. मा. ७, ५८ इत्यादि, दे० अध्याय १३ पृ० २८४, २८५।

[2] वही ७, ७९ इत्यादि, दे० अध्याय १३ पृ० २९०।

[3] वा. रा. २, ११७, ५।

से एक है जो अध्यात्मरामायण पर कदापि आश्रित नहीं। इस स्तुति का अन्त एक संक्षिप्त "फल स्तुति" से होता है और यह बात उत्तरकाण्ड (१०८) की शिव के प्रति संस्कृत में रचित "ब्राह्मण स्तुति" के समान है।

आकार की दृष्टि से ग्राउज़[1] ने मानस के अरण्यकाण्ड की इस 'अत्रि स्तुति' की तुलना बौद्ध साहित्य की "गाथा" से की है। उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें कई ऐसे कथन हैं जो रामचरित मानस में प्रयुक्त नहीं हैं। यहाँ पर राम को ही केवल विष्णु से अभिन्न नहीं माना गया अपितु सीता को लक्ष्मी और राम की शक्ति समझा गया है। राम को शचीपति अर्थात् इन्द्र का छोटा भाई भी बताया है; सुविदित है कि वामनावतार की कथानुसार, विष्णु कश्यप के पुत्र हैं और इन्द्र कश्यप के ज्येष्ठ पुत्र। परन्तु राम के विषय में यह विशेषण मानस में केवल इसी स्थान पर प्रयुक्त हुआ है जब कभी तुलसीदास राम को विष्णु से अभिन्न बताते भी हैं तो वे यह ध्यान रखते हैं कि इन्द्र से उनका सम्बन्ध न जोड़ा जाय क्योंकि सम्पूर्ण कविता में इन्द्र का पक्ष हीन है। ऐसा अनुभव होता है कि यह 'अत्रि स्तुति' संस्कृत के किसी साम्प्रदायिक ग्रन्थ से लीगई है और यहाँ उसको जैसा का तैसा रखदिया गया है। यह स्तुति केवल एक पद्य में है और सम्भव है कि बाद में जोड़ी गई हो।

वाल्मीकि रामायण के दक्षिणी संस्करण में और अध्यात्मरामायण में अयोध्याकाण्ड की समाप्ति अनसूया द्वारा सीता को दिए गये स्त्री-धर्म-विषयक उपदेश से होती है। मानस के अरण्यकाण्ड में इस उपदेश ने बहुत सा स्थान लेलिया है, परन्तु कविता के इस स्थल पर, हस्तलिपियों में, व इसीकारण सम्पादित संस्करणों में भी पाठ भेद हैं। "**तुलसी ग्रन्थावली**" में, अनसूया का उपदेश तीन नियमित पद्यों में (७-९) दिया गया है और अन्तिम पद्य की समाप्ति दो सोरठों से होती हैं। **मानसाङ्क** में कुछ ऐसी अर्धालियों का अभाव है जो हस्तलिपियों में भी प्राप्त नहीं हैं। इस संस्करण में, इस अंश को केवल एक ही पद्य (५) में दिया गया है यद्यपि वह असाधारणतया लम्बा है (इसमें १९ अर्धालियां हैं) और उसकी समाप्ति दो सोरठों से हुई है—यह बात कुछ विचित्र सी है।

अनसूया के उपदेश के, **मानसाङ्क** में अनुपलब्ध पर **तुलसी-ग्रन्थावली** में सुरक्षित, दो अंशों में सीता की दिव्यता का कथन है—

("अत्रि) ऋषि पत्नी ने सब लोकों को आनन्द देने वाली और जगजननी सीता से स्वयं भैंट की और इसप्रकार हर्षित हुई जैसे रात्रि में कुमुदिनी . . . . .[2]"

"जैसे गरुड़ के सामने सर्प भाग जाते हैं ऐसे ही सीता के दर्शनमात्र से ही दुःख नष्ट होजाता है . . . . . ."[3]

मानस में, जब राम अत्रि-ऋषि से प्रस्थान की आज्ञा मांगते हैं तो ऋषि—पुनः—अपने दिव्य अतिथि के प्रताप का गान करते हैं—

---

[1] ई. टी. पृ० २९८ पाद टिप्पणी ३।

[2] रा. च. मा. (तुलसी ग्रन्थावली भाग १) ३, ७, ३।

[3] वही, ३, ७, ४।

जासु कृपा अज सिव सनकादी । चहत सकल परमारथ बादी ॥
तें तुम्ह राम अकाम पिआरे । दीन बंधु मृदु बचन उचारे ॥
अब जानी मैं श्री चतुराई । भजी तुम्हहि सब देव बिहाई ॥
जेहि समान अतिसय नहिं कोई । ता कर सील कस न अस होई ॥
केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी । कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी ॥[1]

संस्कृत की दीर्घ स्तुति के पश्चात् इस प्रकार का कथन निरर्थक प्रतीत होता है।

इसके बाद आनेवाले पद्यों से इस प्रसंग के सार का ज्ञान होता है; कुछ हस्तलिपियों में हरिगीतिका छन्द, या दोहे या सोरठे हैं। छन्द में अत्रि ऋषि अपने सुख पर आनन्दित होते हैं क्योंकि वे "मन, ज्ञान, व गुणों से परे" प्रभु के दर्शन पाने योग्य हुये, पर स्वयं तुलसी ने उपसंहार में कहा है—

जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई ।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई ॥
-कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल ।
सादर सुनहिं जे तिन्हपर राम रहहिं अनुकूल ॥
-कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप ।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर ॥

अयोध्याकाण्ड के छन्दों के समान छठे पद्य का छन्द भी हरिगीतिका है और इसमें तुलसी के नाम का निर्देश भी है। अयोध्याकाण्ड में हरिगीतिका छन्दों के पश्चात् नियमित रूप से एक सोरठा आता है। यदि इसीप्रकार छन्द के तुरन्त पश्चात् सोरठा ही आता तो यहाँ भी अर्थ अधिक सुन्दर बैठता।

छठे पद्य का दोहा एक प्रकार से उपसंहारात्मक है—

"कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल ।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल ॥"

इस उपदेश और मानस[2] के प्रथम दो काण्डों के उपसंहार की सदृशता प्रेक्षणीय है; इसलिए और भी अधिक कि इस उपदेश के द्वारा आमुख के प्रथम भाग की घोषणा भी सार्थवती होती है—

"तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन । बरनउँ रामचरित भवमोचन ॥" (१, २, १)

"(गुरु की चरण रज रूपी) उस अंजन से विवेक रूपी नेत्रों को निर्मल करके मैं संसार रूपी बन्धन से छुड़ाने वाले राम का वर्णन करता हूँ।" और

---

[1] रा. च, मा. ३, ६, ३-५। "अन्तरजामी" का प्रयोग व्युत्पत्ति अर्थ में हुआ है: सर्व-विद्यमान। मानस में इस शब्द का यह अर्थ अपवाद है। दे० अध्याय ७ पृ० १८८-१८९।

[2] दे० पृ० १३७ व १८४।

"बरनउँ रघुवर बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ" (१, २९, दोहा २)

"मैं रघुनाथ का निर्मल यश[1] वर्णन करता हूँ जिसके सुनने से कलियुग के पाप नष्ट हो जाते हैं।"

अत: प्रतीत ऐसा होता है कि अरण्यकाण्ड के इस (३, ६, दोहा) स्थल में, आमुख के प्रथम भाग में घोषित राम-चरित का, उपसंहार है। साथ में यह भी ध्यान देने की बात है कि यह चरित ठीक उसी स्थान पर समाप्त होता है जहाँ पर वाल्मीकि रामायण के दक्षिणी संस्करण तथा अध्यात्म रामायण का अयोध्याकाण्ड।

अधिकतर हस्तलिपियों में छठे सोरठे के पश्चात् एक दोहा और है:—

"अत्रि ऋषि ने आशीर्वाद दिया तब आकाश से पुष्प वृष्टि हुई और 'धन्य, धन्य, अतिकृपालु भगवान की जय हो' की ध्वनि हुई।"

हस्तलिपियों के पाठभेदों से ज्ञात होता है कि मूल की विचित्रता के कारण लिपिकारों को संकोच हुआ होगा। आपातत: मानस के अरण्यकाण्ड का प्रारम्भ, (और विशेषकर अत्रि ऋषि की कथा) ग्रन्थ की नई योजना के अनुकूल बनाने के लिये, पुन: लिपि बद्ध हुआ होगा, क्योंकि तब यह ग्रन्थ रामचरितमानस नामक शिव की पार्वती को बताई हुई कथा का आकार ग्रहण कर रहा था।

वन में राम व लक्ष्मण—तपस्वियों से भेंट

वन में राम की विराध राक्षस से भेंट का विवरण वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड में (३, २-४) विस्तार से दिया है। राम, सीता का हरण करने वाले, विराध को नष्ट करदेते हैं। अध्यात्मरामायण (३, १, १५ इत्यादि) में विराध, सीता का हरण नहीं करता पर उसके सीता की ओर बढ़ते ही, राम उसका वध करदेते हैं। प्रभु के हाथों से मरने पर विराध स्वर्गलोक को जाता है। मानस में यह कथा कुछ अस्पष्टतया वर्णित है—

मिला असुर बिराध मग जाता। आवतहीं रघुवीर निपाता॥
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥[2]

कुछ हस्तलिपियों में (विशेषकर "काशी" की हस्तलिपि में) इस स्थल पर विराध की कथा का सार वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण के वर्णन के सदृश है। यह कथा "**तुलसीग्रन्थावली**" (३, १४, ३ दोहा; १५; १६, १-४) में सुरक्षित है, परन्तु यह अंश प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। रा. न. त्रिपाठी[3] का अनुमान है कि तुलसीदास ने पहिले तो विराध की सम्पूर्ण कथा रची पर बाद में उसे हटा दिया, क्योंकि सीता के अग्निप्रवेश के पहले राक्षस द्वारा उनका अङ्गस्पर्श भक्तों को माया

---

[1] रा. च. मा. में "जसु" का प्रयोग प्राय: "चरित" अथवा "कथा" के पर्याय के रूप में हुआ है। दे० अध्याय ७ पृ० १४४।

[2] रा. च. मा. ३, ७, ३-४।

[3] भाग १ पृ० २३२।

नहीं होगा। परन्तु यह मानना अधिक सरल है कि तुलसीदास ने अध्यात्मरामायण के वर्णन को केवल दो अर्धालियों में संक्षिप्त करदिया क्योंकि अध्यात्मरामायण के अनुसार सीता का स्पर्शकरने से पहले हीं, राम ने विराध का वध करदिया और फिर उसको वैकुण्ठ प्रदान कर दिया। रामचरितमानस में और विशेषकर अरण्यकाण्ड में इसप्रकार के अत्यधिक[1] संक्षेपीकरण के कई अन्य उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

अग्नि में शरीर की आहुति देने से पहले राम की प्रतीक्षा करने वाले शरभङ्ग ऋषि की कथा मानस में अधिक स्पष्टतया वर्णित है। वाल्मीकि रामायण (३, ५, ३९) और अध्यात्मरामायण (३, २, ११-१२) में, राम का दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् शरभङ्ग यज्ञ की अग्नि में प्रवेश करता है और इन्द्र के रथ पर ब्रह्मलोक जाता है। मानस में, यह ऋषि "योग की अग्नि" से भस्मसात् होते हैं और वैकुण्ठ को जाते हैं, पर इससे पहले वह राम को "संकरमानस राज मराला[2]" कहकर उनकी स्तुति गाते हैं। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि विराध की कथा के समान यहाँ भी वैकुण्ठ से अभिप्राय राम-विष्णु के स्वर्गलोक से है।

शरभङ्ग के अन्त की व्याख्या करते हुए प्रस्तुतकर्ता इस विलक्षण वाक्य को कहता है—

ताते मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ॥[3]

इस अंश का वैष्णवधर्म-सम्बन्धी गूढ तत्व विशेष द्रष्टव्य है। शरभङ्ग को प्राप्त मुक्ति वही है जो सगुण या अवतारस्वरूप देव के उपासकों के लिए सुरक्षित है।[4]

शरभङ्ग के वैकुण्ठ चले जाने के पश्चात् राम दण्डकारण्य में हड्डियों का एक ढेर देखते हैं और उसके चारों ओर बैठे तपस्वियों से प्रश्न करते हैं। टेसिटोरी[5] की दृष्टि में इस अंश का सम्बन्ध वाल्मीकि-रामायण के अरण्यकाण्ड के छठे सर्ग (१६) से है जहाँ बहुत से तपस्वी राम की ओर दौड़ते हैं और राक्षसों से रक्षा की विनती करते हुए कहते हैं—

"आइए, शुद्धात्मा मुनियों के शरीरों को देखिए। इस वन के अनेक भयंकर राक्षसों ने उनका विविधप्रकार से वध किया हैं।"

टेसिटोरी के विचार में, यह कहकर कि राम ने वन में वस्तुतः हड्डियों का एक ढेर देखा, मानस के लेखक ने वाल्मीकि के चित्रण को "सजीव" करदिया है। परन्तु यहाँ पर वाल्मीकिरामायण की प्रतिध्वनि देखने का अनुमान निरर्थक है क्योंकि मानस के इस अंश का यथार्थ पूर्वरूप अध्यात्म-रामायण में प्राप्त है जहाँ राम मुनियों से कहते हैं—

"ये हड्डियाँ किन की हैं? और यहाँ कैसे पड़ी हैं"?[6]

---

[1] दे० कबन्ध की कथा ३. ३३, ३-४; दुन्दुभिकथा ४, ७, ६।

[2] रा. च. मा. ३, ८, १।

[3] रा. च. मा. ३, ९, १।

[4] दे० अध्याय ११ पृ० २६५ व अध्याय १३ पृ० ३०४।

[5] इं. ऐं. ४२ (१९१३) पृ० ८।

[6] अ. रा. ३, २, २०।

वाल्मीकि रामायण (३, ७) में, राम सुतीक्ष्ण मुनि के पास जाते हैं, राम की प्रतीक्षा में ही यह मुनि ब्रह्मलोक नहीं गये थे। अध्यात्मरामायण (३, २, २६) में सुतीक्ष्ण को रामनाम के मन्त्र की उपासना में तत्पर अगस्त्य का एक शिष्य कहा है।

दण्डकारण्य में राम व सुतीक्ष्ण की भेंट का वर्णन मानस में बहुत ही मौलिक ढंग से हुआ है। तुलसी के लिए सुतीक्ष्ण सभी भक्तों में से अधिक नम्र है। इन्होंने राम का आश्रय लिया है और वे केवल राम के प्रसाद से ही सब कुछ प्राप्त करने की आशा लगाये बैठे हैं।

हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥
सहित अनुज मोहिं राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥
नहि सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥
होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥[1]

अपने प्रभु के दर्शन करने की कल्पना से भक्त सुतीक्ष्ण आनन्दविभोर होगये और मदमस्त व्यक्ति की भांति आचरण करने लगे। वृक्ष के पीछे से राम ने उन्हें देखा और (अपने मानवरूप को) उनके हृदय में प्रगट करदिया जिससे सुतीक्ष्ण क्षण भर में ध्यान मग्न होगये। राम उनके पास गये परन्तु उस आन्तरिक दर्शन से अभिभूत मुनि को उनके आगमन का तब तक आभास नहीं हुआ जब तक राम ने अपने राजरूप को छिपाकर अपने चतुर्भुज रूप को प्रगट नहीं किया—

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें॥
आगे देखि राम तन स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिवर बड़भागी॥[2]

बालकाण्ड में कौसल्या के समान यहाँ पर सुतीक्ष्ण को प्रभु के दिव्य स्वरूप की अपेक्षा उनका मानव (अवतार) स्वरूप अधिक रुचिकर है। वे अपने इष्टदेव "भूप राम" भक्त हैं जैसे शिव व भुशुण्डि के इष्टदेव "बाल राम" हैं।

अध्यात्मरामायण में सुतीक्ष्ण का चित्रण ऐसा ही है, वहाँ वे अवताररूप राम के भक्त हैं। राम की स्तुति गाते समय वे अपने भावों की अभिव्यक्ति करते हैं—

"हे राम, आप रूप रहित हैं तथापि अपनी ही माया के विलास से धारण किये, आपके मनोहर मनुष्यवेशधारी स्वरूप को मैं देख रहा हूँ . . . . . . । . . . . . . हे राम,

---

[1] रा. च. मा. ३, १०, २-५।

[2] वही ३, १०, १०-११

जो लोग आपके स्वरूप को देश काल आदि समस्त उपाधियों से रहित और चिद्घन और प्रकाश स्वरूप जानते हैं, वे भले ही वैसा जानें। किन्तु मेरे हृदय में तो, आज जो प्रत्यक्ष रूप से मुझे दिखाई दे रहा है, यही रूप भासमान होता रहे। इसके अतिरिक्त मुझे और किसी रूप की इच्छा नहीं है।"[१]

इसी समान मानस में भी सुतीक्ष्ण राम के यश का गान करते हैं—

जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी। सब के हृदयँ निरंतर बासी॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम काननचारी॥
जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी॥[२]
जो कोसलपति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना॥[३]

अध्यात्मरामायण तथा मानस दोनों की स्तुतियाँ प्रमुखतया समान हैं: यद्यपि सुतीक्ष्ण विश्वात्मा, परब्रह्म के ध्यान में निरत हैं तथापि उनका प्रेम राम के मानवस्वरूप से है; वे इस ही रूप की स्तुति करते हैं और उसके दर्शन से ही मुग्ध हैं।

वाल्मीकि रामायण में (३, १२) राम तीसरे मुनि, सुतीक्ष्ण के गुरु अगस्त्य ऋषि के यहाँ जाते हैं। अध्यात्मरामायण (३, ३, २० इत्यादि) में अगस्त्य सृष्टि की व्याख्या करते हैं—यह सृष्टि परब्रह्म राम की "शक्ति", "प्रकृति" अथवा "माया" का परिणाम है। माया के दो स्वरूप हैं—'अविद्या' और 'विद्या'। 'अविद्या' से प्राणी मोह को प्राप्त होता है परन्तु 'विद्या' से उसको मुक्ति प्राप्त होती है। पर भक्ति ही 'विद्या' की प्राप्ति का सकल साधन है: अत एव अगस्त्य राम से भक्ति का वर माँगते हैं जिससे उन्हें मुक्ति प्राप्त होगी।

इसी प्रकार, मानस में भी अगस्त्य ऋषि राम के प्रताप की तथा उनकी माया की सार्वभौम शक्ति का गान करते हैं, पर वे सृष्टि की व्याख्या नहीं करते और न यह कहते हैं कि माया राम की "शक्ति" है। यदि वे माया की शक्ति का वर्णन करते हैं तो इसलिये कि इससे राम के प्रताप का महत्व बढ़े क्योंकि माया राम के अधीन है—यहाँ तक कि 'काल' भी जो सब प्राणियों को ग्रसित कर लेता है राम के सम्मुख कांपता है। अंत में, अगस्त्य कहते हैं कि वे राम में परब्रह्म को देखते हैं—पर अत्रि व सुतीक्ष्ण के समान, 'निर्गुण' स्वरूप की अपेक्षा, राम का 'सगुण' स्वरूप ही उन्हें भी अधिक रुचिकर है, इसी स्वरूप की वे उपासना करते हैं।[४]

अध्यात्मरामायण के समान मानस में, राम की इन तीनों—अत्रि, सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्य ऋषियों से भेंट का विवरण अरण्यकाण्ड का एक अखण्डभाग प्रतीत होता है—तुलसी ने अध्यात्मरामायण से

---

[१] अ. रा. ३, २, २७-३४।

[२] "सगुन अगुन उर अन्तर जामी"—मानस का यह ऐसा पद है जहाँ पर सगुण का अर्थ "अवतरित" नहीं है, परन्तु यह प्रयोग परब्रह्म के निर्गुण स्वरूप के विरोध में उसके सगुण (लौकिक) पक्ष का द्योतक है। दे० अध्याय १ पृ० १६।

[३] रा. च. मा. ३, ११, ९-१०।

[४] रा. च. मा. ३, १३, ३-९।

ही इस अंश का लिया है; इन तीनों की भेंट के विवरण से मुक्ति के साधनस्वरूप, रामभक्ति के गुण का तथा निर्गुण स्वरूप की अपेक्षा सगुणस्वरूप के प्राधान्य का ज्ञान प्राप्त होता है। फिर भी, ज्ञानमार्ग की तुलना में भक्ति की उत्कृष्टता, अध्यात्मरामायण की अपेक्षा मानस में अधिक सुस्पष्टतया अभिव्यक्त हुई है।

पञ्चवटी में लक्ष्मण को राम का उपदेश

गृध्र जटायु से राम की भेंट का वर्णन वाल्मीकिरामायण के एक पूरे सर्ग में दिया गया है (३, १४) पर मानस में इसका उल्लेख संक्षिप्त है—

गीधराज सैं भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ॥[1]

वाल्मीकि रामायण (३, १७, ३) में केवल यह कहा गया है कि "राम इस पर्णकुटी में सुख से रहे और वहाँ पर लक्ष्मण के साथ उन्होंने कई प्रकार की "कथाएँ" कीं। अध्यात्मरामायण में इन में से एक कथा का विवरण भी दिया है। एक दिन, लक्ष्मण राम के पास गये और उनसे नित्य आध्यात्मिक समस्याओं के विषयों में पूछने लगे—

"हे भगवन्, मैं आपसे मोक्ष के निश्चित साधन सुनना चाहता हूँ; अत: हे कमलनयन, आप उसका संक्षेप से वर्णन कीजिये। हे रघुश्रेष्ठ, आप मुझे भक्ति, और वैराग्य से ओतप्रोत विज्ञानयुक्त ज्ञान सुनाइये: संसार में आपके अतिरिक्त इस विषय का उपदेश करने वाला और कोइ नहीं है।"[2]

अध्यात्मरामायण (३, ४, १९-४५) के अनुसार, पञ्चवटी में लक्ष्मण को राम का उपदेश मुक्ति के वेदान्तीय सिद्धांत की एक विस्तृत व्याख्या है। इस उपदेश के प्रथम भाग में, राम ज्ञानमार्ग का अर्थात् ज्ञान द्वारा मुक्ति की प्राप्ति के अथवा जीव व ब्रह्म की आधारभूत एकता के विज्ञान का विशदीकरण करते हैं। दूसरे भाग में ज्ञान के इस कष्टदायक व विकट मार्ग की तुलना में भक्ति के द्रुतगामी व सुनिश्चित मार्ग का प्रतिपादन करते हैं—

"हे रघुनन्दन लक्ष्मण, तुम्हें मैंने यह ज्ञान, विज्ञान, और वैराग्य के सहित परमात्मास्वरूप अपना मोक्षस्वरूप सुनाया। परन्तु जो लोग मेरी भक्ति से विमुख हैं उनके लिये मैं इसे अत्यन्त दुर्लभ मानता हूँ। जिस प्रकार नेत्र होते हुये भी लोग रात्रि के समय चोर आदि के चिह्न भली प्रकार नहीं देख पाते, दीपक होने पर ही उस समय वह दिखाई देता है, उसी प्रकार मेरी भक्ति से युक्त पुरुषों को ही आत्मा का सम्यक् साक्षात्कार होता है......।"[3]

तत्पश्चात् इस अनुपम भक्ति की प्राप्ति के साधनों की गणना करते हैं—

"मेरे भक्त का संग करना, निरन्तर मेरी और मेरे भक्त की सेवा करना, एकादशी अदि का व्रत करना, मेरे पर्व-दिनों को मनाना, मेरी कथा के सुनने, पढ़ने और उसकी

---

[1] रा. च. मा. ३, १३ दोहा।

[2] अ. रा. ३, ४, १७-१८।

[3] अ. रा. ३, ४, ४५-४६।

व्याख्या करने में सदा प्रेम करना, मेरी पूजा में तत्पर रहना, मेरा नाम कीर्तन करना, इस प्रकार जो निरन्तर मुझ में लगे रहते हैं उनकी मुझ में अविचल भक्ति अवश्य हो जाती है। इसके पश्चात् क्या रह जाता? मेरी भक्ति से युक्त पुरुष को ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य आदि की शीघ्र प्राप्ति होती है और फिर वह मोक्ष प्राप्त करता है।"[१]

अध्यात्मरामायण की इस "गीता" की सुस्पष्ट प्रतिध्वनि मानस में प्राप्त होती है; पञ्चवटी में लक्ष्मण राम के पास जाकर मुक्ति के सिद्धांत के विषय में उनसे प्रश्न करते हैं—

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं॥
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया॥
ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥[२]

अध्यात्मरामायण के समान, मानस में भी, राम मुक्ति के वेदान्तीय सिद्धांत की—यद्यपि बहुत ही गूढ़ प्रकार से—व्याख्या करना आरम्भ करते हैं—

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भव कूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥
ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥[३]
माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥
धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥[४]

ज्ञान मार्ग की तुलना में राम, भक्ति के द्रुतगामी और सुनिश्चित मार्ग का प्रतिपादन करते हैं—

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥

---

[१] अ. रा. ३, ४, ४८-५१।
[२] रा. च. मा. ३, १४, ३, दोहा।
[३] दे० श्रीमद्भगवद्गीता १३, ७-११।
[४] रा. च. मा. ३, १५, २ दो०; १६, १।

सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला ॥[१]

अध्यात्मरामायण के समान, फिर राम इस भक्ति के साधनों की गणना करते हैं—

भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा ।
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं ॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहं जानै दृढ सेवा ॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर वस मैं ताकें ॥
बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ॥[२]

तुलसी ने अध्यात्मरामायण का समीप से अनुकरण किया है, दोनों "गीताओं" में मुख्यतया सादृश्य है। परन्तु दोनों स्थानों में ज्ञान व भक्ति का सम्बन्ध एक समान विधि से प्रतिपादित नहीं किया गया है। अध्यात्मरामायण के अनुसार, ज्ञानप्राप्ति के साधनों में रामभक्ति की गणना हुई है। निस्सन्देह भक्ति एक विशेष साधन है, परन्तु साधन ही तो है। कवि ने उसे एक दीपक के समान बताया है जिसकी सहायता से पार्थिव जीवन के अन्धकार में से आत्मा को अलग पहचाना जा सकता है। अन्ततो गत्वा मुक्ति ज्ञानप्राप्ति पर ही निर्भर है—.

"मेरी भक्ति से युक्त पुरुष को ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य अदि की शीघ्र प्राप्ति होती है और फिर वह मोक्ष प्रात करलेता है।"[३]

इसके विरुद्ध, तुलसीदास ने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को ही प्रधानता दी है। राम-भक्ति—

"सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ॥[४]

इस उपदेश के उपसंहार से तुलसीदास के निजी विचारों की स्पष्टतया अभिव्यक्ति हो जाती है; उनके अनुसार, ज्ञान नहीं अपितु भक्ति ही वह लक्ष्य है जिसके लिये सारे कर्म तथा ध्यान आवश्यक है—प्रभु राम के प्रति समर्पण ही सर्वोच्च और सर्वोत्कृष्ट भक्ति है।

---

[१] वही ३, १६, १-२।
[२] वही ३, १६, ३ दो०।
[३] अ. रा. ३, ४, ५।
[४] रा. च. मा. ३, १६, २।

राक्षसों से युद्ध—सीताहरण

वाल्मीकिरामायण (बंगाली संस्करण, सर्ग २३) के समान, मानस में, राक्षसी शूर्पणखा रमणीय रूप धारण करती है और मुस्कराती हुई राम व लक्ष्मण दोनों भाइयों के पास जाती है—यह बात न तो वाल्मीकि रामायण के दक्षिणी संस्करण में बताई गई है और न अध्यात्मरामायण में। इस स्थल पर काक भुशुण्डि अकस्मात् उपस्थित होकर यह विचार प्रकट करता है—

> भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥[1]

वाल्मीकि रामायण में, शूर्पणखा का प्रतीकार करने के लिए, राक्षस दो बार आक्रमण करते हैं—पहली बार वे केवल १४ थे और दूसरी बार १४ हज़ार (३, २०, व २२-३०)। अध्यात्मरामायण में इन दोनों आक्रमणों की कथा को एक ही स्थान में समाविष्ट कर दिया गया है (३, ५, २६ इत्यादि), और मानस में भी वर्णन अध्यात्मरामायण के समान है—यहाँ खर व दूषण के नेतृत्व में १४,००० राक्षसों के युद्ध का वर्णन तीन (३, १८-२०) अनियमित पद्यों में, दिया गया है—अट्ठारहवें पद्य में अंतिम चौपाई (७) के पश्चात् एक हरिगीतिका छन्द व उसके बाद एक सोरठा है; उन्नीसवें पद्य में भी एक हरिगीतिका छन्द है और उसके बाद दो दोहे हैं; तथा बीसवें पद्य में, जहाँ राम व राक्षससेना का भयंकर युद्ध वर्णित है, सात "तोमार"[2] और उनके बाद ४ हरिगीतिका छन्द और दो दोहे आते हैं।

राम के बाणों के परिणामस्वरूप शत्रुसेना के विध्वंस का वर्णन वाल्मीकि रामायण (३, १५-२६) में बीभत्सपूर्ण है। तुलसी उससे भी अधिक आगे बढ़ गए हैं—उन के ग्रन्थ में बीभत्स चरम सीमा पर पहुँच गया—

> कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं।
> बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं॥
> रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
> जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयकर गिरा॥
> अंतावरीं गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं।
> संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं॥[3]

वर्णन की कई बातें प्रत्यक्षरूपेण वाल्मीकि रामायण से ली गई हैं। तुलसी कहते हैं कि राक्षस "पहाड़ों के समान गिर रहे थे" (रा. च. मा. ३, २०, तोमार ५; वा रा. संस्करण 'ख', ३, ३१, २५-२६), और देवता यह देखकर डर रहे थे कि राक्षस तो चौदह हज़ार थे पर राम अकेले (रा. च.

---

[1] वही, ३, १७, ३।

[2] चार पादों का एक छन्द जिसमें प्रत्येक दो चरण समान होते हैं, प्रत्येक पाद में एक सगण और दो जगण होते हैं, परन्तु इसके अपवाद भी हैं।

[3] रा. च. मा. ३, २०, छन्द १-२।

मा. ३, २०, हरिगीतिका ४; वा. रा. संस्करण 'ग', ३, २४, २३-२४)। इस अंतिम विषय में टेसीटोरी[1] ने कहा है कि मानस में देवों के भय का उल्लेख ऐसे समय पर किया गया है जब कि राम ने राक्षसों की सेना का लगभग सर्वनाश कर दिया था। वाल्मीकि रामायण के समान, मानस में राम जादू का आयुध लेते हैं और अद्भुत प्रकार से युद्ध समाप्त कर देते हैं—

सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी ॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक करयो ।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयो ॥[2]

वाल्मीकि रामायण (संस्करण 'ख' ३, ३१, ४६-४७) के अनुसार यह गन्धर्वशस्त्र का प्रभाव है (संस्करण 'ग' में इस का उल्लेख नहीं है)—राम ने शत्रुओं पर एक मायावी शस्त्र फेंका, जिससे राक्षस एक दूसरे पर गिर पड़े और 'राम! राम!' चिल्लाते रहे (अयं रामोऽयं रामः)। इसी प्रकार, मानस में भी कहा गया है कि राक्षस राम, राम, कहते हुये मरे और इस प्रकार उन्हें मोक्षपद प्राप्त हुआ।[3]

यहाँ वाल्मीकि पर तुलसीदास की निर्भरता निश्चित है, परन्तु हिन्दी के कवि ने एक बात को विशेष महत्व दिया है कि मरते समय राम के नाम के उच्चारण के प्रसादस्वरूप ही सारे राक्षस निर्वाण पद को प्राप्त करते हैं।

अपने भाई रावण से शूर्पणखा की बातचीत के विवरण में, वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण की अपेक्षा मानस में कुछ मौलिकता है। क्योंकि वाल्मीकि रामायण (३, ३३ व ३४) में और अध्यात्म रामायण (३, ५, ४६) में राक्षसी, सीता के शारीरिक सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन करने के पश्चात् रावण से उनका हरण करने व अपनी पत्नी बनाने को कहती है। इसके विरुद्ध, मानस में, शूर्पणखा सीता के सौन्दर्य का संक्षिप्त वर्णन देती है; उसका ध्येय रावण में कामवासना की उत्तेजना करना नहीं, बल्कि उसके गर्व को स्फूर्ति देना है। वह राम की युद्धकुशलता का वर्णन करती है और घोषणा करती है कि मुझे तुम्हारी बहन जानकर ही, उपहास करने के लिये, लक्ष्मण ने मुझे कुरूप कर दिया (३, २२, २-५)।

अध्यात्म रामायण में, शूर्पणखा की बातों से चिन्तित रावण रात में सो नहीं सका। वह मन में विचार करने लगा—यह राम, जिसने अकेले ही अजेय खर, तथा उसकी सेना को पराजित कर दिया कोई मानव नहीं, परन्तु मेरा नाश करने के लिये अवतार लिये ब्रह्मा ही है; अतएव उससे बचने का कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिए—

“यदि परमात्मा द्वारा मैं मारा गया तब तो मैं बैकुण्ठ का राज्य भोगूंगा नहीं तो चिरकाल पर्यन्त राक्षसों का राज्य तो भोगूंगा ही। इसलिये, मैं राम के पास अवश्य चलूंगा। सम्पूर्ण राक्षसों के

---

[1] इं. एं. ४२ (१९१३) पृ० ९ (४७)।

[2] रा. च. मा. ३, २०, हरिगीतिका ४।

[3] रा. च. मा. ३, २० दोहा—“राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।”

स्वामी रावण ने इस प्रकार विचार कर भगवान राम को साक्षात् परमात्मा हरि जानकर विरोध बुद्धि से राम के पास जाने का निश्चय किया क्योंकि भक्ति के द्वारा भगवान शीघ्र प्रसन्न नहीं हो सकते।"[1]

तुलसीदास ने यहाँ पर अति समीप से अध्यात्म रामायण का अनुकरण किया है—

गयउ भवन अति सोच बस नीद परइ नहिं राति ॥

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं ॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ विनु भगवंता ॥
सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ॥

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥[2]

यहाँ रावण के चित्रण से ज्ञात होता है कि उसके राक्षस शरीर के कारण ही वह राम का उपासक नहीं हो सका; और वह रामका शत्रु होना इसलिये चाहता था कि वैष्णव मान्यता के अनुसार "इष्टदेव का क्रोध उनके स्नेह के समान है"। रावण के राम शत्रु हैं इस का यह कारण तुलसीदास ने अध्यात्मरामायण के आधार पर बताया है। यहाँ पर उन सब कथाओं का कोई उल्लेख नहीं जो बालकाण्ड के प्रथम भाग में वर्णित हैं और जिनमें रावण को ब्राह्मण के शाप के वशीभूत कहा गया है।[3] इसके अतिरिक्त ऐसा भी प्रतीत नहीं होता कि तुलसीदास के विचार में "निशाचरी शरीर" प्राप्त करने से किसी को राम की भक्ति में बाधा पड़े—रावण का भाई, राक्षस भक्त विभीषण इस का प्रमाण है कि राक्षस शरीर प्राप्त करने पर भी व्यक्तिविशेष राम का भक्त हो सकता है।[4]

इस प्रकार रावण संकल्प कर लेने के पश्चात् सहायतार्थ मारीच के पास जाता है—

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥[5]

अध्यात्म रामायण में सीता को राम, रावण के आगमन की पूर्वसूचना देते हैं और उनसे अग्नि में प्रवेश कर तब तक वहाँ रहने को कहते हैं जब तक वे लंका से न लौट आवें। रावण केवल कृत्रिम सीता का हरण करता है—

---

[1] अ. रा. ३, ५, ६०-६१।
[2] रा. च. मा. ३, २२, दोहा; २३, १-३।
[3] दे० अध्याय ४ प्रतापभानुचरित पृ० ८३ इत्यादि।
[4] दे० अध्याय १० पृ० २३१-२३२।
[5] रा. च. मा. ३, २३, ४।

"इधर राम ने भी रावण का सारा षड्यंत्र जानकर एकांत में जानकी से कहा—'हे सीते, मैं जो कुछ कहता हूँ वह सुनो। रावण तुम्हारे पास भिक्षु का रूप धारण करके आयेगा, अतः तुम, अपने समान आकृति वाली अपनी छाया को कुटी में छोड़कर अग्नि में प्रवेश कर जाओ, और मेरी आज्ञा से वहाँ अदृश्य रूप से एक वर्ष रहो। तदनन्तर रावण के मारे जाने पर, तुम मुझे पूर्ववत् पा लोगी।' राम के वचन सुनकर सीता ने वैसा ही किया। वे मायामयी सीता को बाहर कुटी में छोड़कर स्वयं अग्नि में अन्तर्हित हो गईं . .।"[1]

इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि 'मायामयी' सीता के हरण से राम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उनका विलाप कृत्रिम रहा। वास्तविक सीता लंकाकाण्ड के अन्त में अग्नि परीक्षा के समय पुनः प्रगट होंगी—उस समय अग्नि देव राम को सीता लौटावेंगे। अध्यात्म रामायण में इस कथानक का स्पष्ट ध्येय, परब्रह्म की शक्ति सीता को, उस निरादर और दोष से सुरक्षित रखना है जो वाल्मीकि रामायण में रावण के कुकर्म के कारण उन्हें लाञ्छित करता है। यही कथा अद्भुत रामायण[2] में भी मिलती है। कदाचित् यह कथा राम-सम्प्रदाय में प्रचलित रही हो। प्रतीत होता है कि तुलसी ने यह कथा अध्यात्म रामायण से ली—

लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद॥

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥[3]

वाल्मीकि रामायण (३, ३७-३९) में, जब रावण मारीच को अपनी युक्ति से अवगत कराता है तो यह उसका समर्थन नहीं करता, मारीच राम के गुणी व्यवहार का तथा भयंकर शक्ति का वर्णन करता है क्योंकि जब राम शिशु ही थे तभी मारीच ने उनकी शक्ति का प्रभाव देखा था (यह बालकाण्ड के ३० वें पद्य की ओर संकेत है जहाँ कहा गया है कि राम मारीच तथा सुबाहु पर विजयी हुये)।

अध्यात्म रामायण (३, ६, १५ इत्यादि) में, मारीच रावण की योजना का विरोध करता है, (वा. रा. के समान) वह यहाँ पर भी राम की शक्ति के पिछले अनुभव का स्मरण करता है; वह बताता है कि राम साधारण व्यक्ति नहीं, पर प्रभु-हरि का अवतार हैं, ऐसा उसे नारद से पता चला।

---

[1] अ. रा. ३, ७, १-४।

[2] इस रामायण के १६ वें सर्ग में हनुमान राम से कहते हैं कि सीताहरण मायावी है—देखो ग्रियर्सन, "औन दि अद्भुत रामायण" बु. स्कु. ओ. रि., ४—१९२६-१९२८, पृ० ११-२७।

[3] रा. च. मा. ३, २३, दोहा; २४, १-३।

नारद ने मारीच को यह रहस्य बताया हो ऐसा उल्लेख मानस में नहीं है फिर भी मारीच रावण के सामने यही कहता है कि राम "ते नररूप चराचर ईसा"[१] हैं।

वाल्मीकि रामायण में, यदि मारीच रावण का आदेश मानता है तो उसका कारण केवल भय ही है। अध्यात्म रामायण के अनुसार मारीच अपनी "आत्मा के मोक्ष" के लिए उसका आदेश मानता है क्योंकि राम के हाथों मृत्यु पाने से मोक्ष निश्चित है। मानस में भी मारीच अपने मोक्ष की आकाँक्षा करता है और प्रभु राम का दर्शन करने की आशा से वह सुखी है—

मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन॥[२]

जब राम इस छली मृग के पीछे जाते हैं तो उन्हें ज्ञात रहता है कि भविष्य में क्या कुछ होने जा रहा है—

तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन॥[३]

अतः रामकथा के इस अंश में, मानस में अध्यात्म रामायण का दृष्टिकोण स्वीकृत हुआ लगता है, दर्शन तथा धर्म प्रतिपादन की वेदी पर मनोवैज्ञानिक सत्य तथा नाटकीयता की वलि देदी गई है।

अध्यात्म रामायण (३, ७, १९ इत्यादि) में जिस समय राम के एक बाण लगने पर मारीच मरने लगता है तो उसका "तेज" प्रभु के शरीर में प्रवेश करता है और देवगण इस भक्त के गुणों का वर्णन करते हैं जिनके कारण वह इस सुख का भागी हुआ। मानस में भी मारीच को परम सुख अर्थात् राम का वही परम धाम प्राप्त होता है जो तपस्वियों के लिए भी दुर्लभ है।[४]

जब सीता लक्ष्मण से राम की सहायता के लिए जाने को कहती हैं तो लक्ष्मण उत्तर देते हैं—

लछिमन बिहसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥
मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥[५]

वाल्मीकि रामायण (३, ४५, २१ इत्यादि) में इस समय सीता ने जो तीक्ष्ण बातें लक्ष्मण से कही हैं उनकी पुनरावृत्ति करना तुलसी ने उचित नहीं समझा। फिर भी मायावी सीता का व्यवहार मानस में मानवीय ही है; जहाँ तक लक्ष्मण का सम्बन्ध है उन्हें तो सीता के गुप्त रूप का रहस्य ज्ञात ही नहीं है।

---

[१] रा. च. मा. ३, २५, २।

[२] रा. च. मा. ३, २६ दोहा।

[३] वही, ३, २७, ३।

[४] वही ३, २७, ८ दोहा।

[५] वही ३, २८, २, ३।

मानस में सीताहरण का वर्णन बहुत कुछ मौलिक ढंग से किया गया है—

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा ॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं॥
सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥
नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई ॥
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं॥
तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा॥
जिमि हरि बधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा॥
सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ॥[1]

इस प्रकार की परिस्थिति में, रावण को उदार भावनाएँ प्रदान करना रसिकता के चिन्ह हैं। एक नवयुवती के प्रति कहे, कपटी सन्यासी के इस प्रकार के नीति वचनों का सम्बन्ध, वाल्मीकि रामायण (३, ४६, १५ इत्यादि) में सीता के सौन्दर्य की निसंकोच स्तुति में कहे रावण के वचनों से नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, रामचरितमानस में सीता के प्रति रावण के दुष्ट प्रस्ताव का कथन नहीं केवल संकेतमात्र है। यहां पर स्पष्टतया हिन्दी कवि को शिष्टता की चिन्ता थी—पर निःसन्देह वे यह भी चाहते थे कि रावण के चरित्रचित्रण की रूक्षता कम होजाय। मानस में रावण के चित्रण में कुलीनता का कुछ पुट सदा सुरक्षित रहता है क्योंकि वह राम का एक अभागा तथा भ्रान्त भक्त है। हम यह भी देखते हैं कि वह सीता को बलात्कार हर लेता है, परन्तु "अपने मन में उसने सीता के चरणों की वन्दना करके सुख माना"। हिन्दी रामायण में इस प्रकार का "दोहरा व्यक्तित्व" रावण के चित्रण की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषताओं में से एक है।

अधर्म के अपराधी, काक जयन्त के समान, रावण भी अपने अपराध का दण्ड तुरन्त पाता है—उसका "तेज" और उसकी बुद्धि उस समय उसे छोड़ देते है; और अब से वह विधाता के अधीन अधिक हो जाता है। कौवे के कथानक के समान इस अंश में भुशुण्डि की उपस्थिति, कदाचित् दोनों प्रसंगों के एक ही मूलाधार की ओर संकेत करती है।

रावण द्वारा हरण की गई यह सीता मायावी होने के कारण अध्यात्म रामायण के लेखक ने उचित ही निष्कर्ष निकाला कि उनके खोजाने से राम पर कोई प्रभाव नहीं हुआ और उनका विलाप कृत्रिम था—

---

[1] रा. च. मा. ३, २८, ४, दोहा।

“तब महामति रघुनाथ मन ही मन में सोचने लगे। लक्ष्मण को यह पता नहीं है कि मैंने मायावी सीता बना दी है। मैं यह जानता हूँ तथापि लक्ष्मण से यह बात छिपाकर मैं साधारण मनुष्य की भांति शोक करूंगा। यदि मैं चुपचाप अपनी कुटी में बैठ गया तो इन करोड़ो राक्षसों के नाश का उपाय कैसे होगा”[१]

तुलसी इस प्रकार की निःसार बातों में नहीं पड़ते। वे यह नहीं कहते कि लक्ष्मण से उस रहस्य को छुपाने के लिए, राम शोक का बहाना करते हैं, परन्तु मानस के कई अंशों के समान, तुलसीदास राम के मानवीय आचार के रहस्य को रेखाङ्कित करते हैं—

एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी।।
पूरन काम राम सुख रासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी।।
आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा।।[२]

गृद्धराज जटायु की मृत्यु का वर्णन तुलसी ने अपने ही ढंग से किया है। राम उसे जीवन का वर देते हैं पर जटायु उसे अस्वीकार कर देता है—मरने से पूर्व जब से वह प्रभु का दर्शन कर सका है उसका मोक्ष निश्चित है, इसलिए अब इससे अधिक जीने से क्या प्रयोजन? (३, ३१, ३-४)।

अध्यात्म रामायण (३, ८, ४१ इत्यादि) में, मरने के समय जटायु का कायाकल्प हो जाता है, वह चतुर्भुज हरि-विष्णु के रूप में ही प्रगट होता है और प्रभु की स्तुति गाता है। मानस में ठीक यही बात कही गयी है और राम के प्रति जटायु की स्तुति ४ हरिगीतिका छन्दों में है। परन्तु मानस की यह “जटायुस्तुति” दार्शनिक नहीं है, केवल राम-हरि[3] के सारे नामों की गणना करके ही जटायु सन्तुष्ट हो जाता है; आकार तथा विषय की दृष्टि से यह स्तुति बालकाण्ड[४] की “ब्रह्मा स्तुति” तथा “अहल्या स्तुति” के सदृश है।

अन्त में, जटायु, राम से परिशुद्ध भक्ति का वर माँगता और पा लेता है—इस कथानक से शिव यह उपदेश लेते हैं—

कोमल चित अति दीन दयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला।।
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी।।
सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।।[५]

---

[१] अ. रा. ३, ८, २-४।

[२] रा. च. मा. ३, ३०, ८-९।

[3] जटायु राम को “गोविन्द” (३, ३२ हरिगीतिका २) कह कर सम्बोधित करता है और यह नाम विष्णु-हरि के अन्य प्रख्यात अवतार कृष्ण का भी है।

[४] दे० अध्याय ५ पृ० ९४ तथा अध्याय ६ पृ० ११३।

[५] रा. च. मा. ३, ३३, १-२; भक्तमाला में जटायु की गणना ४२ हरिवल्लभों में हुई है। दे० ग्रियर्सन, “ग्लीनिंग्ज” ज. रा. ए. सो. १९१० पृ० २७०।

सीता की खोज में राम की शबरी से भेंट—

राम-लक्ष्मण की कबन्ध राक्षस से भेंट का तथा राम से कबन्ध[1] की बातों का विवरण वाल्मीकि रामायण में तीन सर्गों में दिया गया है (वा. रा. ३, ६९-७१)। कबन्ध राम से बताता है कि एकबार इन्द्र से युद्ध में उसका सिर तथा टांगें काट दी गई थीं और उसकी भुजाओं ने अनुपातातीत विस्तार प्राप्त कर लिया था जिससे वह अपने शत्रुओं को ग्रहण कर सका था।

मानस में इस भेंट का बहुत ही संक्षेप से उल्लेख हुआ है—

आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही साप कै बाता।।
दुरबासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा।।[2]

वाल्मीकि रामायण के संस्करण 'ग' में (७१, ३-७) और संस्करण 'क' (७८) में 'ऋषि स्थूलशिरा' की कथा प्राप्त होती है जिन्होंने कबन्ध को शाप दिया था। परन्तु यह कथानक प्रक्षिप्त है और संस्करण 'ख' के इटाली भाषा में अनुवादित ग्रन्थ में सम्पादक गोरोसियो ने इसे स्थान नहीं दिया है। प्रक्षिप्तांश का रामायण के तीनों संस्करणों में प्राप्त होना इस बात का प्रमाण है कि यह कथानक उन संस्करणों के विभाजन से पूर्ववर्ती है।[3]

यह कथानक अध्यात्म रामायण (३, ९, १५ इत्यादि) में भी उपलब्ध है। यहाँ कबन्ध राम से बताता है कि एक दिन उसने ऋषि अष्टावक्र का उपहास करने का दुस्साहस किया और प्रतीकार के लिए उन ऋषि ने उसे राक्षस में परिणत कर दिया। परन्तु उसके पश्चात्ताप करने पर उन ऋषि ने उसे वचन दिया कि प्रभु-हरि के रामावतार उसे मुक्ति प्रदान करेंगे जिससे वह अपने मौलिक गन्धर्व स्वरूप को प्राप्त कर लेगा। अत: सम्भव है कि मानस का यह कथानक अध्यात्म रामायण पर आश्रित हो।

अध्यात्म रामायण में, राम से मुक्ति पाकर कबन्ध विस्तार से उनकी प्रशंसा का गान करता है। इस "कबन्ध स्तुति" की प्रतिध्वनि मानस में प्राप्त नहीं होती ; मानस में, राम भूतपूर्व कबन्ध से सदाचार का उपदेश करते हैं और उसे ब्राह्मणों के आदर पात्र होने का स्मरण कराते हैं—

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता।।
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना।।[4]

---

[1] "विना शिर का शरीर"। वाल्मीकि के अनुसार इस दानव के न शिर था न टांगें, और उसकी भुजायें बहुत ही लम्बी थीं तथा उसका मुख उसके पेट में था।

[2] रा. च. मा. ३, ३३, ३-४।

[3] दे० बुल्के, **दि थ्री रिसेंशन्ज औफ दि वाल्मीकिरामायण**, ज. ओ. रि. म. (१९४९ भाग १)।

[4] रा. च. मा. ३, ३४, १।

परन्तु, संसार में शूद्र को आदर का यदि कोई अधिकार नहीं तो वह रामभक्ति का अधिकारी तो है ही और यह बात बहुत बड़ी है। इस प्रसंग के बाद ही आनेवाली शबरीकथा से वास्तव में यही शिक्षा मिलती है।

वाल्मीकि रामायण (३, ७४) में वन निवासी शबर जाति की तपस्विनी शबरी राम का अपने आश्रम में सादर अभिनन्दन करती है। क्योंकि उसके दिव्य गुरुओं ने यह भविष्यवाणी की थी कि दिव्यलोक जाने से पहले राजकुमार राम उसके आश्रम में पधारेंगे।[१]

अध्यात्म रामायण में, शबरी अपनी कथा राम से कह सुनाती है और अपने को उनके दर्शन के योग्य नहीं समझती—

"आपका दर्शन तो मेरे गुरुदेव को भी नहीं हुआ। फिर हे अप्रमेयात्मन्, मैं तो नीच जाति में उत्पन्न हुई एक गंवारी हूँ। जो आपके दासों के दास हैं उनके भी जो उत्तरोत्तर सैकड़ों दासानुदास हैं मैं तो उनकी दासी होने की भी अधिकारिणी नहीं हूँ, फिर साक्षात् आपकी दासी कहलाने का तो मेरा मुँह ही कहाँ है? हे राम, आपतो मन तथा वाणी के विषय नहीं हैं, फिर न जाने आज मुझे आपका दर्शन कैसे हो गया। हे देवेश्वर, मैं आपकी स्तुति करना नहीं जानती। प्रभो, आप स्वयं ही मुझ पर प्रसन्न होवें।"[२]

राम शबरी को बताते हैं कि वे किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करते, उनकी दृष्टि में केवल भक्ति ही का मूल्य है—

"पुरुषत्व-स्त्रीत्व का भेद अथवा जाति, नाम और आश्रम में कोई भी मेरे भजन के कारण नहीं हैं। उसका कारण तो एकमात्र मेरी भक्ति ही है। जो मेरी भक्ति से विमुख हैं वे यज्ञ, दान, तप अथवा वेदाध्ययन आदि किसी भी कर्म से मुझे नहीं देख सकते।"[३]

राम तथा शबरी के इस उदात्त वार्तालाप को मानस में जैसे का तैसा दिया है। शबरी उसी प्रकार की विनम्रता का प्रदर्शन करती है—

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥[४]

राम उसे आश्वासन देते हैं, केवल भक्ति ही माननीय है—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥

---

[१] भक्ति साहित्य में इस पात्र का महत्वपूर्ण स्थान है। नाभाजी के व्याख्याकार प्रियादास ने इसकी कथा विस्तार से दी है। शबरी की गणना हरिवल्लभों में भी है। दे० ग्रियर्सन '**ग्लीनिंगज . . .**' ज. रा. ए. सो. १९१० पृ० २७०।

[२] अ. रा. ३, १०, १७-१९।

[३] वही, ३, १०, २०-२१।

[४] रा. च. मा. ३, ३५, १-२।

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई ।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।।[१]

अध्यात्म रामायण में इसके बाद उस तपस्विनी के सम्मुख राम उन नौ साधनों की व्याख्या करते हैं जिनसे भक्ति प्रात हो सकती है।

"हे भामिनि, मैं संक्षेप से अपनी भक्ति के साधनों का वर्णन करता हूँ। उनमें पहला साधन तो सत्संग ही है। मेरे जन्म कर्मों की कथा का कीर्तन करना दूसरा साधन है; मेरे गुणों की चर्चा करना, यह तीसरा उपाय है और मेरे वाक्यों की व्याख्या करना उसका चौथा साधन है। अपने गुरुदेव की निष्कपट होकर भगवत बुद्धि से सेवा करना पांचवां; पवित्र स्वभाव, यमनियम आदि का पालन, तथा मेरी पूजा में सदा प्रेम होना छठा, तीन मेरे मंत्र की सांगोपाङ्ग उपासना करना सातवां साधन कहा जाता है। मेरे भक्तों की मुझसे भी अधिक पूजा करना, समस्त प्राणियों में मेरी भावना करना, बाह्य पदार्थों में वैराग्य करना और शम-दमादि सम्पन्न होना—यह मेरी भक्ति का आठवां साधन है तथा 'तत्व विचार' करना नवां है। हे भामिनि, इस प्रकार नौ प्रकार की भक्ति है, हे शुभलक्षणे, जिस किसी में ये साधन होते है वह स्त्री, पुरुष अथवा पशु पक्षी आदि कोई भी क्यों न हो उसमें प्रेमलक्षणा भक्ति का आविर्भाव हो ही जाता है।"[२]

स्पष्ट है कि ये साधन भक्ति के विभिन्न चरण अथवा विभिन्न प्रकार भी हैं। मानस में ये दोनों भाव सम्मिश्रित प्रतीत होते हैं।

इसी समान, रामचरितमानस में राम, शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देते हैं—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं ।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ।।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा ।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा ।।
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना ।।
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई ।।
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ।।[३]

---

[१] रा. च. मा. ३, ३५, २-३।

[२] अ. रा. ३, १०, २२-२८।

[३] रा. च. मा. ३, ३५, ४ दोहा; ३६, १-४।

अध्यात्म रामायण में, राम इस तपस्विनी को विश्वास दिलाते हैं कि भक्ति से ही प्रभु का दर्शन प्राप्त होता है और यह दर्शन मोक्ष का निश्चित साधन है।

"भक्ति के उत्पन्न होने मात्र से ही मेरे स्वरूप का अनुभव हो जाता है और जिसे मेरा अनुभव हो जाता है उसकी उस ही जन्म में निःसन्देह मुक्ति हो जाती है, जिससे यह सिद्ध हुआ कि मोक्ष का कारण भक्ति ही है। तू मेरी भक्ति से युक्त है इसीलिए मैं तेरे पास आया हूँ। मेरा दर्शन होने से तेरी मुक्ति हो ही जाएगी इसमें सन्देह नहीं।"[१]

इसी समान मानस में भी, राम शबरी से कहते हैं—

जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥[२]

अध्यात्म रामायण में, इस कथा से शिव यह निष्कर्ष निकालते हैं—

"भक्तवत्सल जगन्नाथ राम के प्रसन्न होने पर क्या दुर्लभ है? नीच जाति में उत्पन्न शबरी ने भी मोक्षपद प्राप्त कर लिया। फिर राम का ध्यान करनेवाले पुण्यजन्मा ब्राह्मण आदि यदि मुक्त हो जाएं तो इसमें क्या आश्चर्य? निःसन्देह भगवान राम की भक्ति ही मुक्ति है। और लोगो, भगवान् राम की भक्ति ही मोक्ष देने वाली है अतः कामधेनु रूप उनके चरणयुगलों की अति उत्सुकता से सेवा करो। हे बुद्धिमान लोगो, इन विविध ज्ञानवार्ताओं और मंत्र विस्तार को अत्यन्त दूर कर तुरन्त ही शंकर के हृदय धाम में शोभापानेवाले श्यामशरीर भगवान राम का भजन करो।"[३]

इसी समान मानस में तुलसीदास अन्त में कहते हैं—

नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥[४]

राम-शबरी संवाद को छोड़कर ऐसे बहुत कम अंश हैं जहाँ तुलसीदास ने अध्यात्म रामायण की अनुकृति की सीमा इतनी बढ़ा दी हो। अधिक से अधिक प्रयास करने पर इन दोनों ग्रन्थों में भक्ति के नौ प्रकार अथवा 'चरणों', की गणना में केवल थोड़ा सा भेद ढूंढ निकाला जा सकता है और यह भेद भी वास्तव में उन नौ प्रकार की भक्ति के गणनाक्रम में है न कि उनके भावों में। फिर भी यह बात उल्लेखनीय है कि अध्यात्म रामायण के अनुसार भक्ति का सर्वोच्च प्रकार अथवा अन्तिम चरण "तत्व विचार" है। पर इसके विरुद्ध, तुलसी के मतानुसार, प्रभु राम में असीम विश्वास होने से बढ़कर कुछ भी नहीं है।

---

[१] अ. रा. ३, १०, २९-३२।
[२] रा. च. मा. ३, ३६, ४-५।
[३] अ. रा. ३, १०, ४२-४४।
[४] रा. च. मा. ३, ३६ छन्द।

नवधा भक्ति, वैष्णव साहित्य का लोकप्रिय विषय है। **भागवत पुराण** (७, ५, २३-२४) में भी इसकी विवेचना हुई है। कहा जाता है कि एक अन्य साम्प्रदायिक रामायण "**मंजुल रामायण**" में भी राम ने नवधा-भक्ति का व्याख्यान दिया था।[१] यदि तुलसीदास प्रभु को सर्वस्व समर्पण करना ही भक्ति का सर्वोच्च चरण बताते हैं तो इसमें वे भागवत-पुराण से सहमत हैं।

पम्पासर पर राम व लक्ष्मण—

शबरी के निर्देशानुसार राम और लक्ष्मण पम्पासर के तट पर पहुंचते हैं। पम्पासर का प्रसिद्ध वर्णन तथा उस सरोवर के मधुमास विलसित दृश्य को देखकर, सीता के हरण से दुःखी राम के विलाप का वर्णन वाल्मीकि रामायण के संस्करण 'ख' के अन्तिम सर्ग में (३, ७९) और उसके संस्करण 'ग' के किष्किन्धाकाण्ड के प्रथम सर्ग में दिया है। (वाल्मीकि रामायण के संस्करण 'ग' का अनुकरण करने वाली) अध्यात्म रामायण में इस वर्णन का संक्षिप्त सार किष्किन्धाकाण्ड के आरम्भ में (१, ९-४) दिया है परन्तु उसमें परब्रह्मके निर्लेप स्वभाव के प्रतिकूल ठहरने वाले राम के विलाप का कोई वर्णन नहीं दिया; वैसे तो हमें यह विदित ही है कि जिन सीता का हरण हुआ था वह मायामयी थीं।

इसके विरुद्ध तुलसी ने इस प्रसिद्ध कथानक को महत्व का स्थान दिया है जिससे इसका आकार भी विशेष बढ़ गया है। वाल्मीकि रामायण में पम्पासर के तट पर, परन्तु मानस में पम्पा सरोवर के आसपास, राम लक्ष्मण के समक्ष विलाप आरम्भ करते हैं; और वस्तुतः इस विलाप का सार एक प्रकार से यही है कि कामातुरता तथा विलासिता दुखद होती है।

राम के वार्तालाप के प्रथम भाग में वाल्मीकि के प्रकृतिचित्रण का प्रभाव अत्यधिक अनुभवनीय है यद्यपि विषयनिर्वाह बहुत स्वतंत्रता से हुआ है—

बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा॥
लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा[२]। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा॥
हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए॥
संग लाइ करिनीं करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं॥
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ॥
राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात बंसत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥[३]

---

[१] रामदास गौड़ "हिन्दुत्व" के अनुसार।

[२] "लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा।" दे० वा. रा. ४, १, ११ "पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानाम्।"

[३] रा. च, मा. ३, ३७, १-५।

वाल्मीकि रामायण में, राम विलाप करते हैं कि विरहदुःख से सन्तप्त होने पर दुर्बल पाकर कामदेव तथा वसन्त दोनों ही एक होकर उन्हें सता रहे हैं—

"हे सौमित्रे, नानापक्षियों के नाद के द्वारा यह वसन्त ऋतु सीता के विरही मेरे लिए शोक का सन्दीपन हो रहा है। शोकाक्रान्त मुझको कामदेव और भी सन्तप्त कर रहा है और कूजन करती कोकिलाएँ मानो मुझे चुनौती देती हों।"[1]

वाल्मीकि रामायण के इस स्थल ने ही तुलसीदास को पम्पा सरोवर के समीपवर्ती वन का विस्तृत वर्णन करने, और कामदेव की व्यूहरचना से उसकी तुलना करने की, प्रेरणा दी प्रतीत होती है—

बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल॥
देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मन जात॥[2]

मानस में यह वर्णन सम्पूर्ण अड़तीसवें पद्य में है और इसका अन्त शिव की एक स्तुति से होता है—

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरजामी॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई॥
क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम कीं दाया॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला॥
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥[3]

मानस में पम्पासरोवर का वर्णन (३, ३९, ३ इत्यादि) वाल्मीकि रामायण के दक्षिणी संस्करण (४, १) के तदनुरूप वर्णन के समान है। पम्पासरोवर के तट पर उगनेवाले विभिन्न प्रकार के वृक्षों की गणना की गई है और इस वर्णन का उपसंहार शान्तिमय चित्रण से होता है। अपने भाई के साथ पम्पा सर के तट पर बैठे राम के पास देवगण तथा तपस्वी आते हैं।

इस प्रसंग को तुलसीदास ने नीति के उपदेशक की भाँति सम्पन्न किया है, सीता के हरण पर राम का विलाप उनके लिए काम की दुखद शक्ति की व्याख्या करने का एक प्रकार का निमित्त है, क्योंकि जो व्यक्ति आध्यात्मिक विजय प्राप्त करना चाहते हैं, काम उन सभी का शत्रु है। काम द्वारा शिव के प्रलोभन की कथा (१, ८४, ८५) में भी इसी विषय का विस्तार हुआ था। 'नारद मोह' (१, १२५ इत्यादि) भी काम की अजेय शक्ति का ज्वलन्त उदाहरण है; काम के विरुद्ध केवल राम का आश्रय ही बलवान है।

---

[1] वा. रा. ४, १, २२-२३।
[2] रा. च. मा. ३, ३७, दो।
[3] रा. च. मा. ३, ३९, १-३।

परन्तु वाल्मीकि रामायण का पम्पासर का प्रसंग "शिव चरित" तथा "नारद मोह" के समान, उपरोक्त सिद्धान्त का सुन्दर प्रदर्शन नहीं कर पाता क्योंकि पूर्ववर्ती दोनों चरितों में राम कामदेव के मोह से छुड़ानेवाले हैं, परन्तु पम्पासर के प्रसंग में राम स्वयं कामदेव के वश में हैं। सीता के हरण पर रघुनाथ का विलाप उनकी अनुमानित दिव्यता के अनुकूल नहीं और इसी कारण अध्यात्म रामायण इस विषय में मौन है। तुलसी ने भी कठिनाई का अनुभव तो किया जैसा कि शिव के द्वारा इस प्रसंग के उपसंहार से ज्ञात होता है परन्तु इससे उन्हें कोई संकोच हुआ हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। "सन्देह" जागृत करने के स्थान पर राम का मानवीय चरित, तुलसीदास के अनुसार भक्तों के हृदयों को सुस्थिर करता है। इस प्रसंग में एक अतिप्रिय विषय को विस्तार देने का अवसर पाकर, मानस के लेखक ने जानबूझ कर दार्शनिक समस्या को नहीं उठाया।

मानस में पम्पा सरोवर के वर्णन के पश्चात् एक ऐसा प्रसंग आता है जो न तो वाल्मीकि रामायण में है और न अध्यात्म रामायण में। जब लक्ष्मण के साथ राम, सरोवर तट पर विश्राम करते होते हैं तो नारद मुनि उनके पास आते हैं—

बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥
बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी॥
मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥
ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई॥[1]

यहाँ पर विषय का संक्रमण विचित्र है। एक ओर तो कवि ने कहा था कि "देवता और मुनि" जो भी राम के पास आये थे, "अपने २ धाम को चले गये" और राम को विलाप समाप्त करते बताया है क्योंकि वे "परम प्रसन्न बैठे थे"; और दूसरी ओर राम पर दया करने के लिए नारद ने यही अवसर चुना क्योंकि नारद को डर है कि "फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा"।

जिस शाप का इस प्रसंग में संकेत हुआ है वह वास्तव में नारद ने, अपनी कामपूर्ति में बाधा होने पर, विष्णु को दिया था। यह कथा बालकाण्ड ('नारद मोह,' १, १२५ इत्यादि) में बताई गई है जहाँ नारद का शाप ही राम के अवतार का एक कारण बताया गया है।

इस प्रकार राम, नारद का सस्नेह स्वागत करते हैं। फिर उन दोनों में एक उदात्त वार्तालाप होता है जिसमें नारद यह वर मांगते हैं कि प्रभु के सभी नामों में केवल राम नाम को प्राधान्य प्राप्त हो।

नारद की प्रार्थना को राम तुरन्त स्वीकार करते हैं। तब विषय बदल कर नारद राम (विष्णु) से उनके अतीत आचरण के विषय में प्रश्न करते हैं, कि अपने भक्त नारद[2] के प्रस्तावित विवाह में उन्होंने बाधा क्यों की?" इस पर राम विस्तार से बताते हैं कि ऐसा करके उन्होंने नारद का कल्याण ही किया, क्योंकि नारी से बढ़कर दुःख का अन्य कोई मूल नहीं उन्होंने नारद को ठीक उसी प्रकार खतरे से बचाया जैसे एक माता अपने शिशु की रक्षा करती है—

---

[1] राम. च. मा. ३, ४१, २-४।

[2] दे० नारद मोह, अध्याय ४ पृ० ७२ इत्यादि।

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि ।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि ।।[1]

हमें बताया गया है कि राम के उत्तर से नारद बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् नारद ने राम से एक अन्य प्रश्न पूछा यद्यपि पूर्व प्रश्न से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था; उन्होंने पूछा कि सन्तों के लक्षण क्या हैं ?

(बहुत संक्षेप में) सन्तों के गुणों की गणना करके राम ने नारद को सन्तुष्ट किया, विकारों पर विजय, वैराग्य, दूसरों को मान देना, अभिमानाभाव ही इन गुणों में से प्रमुख हैं और इन सब गुणों की चरम सीमा राम-भक्ति है (३, ४५, ४ इत्यादि)।

इस की सम्भावना बहुत कम है कि तुलसीदास ने इस सारे ही कथानक का आविष्कार किया हो; वह सम्पूर्ण कथा के साथ मिलाया हुआ प्रतीत होता है उसमें समाविष्ट हुआ नहीं। इसके अतिरिक्त इस प्रसंग का उचित स्थान सीता के हरण पर राम के विलाप के तुरन्त पश्चात् होता क्योंकि नारद के आगमन का अनुमानित कारण राम को दु:खी देखने पर नारद का पश्चाताप ही है। यह पश्चाताप, जैसा कि स्पष्ट है उन महामुनि को (कोई काम न होने पर भी) पम्पा सरोवर के तट पर लाने का व्याज मात्र है। नारद भी राम से भक्ति-मार्ग का उपदेश ग्रहण करने के सर्वथा योग्य एक परम भक्त हैं। यह परिपाटी साम्प्रदायिक साहित्य में बहुत प्रचलित है, उत्तर काण्ड में तुलसीदास ने इसका प्रचुरमात्रा में प्रयोग किया है—वहाँ शिव तथा भुशुण्डि माया तथा भक्ति के लक्षण व प्रभाव के विषय में विस्तार से सिद्धान्तों की स्थापना करते हैं।

अरण्यकाण्ड के इस प्रसंग का तथा बालकाण्ड के 'नारद मोह' का परस्पर सम्बन्ध कुछ कृत्रिम है। क्योंकि नारद-मोह में यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि विष्णु ने केवल मनोरञ्जन अथवा उपहास में नहीं अपितु अपने भक्त नारद के कल्याण के लिए आचरण किया, क्योंकि (लालसा से नहीं पर) अहंकार से वे भ्रान्त हो गये थे—जैसे ही मृगतृष्णा शान्त हुई नारद को सद्‌बुद्धि आई और वे अपने प्रभु के चरणों में गिर पड़े (१,१३८)। अरण्यकाण्ड में ऐसा प्रतीत होता है कि नारद अपने पतन की पृष्ठभूमि को और उसके महत्व को भूल चुके हैं; प्रतीत होता है कि राम भी इस बात को भूल गये। 'नारद-मोह' के समान यह संवाद शिव पुराण से नहीं लिया गया परन्तु किसी साम्प्रदायिक मूल से लिया गया होगा।

प्रभु के अन्य नामों की अपेक्षा 'राम नाम' के प्राधान्य के विषय में नारद की प्रार्थना और राम का वार्तालाप बिल्कुल मन माने ढंग से प्रस्तुत किये गए हैं—वर्णन में प्रवाह नहीं विच्छिन्नता है और ऐसा प्रतीत होता है कि कवि प्रस्तुत प्रसंग को जो राम की कथा का वर्णन करना है भूल गये। सन्तों अर्थात् भक्तों के लक्षणों पर राम का व्याख्यान, उत्तरकाण्ड (पद्य ३७-३८) में अपने भाइयों को दिये राम के एतद्‌विषयक व्याख्यान की प्रस्तावनामात्र है।

नारी के दु:खदायी होने का प्रसंग पूर्ववर्ती अंश का स्मरण कराता है जहाँ राम सेनापति कामदेव के डेरा डालने का वर्णन करते हैं—कदाचित् केवल इसी सादृश्य के कारण अरण्यकाण्ड के इस

---

[1] रा. च. मा., ३, ४४ दोहा ।

स्थल में इस वार्तालाप को स्थान दिया गया हो। अरण्यकाण्ड का उपसंहार करने वाले ४६वें पद्य के दूसरे दोहे में यह भाव पुनः प्रगट होता है—

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥

अरण्यकाण्ड की पुष्पिका निम्नवत् है—

"कलियुग के सम्पूर्ण पापों को विध्वंस करने वाले रामचरितमानस का **विमलवैराग्य-सम्पादन** नामक यह तीसरा सोपान समाप्त हुआ।"

यह नाम अरण्यकाण्ड के आध्यात्मिक लाभ के अनुकूल ही है। अन्तिम ४ काण्डों का नामकरण भी इसी प्रकार हुआ है।

रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड की विशेषताएँ—

हम देख आये हैं कि पिछले काण्ड की तुलना में, मानस के अरण्यकाण्ड में पद्यव्यवस्था की अनियमितता और प्रस्तुतकर्ता की एकता है, यहाँ प्रस्तुतकर्ता स्वयं कवि न होकर एक पुरातन पात्र, शिव अथवा भुशुण्डि हैं। इस काण्ड में काक-भुशुण्डि की तीन अवसरों पर अप्रासंगिक उपस्थिति से एक समस्या उत्पन्न होती है। भुशुण्डि-गरुड़ संवाद तो केवल उत्तरकाण्ड के ५३ वें पद्य में प्रस्तुत होगा और उसका यहाँ कोई संकेत भी नहीं है। सत्य है कि आमुख के दूसरे भाग में रामचरितमानस के प्रस्तुत कर्ताओं में भुशुण्डि की गणना हुई है और कहा गया है कि भुशुण्डिने यह कथा शिव से ग्रहण की और याज्ञवल्क्य को कह सुनाई (१, ३०); दूसरी ओर बालकाण्ड के १२० वें पद्य के पहले सोरठे में शिव ने भुशुण्डि का उल्लेख रामचरितमानस के प्रस्तुतकर्ता के रूप में किया है जिससे प्रतीत होता है कि भुशुण्डि शिव से पूर्ववर्ती प्रस्तुतकर्ता था। इस बात की पुष्टि मानस के उत्तरकाण्ड से हो जाती है। परन्तु अयोध्याकाण्ड से लेकर लंकाकाण्ड तक, शिव और भुशुण्डि साथ २ उपस्थित होते हैं और आपाततः यह निश्चय करना सम्भव नहीं होता कि शिव, भुशुण्डि की पुनरावृत्ति करते हैं अथवा भुशुण्डि शिव की; अथवा ये दोनों ही प्रस्तुतकर्ता परस्पर स्वतंत्र हैं।

देखने की बात यह है कि अरण्यकाण्ड के वर्णनात्मक प्रसंगों में भुशुण्डि उपस्थित नहीं होता; जो भी वाक्य भुशुण्डि ने कहे हैं वे सब के सब नीतिवाक्य हैं, मानो अपवारित हों—

३, २, ३— **मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरि जाना॥**
३, २८, ५— **इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥**
३, १७, ३— **भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥**
होइ बिकल सक मनहि न रोकी।

ऐसा अनुभव होता है कि उपरोक्त वाक्य उद्धरण हैं और उनका गरुड़ को सम्बोधित किया जाना सन्दर्भ के कारण है। पहला उद्धरण सुन्दर काण्ड (५, २) में दूसरे रूप में पुनः प्रस्तुत हुआ है।

यदि यह सच माना जाय कि इस प्रकार कवि सन्दर्भ देना चाहते थे तो तुलसी ने जिस ग्रन्थ का आश्रय लिया है वह कदाचित् भुशुण्डि रामायण हो सकता है, यही ग्रन्थ उत्तरकाण्ड का प्रमुख आधार और अरण्यकाण्ड के मूलाधारों में से एक रहा होगा—इस बात से उत्तरकाण्ड तथा अरण्यकाण्ड के कुछ भागों, विशेष कर कौवे की कथा और राम-नारद संवाद की समानता की व्याख्या भी सन्तोषजनक रूप से हो सकेगी।

अत: भुशुण्डि नहीं किन्तु शिव ही यहाँ पर रामकथा के प्रस्तुतकर्ता हैं। और ऐसा लगता है कि आदिम "रामचरित" का उपसंहार करने वाले प्रथम छ: पद्यों को संपूर्ण ग्रन्थ के अनुकूल बनाने के लिए पुन: लिपिबद्ध किया गया।

सामान्य गति की दृष्टि से भी, अरण्यकाण्ड अयोध्याकाण्ड से भिन्न है। यहाँ कथावस्तु बहुत संक्षिप्त है, कहना चाहिए रूपरेखात्मक है, ऐसा लगता है कि कवि के लिए कथा भारी होती जा रही है और इसीलिए वे केवल संकेत तथा गूढ़ोक्ति का आश्रय लेते हैं। केवल उन्हीं कथानकों को विस्तार से दिया गया है जिनका कोई व्यावहारिक अथवा धार्मिक महत्व हो—जैसे राम के बाण के समक्ष काक-जयन्त का भागना। गीति प्रधान अथवा उपदेशात्मक अंशों को भी अच्छा स्थान प्राप्त हुआ है, उदात्त वार्तालापों ने, जैसे राम-अत्रि, सीता-अनुसूया, राम-सुतीक्ष्ण, राम-अगस्त्य, रावण-मारीच, राम-जटायु, राम-शबरी, राम-लक्ष्मण, व राम-नारद संवादों ने अरण्यकाण्ड में सब से अधिक स्थान लिया है। इन सभी संवादों का प्रमुख विषय प्रभु राम का प्रताप और मुक्ति के लिए भक्ति-मार्ग का माहात्म्य है। अरण्यकाण्ड का गौण विषय जिसे थोड़ा विस्तार दिया गया है वह है नारी और वासना—ये दोनों ही आध्यात्मिक विजय के लिए बाधाएँ बताई गई हैं।

यद्यपि अरण्यकाण्ड की कथा मुख्यतया वाल्मीकि रामायण का अनुकरण करती है किन्तु वाल्मीकि रामायण के प्रत्यक्ष तथा निश्चित परिग्रहण यहाँ कम ही हैं। टेसिटोरी ने इस काण्ड की "वाल्मीकीय प्रतिध्वनियों" के जो उदाहरण निकाले हैं उनमें से अधिकतर वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण दोनों ही ग्रन्थों में हैं, और अध्यात्म रामायण ही यहाँ पर प्रधान मूलाधर है। कुछ "गीताओं" और "स्तुतियों" के अतिरिक्त, कई कथानक और कुछ विशेषताएँ उदाहरणत: हरण से पूर्व सीता का अग्नि में अन्तर्धान करने का प्रसंग, तुलसी ने इस रामायण से ग्रहण किये हैं।

अयोध्याकाण्ड की कथा की प्राकृतिक तथा सजीव शैली के समक्ष रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड की कुछ शास्त्रीय व उपदेशात्मक शैली को देखते हुये उस पर अध्यात्म रामायण तथा साम्प्रदायिक साहित्य का प्रभाव सुस्पष्ट हो जाता है। यहाँ पर घटनाओं का वर्णन राम की दिव्यता को प्रमाणित करने और उनके मानवीय आचरण से उत्पन्न सन्देह को दूर करने के लिए हुआ है। सभी पात्रों में और विशेषकर रावण और मारीच में, परम्परागत प्रयोजनों के स्थान पर, आध्यात्मिक प्रयोजनों को प्रेरक बताया है। राम की प्रतिष्ठा की चिन्ता के कारण मनोवैज्ञानिक सत्य तथा नाटकीयता की बलि देदी गई है—अग्नि में सीता का अन्तर्धान होना इसका एक विलक्षण उदाहरण है। परन्तु यहाँ तुलसी अध्यात्मरामायण की तरह बहुत आगे नहीं बढ़े हैं और न ही उन्होंने राम के विलापको कृत्रिम ही बताया है, और कथावस्तु में 'तात्विक' सीता के स्थान पर 'मायामयी' सीता का कहीं उल्लेख भी नहीं हुआ है।

अयोध्याकाण्ड के विरुद्ध, अरण्यकाण्ड वैष्णव प्रेरणा का सुव्यक्त परिणाम है। यहाँ पर राम को 'लक्ष्मीपति', 'वैकुण्ठनिवासी' 'विष्णु-हरि' के समान समझा गया है। और सुतीक्ष्ण को

राम का दर्शन भी विष्णु के दिव्य स्वरूप, चतुर्भुज के रूप में होता है। जटायु उन्हें "गोविन्द" कहता है (३, ३२, २) और यह नाम विष्णु के अन्य महान अवतार 'कृष्ण' का है। ब्रह्मा, और विशेष कर शिव, विष्णु-राम के उपासक हैं।

यह काण्ड उस भागवत मान्यता को प्रचुर मात्रा में प्रदर्शित कर देता है जिसके अनुसार इष्टदेव का प्रकोप उनकी कृपा का एक रूप है। राम के हाथों से (भागवत पुराण में कृष्ण के हाथों से) नष्ट होना बड़ा प्रसाद है और मुक्ति का सुनिश्चित साधन है—हम देख चुके हैं कि जिन राक्षसों ने राम के हाथों मृत्यु पाई वे सब प्रभु की कृपा के कारण अनायास ही तादात्म्य और परम सुख प्राप्त कर गये। उनके लिए द्वेष का मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि जैसा स्वयं रावण ने कहा, "तामस शरीर पूजा तथा भजन के अयोग्य" है। यहाँ पर 'भजन' का अर्थ कदाचित् 'भक्ति' नहीं लेना चाहिए क्योंकि क्रमशः सुन्दरकाण्ड तथा लंकाकाण्ड में, रावण के भाई विभीषण तथा उसकी पत्नी मन्दोदरी के उदाहरण हमें यह बतायेंगे कि भक्ति राक्षस-शरीर के लिए अप्राप्य नहीं।

अध्याय—९

रामचरितमानस का किष्किन्धाकाण्ड

वाल्मीकि रामायण के संस्करण 'ख' के समान, मानस के किष्किन्धाकाण्ड का आरम्भ वानरराज सुग्रीव के निवासस्थान ऋष्यमूक पर राम तथा लक्ष्मण के आगमन से होता है तथा इसका उपसंहार वाल्मीकि रामायण के संस्करण 'ग' तथा अध्यात्म रामायण के समान, हनुमान के समुद्र पार करने की तय्यारियों से होता है। यद्यपि वाल्मीकि रामायण में किष्किन्धाकाण्ड तथा सुन्दरकाण्ड की लम्बाई एक जैसी है किन्तु मानस में सुन्दरकाण्ड किष्किन्धाकाण्ड की अपेक्षा लगभग दुगुना लम्बा है, किष्किन्धाकाण्ड में केवल ३० पद्य हैं और सारी कविता में यही सब से छोटा काण्ड है।

पिछले काण्ड के समान, किष्किन्धाकाण्ड में भी पद्यव्यवस्था बहुत अनियमित है। यहाँ पर भी प्रस्तुतकर्ता शिव ही हैं और वे पार्वती को कथा बताते हैं। भुशुण्डि केवल एक बार (७, १२) उपस्थित हुए हैं।

कथा-सार—

वन्दना—प्रथम श्लोक-राम व लक्ष्मण के प्रति।
द्वितीय श्लोक-सन्तों के प्रति।

शिव तथा भवानी के निवासस्थान काशी की स्तुति (सो. १-२)

ऋष्यमूक पर राम तथा लक्ष्मण का आगमन। सुग्रीव द्वारा भेजे गये व ब्राह्मण का रूप धारण किये हुए हनुमान राम के पास आकर उनसे प्रश्न करते हैं। राम उन्हें सीताहरण की सूचना देते हैं। हनुमान राम में परब्रह्म को देखकर उनकी पूजा करते हैं। राम सुग्रीव से सन्धि करते हैं। सुग्रीव राम को सीता का वस्त्र देता है जो उसने सीताहरण के समय पाया था और सीता की खोज में राम की सहायता करने का वचन भी देता है। वह राम को बताता है कि जब उसके भाई बाली ने उसे राज्य से बाहर निकाल दिया तो उसने ऋष्यमूक में आकर शरण ली क्योंकि यहाँ बाली नहीं आसकता था। राम सुग्रीव से बाली को मारने की प्रतिज्ञा करते हैं और तुरन्त ही अपनी शक्ति का परिचय देते हैं। सुग्रीव राम को अपना स्वामी मानकर पूजा करता है (१-७)।

राम की उपस्थिति में बाली तथा सुग्रीव का युद्ध। छुप कर राम बाली को बाण से मार डालते हैं। यद्यपि बाली राम में परमप्रभु का स्वरूप पहचान लेता है तथापि मरते हुए कहता है कि राम ने उसे

छल से मारा। राम उसे उपदेश देते हैं और बाली पश्चात्ताप करता है। राम उसे पुनः जीवन प्रदान करना चाहते हैं पर बाली उसको स्वीकार नहीं करता और राम के प्रताप की प्रशंसा करके प्राण छोड़ देता है। बाली की पत्नी तारा का विलाप। राम का उसे आश्वासन दिलाना। बाली की अन्त्येष्टि, सुग्रीव का सिंहासन पर आरूढ़ होना। बाली के पुत्र अंगद का युवराज बनना। राम सुग्रीव को सुझाव देते हैं और उसे अपने वचनों का स्मरण कराके दूर चले जाते हैं (८-१२)।

वर्षा ऋतु का वर्णन। राम का दुःख। शरद ऋतु का वर्णन। वचन भूल जाने के कारण सुग्रीव पर राम का क्रोध। राम की ओर से सुग्रीव के पास लक्ष्मण का प्रस्थान। भक्त हनुमान की सुग्रीव को भर्त्सना। हनुमान व तारा का लक्ष्मण के क्रोध को शान्त करना। सुग्रीव का राम से क्षमा माँगना और राम का उसे क्षमा करना (१३-२१)।

सुग्रीव सब वानरों को बुला भेजता है और सीता की खोज में उन्हें सब दिशाओं में भेज देता है। नील, अंगद, हनुमान, तथा ऋक्षराज जाम्बवान, वानरों की सेना के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान करते हैं। राम हनुमान को सीता के लिए एक सन्देश देते हैं। मार्ग में, अपने साथियों को प्यास से मरने से बचाने के लिए हनुमान उन सब को एक सरोवर के पास ले जाते है; इस सरोवर के पास एक तपस्विनी (स्वयंप्रभा) रहती है। यह अपनी माया से एक झपकी में उन्हें समुद्र तट पर पहुँचा देती है और स्वयं राम के पास चली जाती है (२२-२५)।

सीता का पता न पा सकने पर निराश वानर, सुग्रीव के पास आने से संकोच करते हैं और समुद्र के तट पर बैठ जाते है; जाम्बवान अंगद को विश्वास दिलाता है कि राम मनुष्य नहीं हैं। जटायु का भाई सम्पाति वानरों को कवलित करने को आता है परन्तु अंगद जटायु के गुणगान करने लगता है और उसकी कथा सम्पाति को बताता है। अपने भाई जटायु के मान में वह अन्तिम कर्म करके मुक्त होता है और फिर वानरों को अपनी सम्पूर्ण कथा और चन्द्रमा ने जो भविष्यवाणी की थी उसके विषय में बताता है। वही इन वानरों को बताता है कि सीता लंका में, वहाँ के राजा रावण द्वारा, अशोक-वाटिका में बन्दी हैं। तब वानर आपस में परामर्श करते हैं कि उनमें से कौन समुद्र को पार करे। जाम्बवान इस कार्य के लिए हनुमान का नाम प्रस्तावित करता है। तत्काल ही हनुमान एक पर्वत का रूप धारण करते है। हनुमान जाम्बवान से उपदेश मांगते हैं और जाम्बवान यही कहता है कि तुम सीता का समाचार लेकर वापस आ जाना और फिर राम स्वयं ही सीता को वहाँ से छुड़ा लायंगे (२६-३०)।

इस कथा का उपसंहार तुलसी, राम की स्तुति का गान करने के उपदेश से करते हैं क्योंकि राम ही सारे दुःखों से मुक्त करते हैं (३० छन्द, दोहा तथा सोरठा)।

किष्किन्धाकाण्ड की प्रस्तावना के परिपूरक दो सोरठों में शिव तथा पार्वती की नगरी, "मुक्ति जन्म मही" काशी तथा स्वयं शिव का महात्म्य वर्णित है। इससे कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि तुलसीदास ने यह अंश काशी में रचा होगा। यह बहुत सम्भव है।

(सुग्रीव के निवासस्थान) किष्किन्धा में राम व लक्ष्मण—

अध्यात्म रामायण (४, १, १३) के अनुसार जब हनुमान राम तथा लक्ष्मण की अगवानी करने जाते हैं तो वे इन दोनों के सौन्दर्य से बहुत प्रभावित होते हैं और उनकी तुलना "दो आदि पुरुषों,

नर और नारायण" से करते हैं। मानस में भी यही तुलना उपलब्ध है और हनुमान इन दोनों भाइयों से कहते हैं—

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ ।।[१]

राम व हनुमान के बीच किष्किन्धा में हुआ वार्तालाप मानसमें वाल्मीकि रामायण से अथवा अध्यात्म रामायण से कदापि प्रभावित नहीं। राम के चरणों पर पड़कर हनुमान शीघ्र ही क्षमा मांगते हैं कि उन्होंने अपने प्रभु को तुरन्त नहीं पहचाना। वे राम से दया की प्रार्थना करते हैं और कहते हैं—

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें ।।
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा ।।
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई ।।
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें ।।[२]

राम हनुमान को उठाकर हृदय से लगा लेते हैं और उन्हें सान्त्वना देते हुये कहते हैं—

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ।।
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ ।।
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।।[३]

इस अंश में हनुमान का चित्रण राम के प्रियभक्त के रूप में हुआ है और भक्तमाला[४] में भी हनुमान को यही उपाधि प्राप्त है। परन्तु यहाँ रावण के समान,[५] हनुमान भी राम की पूजा करने में असमर्थ हैं ("जानऊँ नहिं कछु भजन उपाई")। कदाचित् इस असमर्थता का कारण यही हो सकता है कि उनका वानरशरीर अपवित्र है। शरण देनेवाले प्रभु में हनुमान की निष्ठा संकोच-हीन[६] है। पर इस काण्ड में तथा सुन्दरकाण्ड में हनुमान के अजेय वीर, चतुर नीतिज्ञ, और सुवक्ता होने में कोई बाधा नहीं, और उनका ऐसा ही चित्रण वाल्मीकि रामायण तथा हनुमान नाटक में है।

---

[१] रा. च. मा. ४, १, ५।

[२] वही ४, ३, १-२।

[३] वही ४, ३, ४ दोहा।

[४] हनुमान की गणना १२ महाभक्तों में नहीं पर ४२ हरिवल्लभों में हुई है। ग्रियर्सन, ज. रा. ए. सो. १९१०, पृ० २०९।

[५] दे० भाग १, पृ० १९०।

[६] भक्तमाला के अनुसार, हनुमान् की निष्ठा "भगवत्सेवा" है। ग्रियर्सन—ज. रा. ए. सो. १९१०।

सन्धि करने के पश्चात्, राम तथा सुग्रीव के वार्तालाप को मानस में तीन पद्य प्राप्त हैं। पहले दो पद्यों में वाल्मीकि रामायण (संस्करण 'ग' सर्ग ५-१०) का संक्षिप्त सार दिया है—सुग्रीव राम को बताता है कि उसने दूर से सीता का हरण होते देखा; वह वचन देता है कि सीता को खोजने का वह भरसक प्रयत्न करेगा। राम, सुग्रीव से जब उस वन में निवास करने का कारण पूछते हैं तो उत्तर में सुग्रीव, बाली से अपने कलह की वार्ता का विवरण देता है—बाली ने उसे राज्य से भगा दिया और उसकी पत्नी तारा को छीन लिया।

इन दोनों पद्यों के पश्चात् सातवाँ पद्य बहुत ही लम्बा है, उसमें २९ अर्धालियाँ हैं। सत्य है कि इस काण्ड में पद्य प्रायः अनियमित हैं क्योंकि उनमें कम से कम ८ और अधिक से अधिक १६ अर्धालियाँ हैं, पर लम्बे से लम्बा पद्य, सातवें पद्य का, लगभग आधा है।

इस पद्य की प्रथम १० अर्धालियों में, राम, सुग्रीव से मित्रता के लाभों की चर्चा करते हैं और उसे सच्ची मैत्री के नियमों का उपदेश देते हैं। उसके बाद की तीन अर्धालियों (अर्धाली ११-१३) में वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धाकाण्ड के ११वें व १२वें सर्ग का बहुत ही अधिक संक्षिप्त विवरण दिया है (दे० अध्यात्म रामायण ४, १, ६०-७५)। तुलसीदास के अनुसार—

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा ।।
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ।।
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती ।।

यदि वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण में इस प्रसंग को न देखा जाय तो उपर्युक्त अवतरण सम्पूर्णतया दुर्बोध रहे; इन दोनों ग्रन्थों में ही सुग्रीव के समक्ष, राम के दो पराक्रमों का वर्णन है—एक ठोकर में ही राम ने दुन्दुभि राक्षस के बृहत् अस्थिपञ्जर को सौ योजन दूर फेंक दिया, और फिर एक ही बाण से उन्होंने सात ताल के वृक्षों को एक साथ बींध दिया।

अध्यात्म रामायण (४, १, ७६ इत्यादि) में सुग्रीव राम के चरणों में गिर जाता है और राममें परम प्रभु को देखता है। वह घोषणा करता है कि राम के दर्शनमात्र से ही उसे सब पार्थिव भोगविलासों से विरक्ति होगई और मित्रामित्र का भेद मिट गया क्योंकि वह सब माया है। वह राम से भक्ति का वर मांगता है।

मानस में इस संवाद की छाया मिलती है—वानराधिपति, राम को अपना प्रभु स्वीकार करता है और घोषणा करता है कि अब वह इस संसार से निर्लिप्त होगया है—

नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला ।।
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ।।
ए सब रामभगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक ।।[1]

---

[1] रा. च. मा. ४, ७, अर्धाली १४-१७।

शत्रु तथा मित्र का भेद मायारचित है—

सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं । माया कृत परमारथ नाहीं ।।
बालि परम हित जासु प्रसादा । मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा ।।[1]

सुग्रीव भक्ति का वर मांगता है—

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजनु करौं दिन राती ।।[2]

चौबीसवीं अर्धाली में भुशुण्डि गरुड़ से निम्नलिखित अप्रत्याशित कथन कहते हैं—

"नट मरकट इव सबहि नचावत । रामु खगेस बेद अस गावत" ।।

तदुपरान्त वर्णन पुनः प्रवाहित हो जाता है, और सातवें पद्य की अन्तिम अर्धालियों में वाल्मीकि रामायण (संस्करण 'ग', किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग १३-१५) का संक्षिप्त विवरण प्राप्त होता है । २४ वीं अर्धाली में, भुशुण्डि गरुड़ से जो बात करते हैं वह पिछली तथा अगली कथा से असम्बन्धित है । "**मानसपीयूष**" तथा रा. न. त्रिपाठी के अनुसार यह अर्धाली कदाचित् **भुशुण्डि रामायण** से ली गई है—

"जिस प्रकार मदारी पालतू पशुओं को, वैसे ही राम प्राणियों को नचाते हैं, हे गरुड़ यह जान लो क्योंकि वेदों में निरन्तर ऐसा ही कहा गया है" ।[3]

परन्तु इस कथन की जांच नहीं की जा सकती । जो भी हो तथ्य यह है कि यही उपमा रामचरितमानस में और विशेषकर भुशुण्डि की कथा से सम्बन्धित उत्तरकाण्ड में कई बार मिलती है । उत्तरकाण्ड के इस भाग का मूलाधार भुशुण्डि रामायण ही माना जाता है पर, यदि यह भुशुण्डि रामायण का कोई उद्धरण है तो इसका स्थान अनुचित है; इसके अतिरिक्त सातवें पद्य की अनुपातातीत लम्बाई इस सम्भावना का संकेत करती है कि इसको पुनः लेखबद्ध किया गया होगा ।

राम की शक्ति से भयभीत तारा अपने पति बाली से कहती है कि राम से झगड़ा नहीं करना चाहिए परन्तु बाली उत्तर देता है—

कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ ।।[4]

---

[1] वही अर्धाली १८-१९ ।

[2] वही अर्धाली २१ ।

[3] मा. पी. ३, पृ० १०३; रा. न. त्रिपाठी ।

[4] रा. च. मा. ४, ७, दोहा ।

इस प्रकार बाली को राम से बहुत आशा है। अतः यदि राम ने बाली को छुपकर मार भी डाला तो इस प्रकार का आघात कम लाञ्छनीय हो जाता है।

वाल्मीकि रामायण (४, १७-१८) में, राम के बाण से घायल होने पर बाली राम को उलाहना देता है कि उन्होंने उसे छिप कर मारा; परन्तु उसका विरोध करने के लिए राम के पास कई तर्क हैं जिसके कारण बाली अपनी त्रुटि की क्षमा मांगता है। अध्यात्म रामायण (४, २, ६४ इत्यादि) में, बाली न केवल क्षमा मांगता है बल्कि राम के चरणों में गिर पड़ता है, वह राम को परम-प्रभु मानता है और इस बात से सुखी है कि मृत्यु के समय उसे राम का दर्शन प्राप्त हो सका। मानस इससे भी आगे बढ़ गया—जटायु के समान बाली भी राम के समक्ष मृत्यु प्राप्त करने से इतना सुखी है कि वह पुनः जीवन प्राप्त करने के वर को भी स्वीकार नहीं करता—

बालि कहा सुनु कृपानिधाना ।।
जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं ।।
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी ।।
मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा ।।[1]

मरने से पूर्व, बाली राम के गुणों का गान करता है और मुक्ति की प्रार्थना न करके उनसे केवल यही वर मांगता है कि पुनः सारे जन्मों में वह उनके चरणों में अनुरक्त रहे। वह सुख से देहत्याग करता है और राम उसे अपने परम धाम भेज देते हैं (४, १० छन्द तथा ११, १)।

वाल्मीकि रामायण में, बाली की मृत्यु से निराश, तारा राम से प्रार्थना करती है कि वे उसे भी मार दें जिससे वह पुनः अपने पति से संयोग प्राप्त करले। परन्तु राम यह कहकर उसे सान्त्वना देते हैं—

“हे वीर भार्या, शोक से कुबुद्धि के वशीभूत मत हो, सम्पूर्ण लोक का विधान विधि पर निर्भर है और कहा जाता है कि उसी से सुख तथा दुःख का योग होता है।[2]

अध्यात्म रामायण में तारा को सान्त्वना देने के लिए राम दार्शनिक तर्क प्रस्तुत करते हैं और इस शारीरिक जीवन की तुच्छता की समझाने का प्रयत्न करते हैं—

“अयि भीरु, तेरा पति शोक करने योग्य नहीं है। तू व्यर्थ उसके लिये शोक करती है। तू विचार कर ठीक बता वास्तव में तेरा पति यह देह है या इस में रहनेवाला जीव? यह शरीर जड़, पंचभूतमय एवं त्वचा, मांस, रुधिर और अस्थियों से बना हुआ है तथा काल, कर्म, और गुणों से उत्पन्न हुआ है और अब भी तेरे सामने है”।

“और यदि तू जीव को अपना पति मानती है तो भी तुझे शोक न करना चाहिए क्योंकि वह निर्विकार है। वह न उत्पन्न होता है, न मरता है, न स्थिर रहता है और न आता जाता है। जीव

---

[1] वही ४, १०, २-३।

[2] वा. रा. ४, २४, ४२।

सर्वव्यापी है, अव्यय है, वह स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक कुछ भी नहीं है, बल्कि एक अद्वितीय आकाश के समान निर्लेप नित्य ज्ञानमय और शुद्ध है। फिर वह शोचनीय कैसे हो सकता है?"[1]

अध्यात्म रामायण (४, ३, १३-३५) में उपर्युक्त तर्क २२ श्लोकों में प्रस्तुत किया गया है पर तुलसी ने इसके गूढ़ रहस्य को केवल दो अर्धालियों में संक्षिप्त करके दिया है—

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥[2]

मोह दूर हो जाने पर तारा राम के चरणों में गिर गई और उसे भक्ति का वर प्राप्त हुआ। मानव-हृदय पर राम की अजेय शक्ति को रेखाङ्कित कर शिव इस प्रसंग का उपसंहार करते हैं—

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥[3]

यद्यपि यहाँ उपमान भिन्न है पर भाव वही है जो कुछ ही पहले भुशुण्डि ने अभिव्यक्त किया था।

वर्षा तथा शरद ऋतुका वर्णन—

वाल्मीकि रामायण (४, २८ व ३०) में, राम वर्षा तथा शरद ऋतु में प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हैं और उन सुन्दर वर्णनों में, सीताहरण के कारण अपने विलाप को सम्मिश्रित करदेते हैं—

"और मैं हूँ कि पत्नी छिन गई और महान राज्य भी हाथ से निकल गया—मेरी दशा उस नदी तट के समान है जो दिन प्रतिदिन खण्डित होता जाता है . . . .।"[4]

अध्यात्म रामायण में यह वर्णन नहीं किया गया, पर रामचरितमानस के किष्किन्धाकाण्ड में इसे बहुत विस्तार दिया गया है। और मानस का यह सर्वसुन्दर अंश भी है। शिला पर सुख पूर्वक बैठे हुए राम अपने दुःख को पुनः लक्ष्मण से कहते हैं—

लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नुभगत कहुँ देखि॥
घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥[5]

---

[1] अ. रा. ४, ३, १३-१६।
[2] रा. च. मा. ४, ११, २-३।
[3] रा, च. मा. ४, ११, ४।
[4] वा. रा. ४, २८, ५८।
[5] रा. च. मा. ४, १३ दोहा; १४, १।

परन्तु तुलसी ने इस विषय का विकास वाल्मीकि की अपेक्षा विल्कुल ही निराले ढंग से किया है। राम कहते हैं—

दामिनि दमक रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। खल के बचन संत सह जैसें ॥
छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई ॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी ॥
समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ ॥

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका ॥[1]
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी ॥
ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी ॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा ॥
महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं ॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥
देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ॥
ऊषर बरसइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा ॥
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय गन उपजें ग्याना ॥

कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं ॥

---

[1] यह विचित्र उपमा ऋग्वेद ३, १०३ में प्रात होती है। ग्रियर्सन (ज. रा. ए. सो., १९०३, पृ० ४६४ पादटिप्पणी) के अनुसार—"इस प्रसिद्ध सूक्त के कई अर्थ लगाए गये हैं परन्तु यहाँ तुलसीदास का अभिप्राय यही है कि उसका केवल शाब्दिक अर्थ ही समझा जाय। वस्तुत: रा. च. मा. से प्रतीत होता है कि यहाँ भागवत पुराण की प्रतिध्वनि है, दे० आगे, भाग २, पृ० ४४।

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ॥[1]

इसके बाद शरद् ऋतु का वर्णनभी इसी शैली में है—

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई ॥
फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई ॥
उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा ॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा ॥
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी ॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए ॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी ॥
जल संकोच बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना ॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहारि सब आसा ॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी ॥[2]

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि ॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ॥
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ॥
गुंजत मधुकर खुर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा ॥
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी ॥
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ नि संकर द्रोही ॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई ॥
देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा ॥

भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ ॥[3]

---

[1] रा. च. मा. ४, १४ व १५।

[2] वही, ४, १६, ५ "कोउ एक पाव भगति जिमि मोंरी" ॥ "इसके अर्थ कई प्रकार से किए गए हैं। ग्राउज ने (पृ० ४४ः) अनुवाद किया है—"उस व्यक्ति की भक्ति के समान जो सम्पूर्णतया अपना नहीं हुआ है" पर सन्तोषजनक अर्थ ग्रियर्सन का है (ज. रा. ए. सो. १९०३ पृ० ४६३-४६६)—" (शरद् के किंचित वर्षाकण) उन थोड़े व्यक्तियों के समान जिनकी मुझमें आस्था है।

[3] रा. च. मा. ४, १६ व १७।

टेसिटोरी के अनुसार इस अंश का मूलाधार निश्चय ही वाल्मीकि रामायण है। इन विद्वान का कथन है—

"वर्ष के इस समय के प्राकृतिक तत्वों की परिस्थिति के फलस्वरूप वाल्मीकि को इन्हें और कविता के पात्रों को विषय बनाने और कुछ सुन्दर उपमाएँ देने का अवसर मिला। रामचरितमानस में भी यही बात है, केवल भेद इतना है कि तुलसीकी उपमाएँ धार्मिक तथा नैतिक हैं।"[१]

ग्रियर्सन ने उपर्युक्त वर्णन का अंग्रेजी अनुवाद किया है और इसको रघुवंश के प्रथम सर्ग के सदृश बताया है—

"इससे कालिदास कृत रघुवंश के प्रथम सर्ग का स्मरण हो आता है। वाक्यों का कुछ विरोधात्मक संतुलन ऐसा है जिससे "**बुक औफ़ प्रॉवर्बस**" की स्मृति होती है।"[२]

परन्तु वाक्यों का सन्तुलन तथा उपमाओं की नैतिकता, भागवत पुराण के (१०, २०) वर्षा तथा शरद् ऋतु के वर्णन में भी विलक्षण हैं। स्पष्ट है कि यहाँ पर भागवत पुराण ही तुलसीदास का आधार रहा होगा यद्यपि मानस में इन वर्णनों की पृष्ठभूमिका को वाल्मीकि की कथा से ग्रहण किया गया है और वर्णन लक्ष्मण के समक्ष राम द्वारा कराया गया है।

कदाचित् रामचरितमानस के लेखक ने उपमाओं में परिवर्तन किया और अनुकरणात्मकता का रहस्य उद्घाटित करना नहीं चाहा। पर कवि को इस रहस्य को गुप्त रखने में सफलता नहीं हुई और इस स्थल में कई ऐसे भागों को ढूंढा जा सकता है जिनके लिए वे भागवत के ऋणी रहे होंगे। उदाहरणत: मैंढकों के टरटराने से वेद पाठ की उपमा भागवत पुराण में भी मिलती है—

"पहले चुपचाप सोने वाले मैंढकों ने पर्जन्य की ध्वनि सुनने पर अपना शब्द करना आरम्भ किया जैसे नियम की समाप्ति के समय ब्राह्मण करते हैं।"[३]

इसी प्रकार भागवत पुराण में तट भँग कर चलने वाली छोटी नदियों की तुलना धन से फूला न समाने वाले दुष्टों से की गई है—

"पहले सूखी हुई क्षुद्र नदियाँ भी उत्पथगामिनी होगई जैसे मनुष्य स्वास्थ्य तथा धन प्राप्ति पर स्वच्छंद हो जाता है।"[४]

मानस में विद्युत की तुलना दुष्टों की मित्रता से की है, पर वह सुस्पष्ट नहीं। यदि भागवत को सामने रखा जाय तो वह स्पष्ट हो जाती है—

"जिस प्रकार वेश्यायें गुणी पुरुषों की कामना नहीं करतीं उसी प्रकार अपनी चंचल मैत्री को स्थिर करने में असमर्थ विद्युत का प्रकाश संसार के मित्र-मेघों से संयुक्त नहीं होता था।"[५]

---

[१] इं. एँ. ४२ (१९१३) पृ० १२।

[२] ज. रा. ए. सो. १९०३ पृ० ४६३।

[३] भागवत पुराण १०, २०, ९।

[४] वही १०, २०, १०।

[५] वही १०, २०, १७।

इसी प्रकार खद्योतों तथा पाखण्डियों की तुलना मानस में अस्पष्ट है पर भागवत पुराण को देखने से बोधगम्य हो जाती है—

"निशा के मुख पर खद्योतों का प्रकाश होते ही ग्रहों का भास नहीं होता जिस प्रकार कलियुग में पाप करनेवाले पाखंडी ही वेदों के समान मान्य हो जाते हैं।"[१]

भागवत पुराण के अनुसार, शरद् ऋतु में व्यापारी, ऋषि, राजा तथा भिखारी अपने कार्यों को सम्पन्न करने के लिये अपने घरों से बाहर चले जाते हैं—

"जिस प्रकार सिद्धजन समय आने पर सिद्धि प्राप्त करते हैं उसी प्रकार वर्षा से अवरुद्ध, वणिग्जन एकाकी, राजा तथा गृहस्थी अपने व्यापार सम्पादन के लिये घर छोड़ देते हैं।"[२]

इस तुलना का उपयोग तुलसीदास ने योगियों के अर्थ में नहीं पर भक्तों के सम्बन्ध में किया है क्योंकि हरिभक्ति प्राप्त करने पर उन्हें कोई दु:ख नहीं रह जाता यद्यपि मानस में यह उपयोग कोई विशेष सन्तोषजनक नहीं।

भागवत पुराण तथा मानस दोनों ही ग्रन्थों में यह अंश उपदेशात्मक है—भागवत में कृष्ण और मानस में राम दोनों के चारों ओर "प्रतीकों का जाल" है और राम लक्ष्मण को उन सब का तात्पर्य समझाते हैं। वाल्मीकि रामायण के प्रकृतिचित्रण के अंश में सीता का स्मरण राम को सदा रहता है और वर्णन में भी सम्मिश्रित रहता है; इसके विरुद्ध मानस में वर्णन का रामके दु:ख से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं, राम के दु:ख का उल्लेख केवल आरम्भ में एक बार हुआ पर उसके पश्चात् कभी नहीं हुआ।

अत: हम देखते हैं कि इस प्रख्यात अंश में वाल्मीकि का प्रभाव केवल ऊपरी ही है। यदि तुलसी ने इसको मानस के किष्किन्धाकाण्ड में प्रस्तुत करके इतना विस्तार दिया है, जबकि मुख्य कथा के विकास के लिये इसका कोई महत्व नहीं,—तो इसलिये कम कि वे वाल्मीकि की परम्परा का अनुकरण करना चाहते थे, बल्कि इसलिये कि वे वैष्णव धर्म-ग्रन्थ के उत्कृष्ट तथा मौलिक प्रतीकों का प्रतिरूप प्रस्तुत करना चाहते थे।

वाल्मीकि रामायण (४, ३०) में, यह विचार कर कि सुग्रीव, सीता को खोजने के अपने वचन को भूल गया है, राम उसके प्रति क्रुद्ध होजाते हैं और उसको भी बाली के समान मार देना चाहते हैं। अध्यात्मरामायण में भी राम के क्रुद्ध होने की बात आई है परन्तु वहाँ पर उस क्रोध को माया का परिणाम बताया गया है—

"व्यवहार की सिद्धि के लिये, राम समयानुकूल क्रोध, मोह, और काम आदि विकारों को स्वीकार करके, विकारों के वशीभूत हुई प्रजा को, अपनी लीला से मोहित कर रहे हैं"।[३]

तुलसी स्पष्ट करके यह नहीं कहते कि राम ने क्रोध का बहाना किया। वह एक बार पुनः राम के व्यवहार के अगम्य रहस्य को रेखांकित करके ही संतुष्ट हो जाते हैं—

---

[१] वही १०, २०, ८।

[२] वही १०, २०, ४९।

[३] अ. रा. ४, ५, २१-२२।

जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा।।
जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी।।
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना।।[१]

मानस में जब लक्ष्मण सुग्रीव के महल में पहुंच जाते हैं तो हनुमान द्वारा चेतावनी देने पर, सुग्रीव अपनी प्रजा को बुलवाने के लिये दूत भेज चुकता है। तारा और हनुमान को लक्ष्मण का क्रोध शांत करने में कोई कठिनाई ही नहीं होती और लक्ष्मण को भी सुग्रीव की दुर्बलता पर दया आ जाती है—सुग्रीव विलासिता के कारण ही कर्तव्यच्युत हो गया था। मानस में, भोगप्रिय सुग्रीव के विलास का वर्णन नहीं है परन्तु वानराधिपति राम से बड़ी चतुराई से क्षमा मांगता है—

बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अति कामी।।
नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा।।
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया।।
यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई।।[२]

वानरों के झुंड के झुंड वहाँ आते हैं और उनमें से प्रत्येक राम को प्रणाम करता है। वानरों की सेना रघुनाथ का नाम लेकर सीता की खोज में सब दिशाओं में जाती है। राम अपनी मुद्रा हनुमान को दे देते हैं क्योंकि उन्हों ने "अत्यधिक कृपालु भगवान् की मूर्ति को हृदय में धारण करके" प्रस्थान किया। परन्तु स्पष्ट है कि राम को यह जानने के लिये कि सीता कहाँ हैं हनुमान की आवश्यकता नहीं। हमें बताया जाता है कि उन्हों ने केवल राजनीति को सुरक्षित रखने के लिये ही पवनसुत हनुमान की सहायता ली (४, २३)।

योगिनी स्वयंप्रभा की कथा वाल्मीकि रामायण के तीन सर्गों में (४, ५०-५२) दी है। अध्यात्म रामायण (४, ६, ६० इत्यादि) में गुहा में से सारे बन्दरों को निकाल कर और माया की शक्ति से उन सब को समुद्र तट पर पहुँचा कर वह स्वयं राम के पास जाती है, और उनसे एक लम्बा वार्तालाप करती है। राम उसकी हार्दिक इच्छा के विषय में प्रश्न करते हैं—उत्तर में वह यही कहती है कि मैं जन्म जन्मान्तर तक प्रभु के चरणों में अनुरक्त रहना तथा निरन्तर आपके साकार रूप का ध्यान करना चाहती हूं। तब राम उसे बद्रिकाश्रम को भेजते हैं, वहाँ राम का नाम लेनेमात्र से उसे परमात्मा प्राप्त हो जायंगे। अध्यात्म रामायण की इस विस्तृत कथा को मानस में कुछ ही अर्धालियों में संक्षिप्त कर दिया गया है—योगिनी[3] राम के पास जाती है और राम उसे भक्ति का वर देते हैं और बद्रिकाश्रम भेजते हैं (४, २५, ४ इत्यादि)।

---

[१] रा च. मा. ४, १८, ३-४।

[२] रा. च. मा. ४, २१, २-३।

[3] मानस में इस योगिनी को नाम नहीं दिया गया है, केवल—"नारि तपपुंज" कहकर उल्लेख किया गया है (४, २४ दोहा)।

अध्यात्म रामायण में अंगद को धैर्य दिलाने के लिये हनुमान राम की दिव्यता पर प्रकाश डालते हैं—

"इसके सिवा बेटा, एक अत्यंत गुप्त रहस्य सुनो—राम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं, वे साक्षात् निर्विकार नारायण हैं। सीता जगन्मोहिनी माया हैं और लक्ष्मण त्रिभुवन के आधार साक्षात् नागनाथ शेष हैं।"[१]

मानस में, ऋक्षराज जाम्बवान भी अंगद को इसी प्रकार के रहस्य को बताकर धैर्य दिलाता है—परन्तु इसमें केवल राम का उल्लेख है, जाम्बवान यह नहीं कहता कि सीता माया और लक्ष्मण शेषनाग हैं—

जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस बिसेषी।।
तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु।।
हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी।।
निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि।।[२]

वाल्मीकि रामायण (४, ६०-६२) में जटायु का भाई सम्पाति वानरों से अपनी कथा को, तपस्वी निशाकर (चन्द्रमा का दूसरा नाम) से वार्तालाप को, तथा उसकी भविष्यवाणी को कह सुनाता है।

अध्यात्म रामायण के अनुसार, राम के साथी वानरों से, सम्पाति की भेंट की भविष्यवाणी करने से पहले, चन्द्रमा माता की योनि में गर्भाधान के लक्षण तथा उसके आकार के विषय में बहुत विस्तार से बात करता है (४, ८, ११ इत्यादि)। मानस में भी, तपस्वी का नाम चन्द्रमा है और सम्पाति के साथ, अध्यात्म रामायण में वर्णित विषय के, उसके वार्तालाप की ओर संकेत भी है—

मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही।।
बहु प्रकार तेहिं ग्यान सुनावा। देह जनित अभिमान छड़ावा।।[३]

वानरों में से कौन समुद्र का उल्लंघन करेगा, इसका निश्चय करने के लिये समुद्र तट पर उनके विचारविनिमय का वर्णन वाल्मीकि व अध्यात्म रामायण और रामचरितमानस में लगभग एक समान हुआ है। रामचरितमानस में जाम्बवान हनुमान से कहता है कि राम रावण को मार देंगे और सीता को वापस ले आयेंगे, **कौतुक लागि संग कपि सेना**।[४] निस्सन्देह राम उनकी सहायता बिना ही सफल हो सकते थे।

---

[१] अ. रा. ४, ७, १६-१७।

[२] रा. च. मा. ४, २६, ६ दोहा। मोक्ष चार प्रकार के हैं—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य।

[३] रा. च. मा. ४, २८, ३।

[४] वहीं, ४, ३०, ६।

अन्तिम पद्य के छन्द, दोहे व सोरठे में रामकथा के आध्यात्मिक माहात्म्य का उल्लेख है—

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥
नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक॥

अरण्यकाण्ड के समान, पुष्पिका में इस काण्ड को जो नाम दिया गया है वह इस काण्ड के पाठ अथवा श्रवण के फल के अनुरूप है—

"कलियुग के समस्त पापों का नाश करने वाले श्रीरामचरितमानस का **विशुद्धसंतोषसम्पादन** नामक चौथा सोपान समाप्त हुआ।"

किष्किन्धाकाण्ड की विशेषताएँ—

विषय तथा आकार की दृष्टि से, मानस का किष्किन्धाकाण्ड अरण्यकाण्ड से मिलता जुलता है और एक प्रकार से उस काण्ड का विस्तार ही है। अरण्यकाण्ड के समान, यहाँ पर भी कथावर्णन बहुत ही संक्षिप्त है और कहीं कहीं तो वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण की तुलना में, अस्पष्ट भी अधिक है। इस काण्ड का मूलाधार भी, अध्यात्म रामायण ही है और इसमें उपदेशात्मकता को भी अधिक स्थान प्राप्त हुआ है—संक्षिप्त होने पर भी किष्किन्धाकाण्ड में दो "स्तुतियां," —("सुग्रीव स्तुति," तथा "बाली स्तुति") और एक "गीता"—(राम को तारा का उपदेश) है। तुलसीदास को इन सब की प्रेरणा अध्यात्मरामायण से ही प्राप्त हुई; इसमें वर्षा तथा शरद् ऋतु के वर्णन का प्रत्यक्ष आधार भागवत पुराण है।

मानस के किष्किन्धा काण्ड की एक विशेषता यह है कि इसमें राम के किसी भी "महाभक्त" को प्रस्तुत नहीं किया गया—विलासी सुग्रीव तथा निष्ठुर बाली के वार्तालापों के होने पर भी उन्हें राम का महाभक्त नहीं कहा जा सकता। हनुमान वास्तव में उनके भक्त के रूप में उपस्थित हुए हैं परन्तु कथा के इस अंश में उनका स्थान गौण है यद्यपि बाद में हनुमान के स्थान को तुलसीदास ने सहर्ष विस्तार दिया है। योगिनी स्वयंप्रभा, गीध सम्पाति, तथा ऋक्षराज जाम्बवान का चित्रण भी राम के भक्तों के रूप में हुआ है परन्तु ये सब प्रासंगिक पात्र हैं और इनका कोई विशेष स्थान नहीं। भक्ति की दृष्टि से किष्किन्धाकाण्ड विशेष उल्लेखनीय नहीं है, और कदाचित् इसी कारण मानस में यह काण्ड अधिक विकसित नहीं हुआ।

अध्याय—१०

रामचरितमानस का सुन्दरकाण्ड

वाल्मीकिरामायण के संस्करण 'ग' तथा अध्यात्म रामायण के समान, रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड के आरम्भ में ही समुद्र का उल्लंघन करने के लिये हनुमान के पर्वत पर चढ़ने का उल्लेख है। इस काण्ड की समाप्ति सागर की कथा से होती है—वाल्मीकि रामायण के 'ख' संस्करण में यह कथा उपान्त्य सर्ग में है और संस्करण 'ग' इससे बहुत पहिले ही समाप्त होजाता है।

रामचरितमानस का सुन्दरकाण्ड न अधिक लम्बा है और न अधिक छोटा—इसमें ६० पद्य (लगभग ६०० अर्धालियां) हैं। पिछले दो काण्डों की अपेक्षा कथावस्तु का विकास यहाँ अधिक हुआ है और पद्यव्यवस्था भी अधिक नियमित है—अधिकतर पद्यों में चार चौपाइयां और एक दोहा है। केवल वर्णनात्मक अंशों में (जैसे पद्य ३ व ३५) और उपसंहार में हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया गया है। अरण्यकाण्ड तथा किष्किन्धाकाण्ड के समान यहाँ भी प्रस्तुतकर्ता शिव हैं और वे पार्वती को कथा बताते हैं। प्रस्तुतकर्ता के रूप में भुशुण्डि केवल दो बार (पद्य ५, ३ तथा ५८ दोहा) आते हैं। इसके अतिरिक्त, भुशुण्डि का उल्लेख एक बार (पद्य ४८, १) प्रथम पुरुष में भी हुआ है।

कथा का सार—

वन्दना—श्लोक—१—राम के प्रति।
श्लोक २-३—हनुमान के प्रति।

समुद्र के तट पर हनुमान एक पर्वत पर चढ़कर छलांग लगाते हैं जिससे वह पर्वत छिन्न हो जाता है। वे मैनाक पर्वत को हाथ से छूते हुए जाते हैं। उनकी परीक्षा के लिए देवताओं द्वारा भेजी सुरसा नाम की सर्पों की माता से हनुमान की भेंट होती है। हनुमान को खाने के लिए सुरसा अपना विशाल मुख खोलती है पर एक विचित्र युक्ति का आश्रय लेकर हनुमान उस से बच निकलते हैं। उसके बाद, वे एक राक्षसी[1] पर विजय प्राप्त करलेते हैं, लंका में एक उच्च शिला पर उतरते हैं और वहाँ से वे रावण की नगरी को देखते हैं। लंका वर्णन (१-३)।

---

[1] वाल्मीकि रामायण में इसका नाम सिंहिका है।

लंका में प्रवेश पाने के लिए हनुमान छोटा सा रूप धारण कर लेते हैं। वे (लंका नगरी की अधिष्ठात्री देवी) 'लंकिनी' से मिलते हैं और उसे एक घूंसा मारकर धराशायी करदेते हैं। तब वह हनुमान को राम का दूत जान कर उन्हें नगर में प्रवेश करने देती हैं। हनुमान लंका की तथा रावण के राजमहल की यात्रा करते हैं परन्तु वहाँ सीता का दर्शन नहीं होता। एक हरिमन्दिर में वे रावण के भाई राम-भक्त विभीषण से परिचय प्राप्त करते हैं। इस भेंट से विभीषण बहुत सुखी होता है और अपनी दुर्दशा हनुमान को बताता है। हनुमान उसे धैर्य रखने को कहते हैं। विभीषण से ही हनुमान को सीता के निवासस्थान का ज्ञान होता है। तब हनुमान अशोक वाटिका में जाते हैं (४-८)।

अशोक-वाटिका में हनुमान दुःखी सीता को देखते हैं। वे अपने को एक वृक्ष में छुपा लेते हैं। रावण, सीता के पास आता है और साम तथा भय द्वारा उन्हें फुसलाता है। सीता रावण की एक बात नहीं मानतीं। तब रावण उन्हें मारना चाहता है परन्तु उसकी रानी मन्दोदरी उसे रोकती है। सीता को डराने का आदेश देकर वह सीता को राक्षसियों को सौंप कर चला जाता है। और धमकी देता है कि यदि एक महीने के भीतर उन्होंने रावण के प्रस्ताव को स्वीकार न किया तो वह उन्हें मार डालेगा (८-११)।

राक्षसियां सीता को सताना चाहती हैं परन्तु त्रिजटा बीच में पड़ कर उन्हें सीता के विषय में देखा अपना एक स्वप्न बताती है। जब सीता त्रिजटा के साथ अकेली रहजाती हैं तो वे अपने प्राणों का त्याग करने के लिये उससे चिता तय्यार करने को कहती हैं। पर त्रिजटा बात को आया गया करके चली जाती है (११-१२)।

जिस समय सीता निराश हो रही हैं तो अशोक वृक्ष में छिपे हनुमान राम की अंगूठी उनके पास फेंकते हैं। सीता उस मुद्रा को पहिचान जाती हैं। अपने गुप्त स्थान से ही हनुमान राम के पराक्रम का वर्णन करते हैं जिससे सीता मुग्ध हो जाती हैं। उसके बाद हनुमान प्रगट होते हैं और सीता उनसे राम का कुशल समाचार पूछती हैं। राम के दुःख का वर्णन करते हुए हनुमान सीता को निर्भीक होने के लिए कहते हैं क्योंकि शीघ्र ही वे इस बन्धन से मुक्त हो जाएँगी। वानर हनुमान एक बृहद् रूप धारण करके सीता के समक्ष अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। सीता हनुमान के प्रति कृतज्ञता प्रगट करती हैं और उस वाटिका के सारे फल खाने देती हैं (१३-१७)।

हनुमान इस वाटिका को उजाड़ देते हैं और राक्षसों के एक दल को मार देते हैं। इसकी सूचना पाने पर रावण हनुमान के विरुद्ध कुछ सैनिकों को भेजता है, और तदुपरान्त अपने पुत्र 'अक्ष' के नेतृत्व में एक पूरी सेना को। हनुमान रावण की सेना के टुकड़े टुकड़े कर देते हैं और उसके पुत्र अक्ष को मार देते हैं। तब रावण इन्द्रजित (मेघनाद) को भेजता है और वह ब्रह्मवाण की सहायता से हनुमान को मूर्छित करके नागपाश से बांध कर रावण के समक्ष ले जाता है (१८-२०)।

रावण हनुमान से प्रश्न करता है और हनुमान निर्भय होकर उत्तर देते हैं—परब्रह्म स्वरूप राम के वे दूत हैं, राम की ओर से ही वे रावण से सीता को लौटा देने की धमकी देते हैं। रावण उनका उपहास करता है और उन्हें मरवा डालने का उपदेश देता है पर विभीषण बीच में पड़कर हनुमान को बचा लेता है। रावण के आदेश पर राक्षस, हनुमान की पूंछ में आग लगा देते हैं। पर हनुमान उससे बच निकलते हैं और एक मकान से दूसरे मकान पर छलांग मारते हुए सारी नगरी में आग लगा देते

हैं और फिर अपनी पूंछ की आग बुझाने के लिए वे समुद्र में कूद पड़ते हैं। तब फिर वे सीता के पास अशोकवाटिका में लौटकर आते हैं और अपने स्वामी राम के लिये उनसे किसी स्मृतिचिह्न को मांगते हैं। तब सीता अपनी चूड़ामणि और एक सन्देश देती हैं। हनुमान वापसी के लिए समुद्र का एक बार फिर उल्लंघन करते हैं और सारे वानर उनका भव्य स्वागत करते हैं। सब के सब राम से मिलने जाते हैं। मार्ग में वे मधुवन का नाश करते है और उसके रक्षकों को मारते हैं (२१-२८)।

हनुमान तथा अन्य वानर राम तथा सुग्रीव से जाकर मिलते हैं। जाम्बवान राम से हनुमान की शक्ति की कथा कहते हैं और हनुमान उन्हें चूड़ामणि देकर सीता के दुःख का वर्णन करते हैं। राम हनुमान से बहुत हर्षित हैं, वे उनसे यात्रा तथा लंकादहन का पूरा समाचार जानना चाहते हैं और हनुमान से एक वर मांगने को कहते हैं। हनुमान भक्ति का वर मांगते हैं। तब राम सुग्रीव से अपनी सारी सेना को एकत्र करने का आदेश देते हैं। असंख्य वानरों और भालुओं के गमन से नाद होने लगता है और पृथिवी डोलने लगती है। विश्व भयभीत होजाता है (२९-३५)।

उधर लंका में हनुमान के प्रस्थान के बाद से राक्षस भयाक्रान्त हैं। मन्दोदरी रावण से प्रार्थना करती है कि सर्वशक्तिमान राम से वैर नहीं करना चाहिए और सीता को लौटा देना चाहिए। पर अहंकार से भ्रान्त रावण उसकी एक नहीं सुनता। रावण को सभा में बैठे२ पता चलता है कि वानरों ने समुद्र पार कर लिया। उधर रावण के सारे परामर्शदाता उसे और भी चढ़ाते हैं और कहते हैं कि आदमियों तथा वानरों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु विभीषण रावण से प्रार्थना करता है कि सीता को लौटा देना चाहिए और राम की दिव्यता को स्वीकार कर लेना चाहिए। रावण का मंत्री माल्यवान भी उसके कथन की पुष्टि करता है। विभीषण के पुनः पुनः कहने पर, रावण उसे मारकर हटा देता है (३५-४१)।

विभीषण राम के पास जाता है और उनका दर्शन करने के विचार से बहुत सुखी होता है। सुग्रीव, राम को राक्षस के आगमन की सूचना देता है और उससे बचे रहने का परामर्श देकर उसे बन्दी बनाने का प्रस्ताव करता है पर राम उत्तर देते हैं कि वे शरणागतों पर दया करते हैं। विभीषण को राम के पास लाया जाता है और वह राम के चरणों में गिरकर राम की शरण की प्रार्थना करता है। उदार भाव से राम उसका स्वागत करते हैं, और विभीषण राम की स्तुति का गान करता है। वह भक्ति का वर मांगता है और उसे पा लेता है। राम उससे समुद्र पार करने के साधन पूछते हैं और विभीषण उनसे सागर की सहायता लेने को कहता है। राम को यह स्वीकार्य है यद्यपि लक्ष्मण चाहते हैं कि राम अपने बाणों से समुद्र को सुखा दें (४२-५१)।

वानरों का रूप धारण करके शुक के नेतृत्व में रावण अपने गुप्तचरों को राम के शिबिर में भेजता है। परन्तु राम की उदारता से आकृष्ट गुप्तचर राम की स्तुति का गान करते हैं। शीघ्र ही उन्हें पहिचान लिया जाता है। राम के साथी वानर उन्हें तंग करते हैं। लक्ष्मण उन्हें छुड़ा देते हैं और एक नयी चुनौती देकर उन्हें रावण के पास वापस भेज देते हैं। रावण शुक से यात्रा की बातें पूछता है और वह रावण को वानरों की सेना की शक्ति तथा राम के प्रताप का बखान करता है और रावण को लक्ष्मण का एक पत्र देता है जिसमें सीता को लौटाने की चुनौती है। स्वयं शुक भी इसी बात का अनुमोदन करता है। इस पर क्रुद्ध रावण शुक को ठोकर मारकर भगा देता है और वह राम की शरण लेता है। इस प्रकार (अगस्त्य के शाप के परिणामस्वरूप) उसे

अपने राक्षसी-शरीर से मुक्ति मिल जाती है और वह पुन: ऋषि होकर अपने आश्रम को लौट जाता है। (५२-५७)।

राम की प्रार्थना का उत्तर न देने पर, वे 'सागर' से क्रुद्ध होकर एक बाण फेंकते हैं। तब ब्राह्मण का रूप धारण कर 'सागर' राम के समक्ष उपस्थित होता है और राम से क्षमा याचना करता है क्योंकि राम का आदेश न मानने का कारण उसका मूढस्वभाव ही है। राम उससे समुद्र पार करने का उपाय पूछते हैं और वह नल तथा नील मुख्य वानरों से पुल बनवाने का परामर्श देता है। वह राम से प्रार्थना करता है कि अपने बाण से वे समुद्र के उत्तर तट पर रहने वाले पाप के राशि दुष्ट मनुष्यों का वध करदें। राम उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं। तब सागर चला जाता है (५८-६०)।

उपसंहार में तुलसीदास ने राम-कथा के महात्म्य को रेखाङ्कित किया है क्योंकि इसके अध्ययन तथा श्रवण से सम्पूर्ण सुख मिलता है (६०, छन्द व दोहा)।

सुन्दरकाण्ड को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—**पूर्वार्ध** में हनुमान के लंका में किए पराक्रमों का वर्णन है (१-३४) और **उत्तरार्ध** में रावण की सभा, विभीषण का द्रोह, शुक की यात्रा तथा सागर का उपाख्यान वर्णित है (३५-६०)।

सुन्दरकाण्ड का पूर्वार्ध (पद्य १-३४)

वन्दना का तीसरा श्लोक हनुमान के प्रति है जिसमें उन्हें "ज्ञानियों में सर्वप्रधान" (ज्ञानिनामग्रगण्यम्) कहकर सम्बोधित किया है। सुन्दरकाण्ड के पूर्वार्ध में लगभग निरन्तर हनुमान ही मुख्य पात्र हैं; वे केवल अजेय शूर ही नहीं, परन्तु राम के परमभक्त भी हैं। यहाँ पर कथावस्तु मुख्यतया वाल्मीकि रामायण का अनुकरण करती है यद्यपि नाटकों का और विशेषकर '**प्रसन्नराघव**' का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है।

हनुमान की आकाश यात्रा के वर्णन में मानस के लेखक ने वाल्मीकि रामायण के विवरण का संक्षेप किया है। हनुमान के अद्भुत पराक्रम की बात करते हुए शिव, पार्वती से कहते हैं—

> उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥[1]

शिला पर चढ़े हनुमान के द्वारा देखी गई रावण की नगरी का वर्णन मानस में तीन हरिगीतिका छन्दों में किया है—रामचरितमानस के गीतिपूर्ण तथा वर्णनात्मक प्रसंगों में इस छन्द को प्राय: प्रयुक्त किया गया है।[2]

उन मनोहर उपवनों में हनुमान ने मनमोहिनी कन्याओं को देखा; कहीं करोड़ों योद्धा सावधानी से नगर की रक्षा करते हैं और कहीं दुष्ट राक्षस पशुओं का भक्षण कर रहे हैं; इनकी पूरी कथा तुलसीदास ने संक्षेप से ही कही है।

---

[1] रा. च. मा. ५, ३, ५।

[2] उदाहरणत: राम सीता विवाह (१, ३११-३३६) व राम तथा राक्षसों के युद्ध (३, १८-२०) के वर्णन में।

एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥[१]

इस भयंकर नगरी को देखकर हनुमान सावधानी से काम लेते हैं—

अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार॥
मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥[२]

ग्राउज़[3] ने "मसक" का अर्थ अंगरेज़ी में "ग्नाट" अथवा "वामन" किया है; टेसिटोरी[४] भी यही अर्थ मानते हैं। वाल्मीकि रामायण (संस्करण 'ग' ५, २, ४९, संस्करण 'ख' ५, ९, ४७) के तदनुरूप सन्दर्भ में कहा गया है कि हनुमान ने "वृषदंशक" अथवा "बिलाउ" का रूप धारण किया; अधिकतर व्याख्याकारों ने इस शब्द का पर्याय "मार्जार" अथवा "विडाल" दिया है। पर कुछ ने 'विडाल' के स्थान पर 'वामन' ही अर्थ लगाया है; यह विचित्र लगता है। टेसिटोरी के अनुसार मानस का यह स्थल उन व्याख्याकारों के मत की पुष्टि करता है जो वामन को 'वृषदंश' का पर्याय बताते हैं।

परन्तु संस्कृत तथा हिन्दी दोनों में "मसक" का अर्थ 'वामन' नहीं पर 'मच्छर' ही है, रामचरितमानस में भी यह शब्द कई बार[५] प्रयुक्त हुआ है और इसका अर्थ 'मच्छर' ही है। इसके अतिरिक्त, सुन्दरकाण्ड के इस अंश में अर्थ सुस्पष्ट है—तुलसी ने यह नहीं कहा कि हनुमान ने मच्छर का रूप धारण कर लिया (वह निरर्थक होता), परन्तु कहा है कि हनुमान ने "मच्छर के समान" अर्थात् उतना छोटा रूप धारण किया। इससे पहले आने वाली अर्धाली से भी इस अर्थ की पुष्टि होती है, वहाँ पर कहा गया है कि वानर ने "अति लघु" (बहुत ही छोटा) रूप धारण किया। ये 'अति लघु' पद ही अगले पद्य में पुन: आये हैं—"अति लघु रूप धरेउ हनुमाना" (५, ५, २)।

इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में कहा गया है कि लंका में प्रवेश पाने के लिए हनुमान ने बहुत छोटा रूप धरा (५, १, ४३—"धृत्वा सूक्ष्मं वपु:")। ऐसा प्रतीत होता है कि मानस का "अति लघु" अध्यात्म रामायण के "सूक्ष्म" का अनुवाद मात्र है और "मसक समान" उसकी व्याख्या। अत: इस स्थल में वाल्मीकि के 'वृषदंश' के अर्थ की ओर कोई संकेत नहीं। निश्चित बात यह है कि अध्यात्म रामायण में—जहाँ वाल्मीकि रामायण के संस्करण 'ग' का समीप से अनुकरण हुआ है—हनुमान के 'विलाउ' में परिवर्तित होने को स्वीकार नहीं किया है।

---

[१] रा. च. मा. ५, ३, छन्द, ३। तीर्थों में मृत्यु प्रातकरने वाले लोगों के समान, जिस किसी के भी राम के वाण लगते हैं उन्ही की मुक्ति हो जाती है।

[२] रा. च. मा. ५, ३ दोहा; ४, १।

[3] ई. टी. पृ० ४६१ पादटिप्पणी १।

[४] इं. एं. १९१३ पृ० १३ (६४)।

[५] दे०, २, २३२, २; ४, १७, ४ तथा अन्यत्र।

नगरी में प्रवेश करने से पूर्व, हनुमान को 'लंकिनी' राक्षसी पर विजय पानी है, वाल्मीकि रामायण (संस्करण 'ग' ९, ३)[1] में इस राक्षसी को 'लंका' कहा गया है। यह 'लंकिनी' या 'लंका' रावण के नगर का मूर्तिमान रूप है। अध्यात्म रामायण में, राक्षसी 'लंका' हनुमान से उस भविष्य वाणी को बताती है जो पुराकाल में ब्रह्मा ने की थी अर्थात् किसी वानर द्वारा आहत होने से यह तात्पर्य निकलेगा कि प्रभु-हरि ने राम का अवतार ग्रहण करलिया है और राक्षसों का शीघ्र ही नाश होगा। पर वह राक्षसी प्रभु राम के दूत का दर्शन करके बहुत सुखी है (५, ३, ४३)। इसी प्रकार मानस में भी राम के दूत का दर्शन करके 'लंकिनी' बहुत हर्षित है और हनुमान से लंका में प्रवेश करने को कहती है (५, ४, ४ दोहा, तथा ५, १)।

कथा के इस स्थान पर, भुशुण्डि गरुड़ से कहता है—

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई।।
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही।।[2]

यह कथन भुशुण्डि के अन्य कथन (३, २, ३-४) का शुद्ध प्रतिरूप है।

सीता की खोज में रात्रि के समय हनुमान के लंका भ्रमण का वर्णन ८ सर्गों में दिया है (वा. रा. संस्करण 'ग' ५, ४-१२)। मानस में वह कुछ ही अर्धालियों में देदिया गया है (रा. च. मा. ५, ५, ३-४)। वाल्मीकि रामायण के निद्राग्रस्त अन्तःपुर के मार्मिक वर्णन (संस्करण 'ग' ५, ९ व १०) को मानस में सावधानी से अलग रक्खा गया है। पर इसके विरुद्ध तुलसीदास ने हनुमान तथा विभीषण की प्रथम भेंट के कथानक को प्रस्तुत किया है जो न वाल्मीकि रामायण में है और न अध्यात्म रामायण में।

वाल्मीकि रामायण में विभीषण हनुमान व रावण की भेंट से पहले उपस्थित नहीं होता। वह केवल इसलिए बीच में आता है कि रावण अपने बन्दी (हनुमान) को न मारे। इसके प्रतिकूल रामचरितमानस में, रावण के भवनों में सीता को न पाकर और वहाँ से निकलते ही हनुमान को उस राक्षस नगरी में हरि की भक्ति के कई चिन्ह प्राप्त होते हैं और इस ही प्रकार उनकी भेंट धार्मिक विभीषण से होती है—

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा।।

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ।।

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।
मन महुँ तरक करैं कपि लागा तेहीं समय बिभीषनु जागा।।

---

[1] यह कथा संस्कृत रामायण के संस्करण 'क' तथा 'ख' में नहीं है।

[2] रा. च. मा. ५, ५, १-२।

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥[1]

तब उन दोनों राम भक्तों में उदात्त वार्तालाप हुआ विभीषण ने हनुमान से कहा—

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी ॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ॥
तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता ॥
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा ॥

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर ॥

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी ॥[2]

मानस में, विभीषण ही (अध्यात्म रामायण के समान 'लंका' नहीं) हनुमान को सीता के स्थान अशोक वाटिका की सूचना देता है। वही रूप धारण करके ('करि सोइ रूप') [3] हनुमान तुरन्त ही वहाँ जाते हैं। यहाँ पर "सोइ" से अभिप्राय उसी "अतिलघु" रूप से है—अशोक वाटिका में प्रवेश करने के लिए हनुमान ने वही छोटा रूप धारण किया जो नगरी में प्रवेश करने के लिए किया था।

हनुमान की उपस्थिति में, रावण तथा सीता के बीच का दृश्य,—जैसा वह मानस में वर्णित है—वाल्मीकि से प्रभावित नहीं; परन्तु उसमें प्रसन्नराघव नाटक का बहुत अधिक प्रभाव है। वाल्मीकि रामायण ५, २०-२२) में प्रथम तो रावण निर्लज्जता से सीता के सौन्दर्य की सराहना करता है, फिर अपने वैभव तथा शक्ति का वर्णन करता है और सीता से महारानी होजाने का आग्रह करता है (२०)। सीता रावण को सदाचार का उपदेश देती हैं और उसके कर्तव्य का स्मरण कराती हैं, साथ ही राम उससे बदला लेंगे इसकी धमकी देती हैं (२१)। तत्पश्चात् रावण सीता को धमकाता है और अपनी बन्दिनी को डराता है। अन्त में राक्षसियों से सीता को समझाने का आदेश देकर वहाँ से चला जाता है (२२)।

राक्षसराज के निर्लज्ज भाषण का मानस में संक्षेप से संकेत किया गया है—

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा ॥[4]

---

[1] रा. च. मा. ५, ५, ४, दोहा ; ६, १-२।
[2] रा. च. मा. ५, ७ ; ८, १।
[3] वही ५, ८, ३।
[4] वही ५, ९, २।

मानस में अशोक वाटिका के सीता तथा रावण के संवाद में वाल्मीकि का प्रभाव बहुत ही कम है—

कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥
सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन॥

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी॥
स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥
चंद्रहास[1] हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥
सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ[2] कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥[3]

श्री सीताराम[4] का कथन है कि मानस का सीता-रावण संवाद प्रसन्नराघव के छठे अंक से प्रत्यक्ष लिया गया है—मानस तथा प्रसन्न राघव के इस संवाद की उन्होंने तुलना की है जिससे इस परिग्रहण के विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता; यहाँ प्रमाण के रूप में हम केवल रावण की तलवार 'चन्द्रहास' को सम्बोधित सीता के शब्दों को उद्धृत करते हैं—

प्रसन्नराघव, ६, ७७ (श्लोक ३५)

"चन्द्रहास, हर मे परितापं। रामचन्द्रविरहानलजातम्॥
त्वं हि कान्तिजितमौक्तिकचूर्णं। धारया वहसि शीतलमम्भः॥"

---

[1] शब्दार्थ चन्द्रमा का हास, तलवार का काव्यात्मक नाम जिससे उसके ठंडेपन का आभास हो।

[2] रानी मन्दोदरी, रावण की प्रथम पत्नी जो बाद में भी कई जगह बीच में पड़ती हैं।

[3] रा. च. मा. ५, ९, २ दोहा; १०, १-४।

[4] ज. रा. ए. सो. १९१४ पृ० ४१६।

“ हे चन्द्रहास रामचन्द्र के विरह की अग्नि से उत्पन्न मेरे सन्ताप को दूर करो क्योंकि तू धारा में ऐसे शीतल जल को धारण किए हुए है जो कान्ति में मोतियों के चूर्ण से भी बढ़कर है। ”

रा. च. मा. ५, १०, ३

चन्द्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं ॥
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा ॥

मानस में चौपाई का तीसरा पाद स्पष्टतया प्रसन्नराघव के ३५वें श्लोक के अन्तिम पाद का स्थानान्तरण है—“ धारया वहसि शीतलम् अम्भः ”, अर्थात् अपनी धारा पर तू शीतल जल को धारण करती है ;[1] परन्तु तुलसीदास ने तुलना को संक्षिप्त करके लिखा अर्थात् तू शीतल तथा तीव्र धारा को वहाती है; जिसके परिणामस्वरूप प्रसन्नराघव के सन्दर्भ के बिना, मानस की चौपाई अस्पष्ट रहती है। और इसी कारण मानस के कुछ सम्पादकों ने (विशेषकर “ **तुलसी ग्रन्थावली** ” के सम्पादक ने) त्रुटि की और अर्धाली को “ निसि तव असि ” विच्छेद करके “ तेरी बड़ी धार शीतल रात्रि के समान है ” अर्थ निकाला। अपने अंग्रेजी अनुवाद (पृ० ४६५) में ग्राउज़ ने यही अर्थ लिया है ; और श्री सीताराम ने भी इसी अर्थ को अपनाया है—परन्तु इन अन्तिम समालोचक ने यह भी कहा है कि हिन्दी में, ‘ शीतल रात्रि ’ पद कवितामय नहीं और ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने यह तुलना “ बिना किसी कारण ” जोड़ी है।

वाल्मीकि रामायण (५, २७) में, रावण के प्रस्थान के पश्चात् भी सीता अपने दुःख पर विलाप करती रहती हैं ; वे राक्षसों के नाश की भविष्यवाणी करती हैं और मृत्यु का आह्वान करती हैं। त्रिजटा बीच में आकर, राक्षसियों को मना करती हैं कि वे सीता को ग्रासित न करें। वह अपने स्वप्न का भी वर्णन करती है जिससे लंका का नाश सूचित होता हैं ; इसलिए त्रिजटा उन राक्षसियों से कहती है कि वे सीता से क्षमा मांगें क्योंकि सीता ही विपत्ति काल में उनकी रक्षा कर सकेंगी। इसपर अनुगृहीत सीता उसे अपनी सहायता का वचन देती हैं।

मानस में अन्य राक्षसियों के प्रस्थान के बाद भी त्रिजटा राक्षसी सीता के पास रह जाती है। अपने जीवन का अन्त करने की इच्छा से सीता उससे चिता बनाने की बात कर आत्म हत्या में सहायक होने को कहती हैं—

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी ॥
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई ॥
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई ॥

---

[1] यहाँ पर ‘ धारा ’ तथा ‘ अम्भः ’ शब्द का आलंकारिक प्रयोग हुआ है जिसका (फ्रांसीसी में) अनुवाद करना सम्भव नहीं ; धारा का अर्थ ‘ प्रवाह ’ भी है और (तलवार की) ‘ धार ’ भी। इसी प्रकार अम्भः शब्द का अर्थ, ‘ जल ’ के अतिरिक्त ‘ तलवार की धार ’ भी है। आधुनिक मराठी में किसी प्रखर बुद्धि वाले व्यक्ति के लिए पाणिदार (पाणि-जल) कहते हैं। शीतल का अर्थ ‘ ठंडा ’ तथा ‘ रुचिकर, सुखदायक ’ दोनों ही हैं। वास्तव में रावण की तलवार की धार दुखी सीता के लिए सुखदायक होगी

सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी।।
सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि।।
निसिन अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी।।[1]

इस प्रकार के संवाद का पूर्वरूप न तो वाल्मीकि रामायण में है और न अध्यात्म रामायण में। परन्तु इसके समान एक दृश्य प्रसन्नराघव (६, ८२-९९) में उपलब्ध है। प्रतीत होता है कि इस विषय में तुलसीदास का मूलाधार वही नाटक है। इस नाटक में और मानस में त्रिजटा सीता की प्रार्थना का विरोध करती है पर नाटक में बहाना दूसरा है—

"हे सखि, इस देश में आग ढूंढ लाना कठिन है"।[2]

हिन्दी रामायण में त्रिजटा के प्रस्थान के पश्चात् सीता अशोक वृक्ष की ओर मुड़ती हैं (यहाँ हनुमान छिपे ही हैं), और निराश होने के कारण वे अशोक वृक्ष से आग देने की प्रार्थना करती हैं क्योंकि त्रिजटा ने तो आग देने को मना करदिया।

पहिले दृश्य के समान, यह भी प्रत्यक्षतया प्रसन्नराघव (६, ९१-९६) से प्रेरित हुआ है। इस नाटक में सीता अशोक वृक्ष को सम्बोधित करके कहती हैं—

"कुरु सकरुणं चेतः श्रीमन्नशोकवनस्पते।
दहनकणिकामेकां तावन्मम प्रकटीकुरु।।
ननु विरहिणां सन्तापाय स्फुटीकुरुते भवान्।
नवकिसलयश्रेणिव्याजात् कृशानुशिखावलिम्।।" (३७)

"हे अशोक वनस्पति, अपने चित्त को द्रवित करो। मेरे लिए अग्नि के केवल एक कण को प्रगट करदो। क्योंकि विरही व्यक्तियों को सन्तप्त करने के लिए नव पल्लवों के बहाने अग्नि की ज्वाला का क्या तुम परिस्फोट नहीं करते?

तुलसीदास ने इस श्लोक का केवल भाषान्तर दिया है—

सुनहि बिनय मम बिटप अशोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।।
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना।।[3]

इस स्थल पर प्रसन्नराघव में अगले दृश्य की प्रस्तावना प्रस्तुत की है—अग्निकण प्राप्त करने के लिए अशोक वृक्ष की ओर सीता हाथ फैलाती हैं। इतने में वृक्ष से कुछ चीज गिरती है यह राम

---

[1] रा. च. मा. ५, १२, १-३।
[2] प्रसन्नराघव ६, ८९।
[3] रा. च. मा. ५, १२, ५-६।

की मुद्रा है जिसे हनुमान ने फैंका। सीता उसे शीघ्र ही लेती हैं और उसकी शीतलता पर आश्चर्य करती हैं फिर उस राम की मुद्रा को वे पहचान जाती हैं। मानस में भी घटना इसी प्रकार है—

कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥
तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥[1]

हनुमान सीता को बताते हैं कि यह मुद्रा राम ने उनके लिए दी है। इस पर आश्चर्यचकित हो सीता पूछती हैं कि यह कैसे सम्भव है कि एक मनुष्य ने वानरों से मैत्री की। टेसिटोरी का मत है कि इस प्रश्न के विषय में तुलसीदास वाल्मीकि रामायण (५, ३५, २) से प्रभावित हैं। पर अध्यात्म-रामायण (५, ३, २५-२६) और प्रसन्नराघव (६, १०७) में भी सीता ने यही बात पूछी है।

इसके बाद के दृश्य में तो प्रसन्नराघव का प्रभाव और भी अधिक द्रष्टव्य है। इसी नाटक में, राम के दु:ख का वर्णन करते हुए हनुमान सीता से कहते हैं—

"हे देवि, आपके लिए प्रभु ने जो सन्देश भेजा है उसे सुनिये—चन्द्रमा मेरे लिए तप्त सूर्य है, शीतल मेघ दावानल के समान हैं। नदी की लहरों से प्रभावित शीतल वायु क्रुद्ध नाग के श्वास के समान है। नवमालिका की कोमल लता मेरे लिए भालों के समान हैं और कुवलय वन घनी झाड़ियों के समान। हे सुमुखि, तुम्हारे विरह के समय से सम्पूर्ण संसार ही विपरीत होगया है।

किस व्यक्ति को अपना दु:ख बताकर मैं अपने दु:ख से मुक्त होऊँ? हम दोनों में गुप्त स्नेह को कौन जानेगा? हे चन्द्रमुखी, केवल मेरा हृदय ही उस प्रेम की वास्तविकता को समझा सकता है। चिरकाल से मेरी आत्मा तुम्हारे साथ है। हे प्रिये अब मैं क्या करूं?"[2]

मानस में इसकी छाया इस प्रकार है—

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू॥

---

[1] रा. च. मा. ५, १२ दोहा; १३, १।

[2] प्रसन्नराघव ६, ११४, श्लोक ४४ व ४६।
—अयि देवि आकर्णय तावद् यत्सन्दिष्टं देवेन देव्याः।
"हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः।
सरिद्वीचीवातः कुपितफणिनिश्वासपवनः॥
नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनं।
मम त्वद्विश्लेषात् सुमुखि विपरीतं जगदिदम्॥
कस्याख्याय व्यतिकरमिमं मुक्तदुःखो भवेयं।
को जानीते निभृतमुभयोरावयोः स्नेहसारम्॥
जानात्येकं शशधरमुखि प्रेमतत्त्वं मनो मे।
त्वामेवैतच्चिरमनुगतं तत् प्रिये किं करोमि॥"

वाल्मीकि रामायण में यह दृश्य लंका दहन से पूर्व, सीता के साथ हनुमान की पहली भेंट के समय घटित होता है—सीता हनुमान को आभरण दे देती हैं और विस्तार से उस कौवे की कथा सुनाती हैं जिसने चित्रकूट में उन पर प्रहार किया था और राम से दण्ड पाया था (५, ३८, १२ इत्यादि),[१] वाल्मीकि रामायण में सीता के साथ हनुमान के दूसरे वार्तालाप में कोई भी नयी बात नहीं जोड़ी गई। मानस में सीता-हनुमान का दूसरा वार्तालाप भी वाल्मीकि रामायण की कथा (५, ३८ व ५६) के अनुरूप है; और मानस का प्रथम वार्तालाप, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, प्रसन्नराघव नाटक से प्रेरित हुआ है।

वानरों द्वारा मधुवन के उजाड़ने का वर्णन वाल्मीकि रामायण में दो सर्गों में (५, ६१-६२) है, पर मानस में इसका संक्षिप्त उल्लेख हुआ है। इसके विरुद्ध, हनुमान ने अपनी यात्रा का जो वर्णन राम से किया वह तुलसीदास ने बढ़ा दिया है। विरहिणी सीता के दुःख का वर्णन करने के लिए, हनुमान ने वाग्मिता के सारे साधनों का प्रयोग करके उसे अलंकृत कर दिया है—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट।।[२]

चतुर वानर ने राम के प्रति सीता के सन्देश को भी अपने ही ढंग से अनुवादित किया है। इनके अनुसार सीता ने कहा—

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना।।
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा।।
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा।।
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी।।[३]

राम हनुमान से अपनी कृतज्ञता इतनी भावुकता से अभिव्यक्त करते हैं कि वानर उनके चरणों पर गिर जाता है। प्रभु तथा उनके सेवक—भक्त के बीच इतना स्नेह प्रस्तुतकर्ता शिव तक को द्रवित कर देता है—

सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा।।
सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर।।[४]

हनुमान स्पष्ट करते हैं कि उन्होंने यह सब कार्य अपने प्रभु की कृपा से ही सम्पन्न किए, और भक्ति को छोड़कर उन्हें किसी अन्य पुरस्कार की आवश्यकता नहीं। राम उनकी प्रार्थना को तत्क्षण

---

[१] यह कथा मानस के अरण्यकाण्ड में वर्णित है ३, १-२।

[२] रा. च. मा. ५, ३० दोहा।

[३] रा. च. मा. ५, ३१, ३-४।

[४] वही ५, ३३, १-२।

स्वीकार भी कर लेते हैं। कवि के लिए इस कथा का महत्व, एक प्रकार की 'फल-स्तुति' द्वारा रेखाङ्कित किया गया है—

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा॥[1]

सुन्दरकाण्ड का उत्तरार्ध (५, ३५-६०)

वाल्मीकि रामायण के संस्करण 'ग' तथा अध्यात्म रामायण में, राम के पास हनुमान के वापस आने पर और यात्रा का वर्णन सुनाने पर, सुन्दर काण्ड की समाप्ति होती है। इसके विपरीत, वाल्मीकि रामायण के संस्करण 'ख' में सुन्दर काण्ड और भी बहुत आगे, समुद्र पर पुल की रचना के साथ, समाप्त होता है (संस्करण 'ग' ६, २२)। मानस में सुन्दरकाण्ड थोड़ा पहले सागर की कथा से समाप्त होता है और यह बात वाल्मीकि रामायण के संस्करण 'ख' के अनुरूप है। अतः रामचरितमानस के पाँचवें काण्ड के अन्तिम २५ पद्य वाल्मीकि रामायण के संस्करण 'ग' के छठे काण्ड के प्रथम २२ सर्गों के और आध्यात्म रामायण के छठे काण्ड के प्रथम दो सर्गों के अनुरूप हैं।

सुन्दरकाण्ड के इस उत्तरार्ध में, तुलसी ने वाल्मीकि की कथा के प्रयोग में बहुत स्वतंत्रता का व्यवहार किया है—उन्होंने घटना क्रम का अनुकरण भी नहीं किया और अधिकतर घटनाओं का वर्णन भी पर्याप्त मात्रा में विभिन्न विधि से किया है। मानस के इस अंश में पात्र-प्रधानता की दृष्टि से राम के पश्चात् राक्षस विभीषण आता है; राम के परम भक्त के रूप में उसका चित्रण होने से उसे बहुत महत्व भी प्राप्त हुआ है।

वानर-सेना के इच्छानुसार लंका की ओर प्रस्थान का विवरण दो हरिगीतिका छन्दों में है, जो ३५ वें पद्य के साथ हैं। राम तथा उनके साथियों को समुद्रतट पर डेरा डालते छोड़कर, स्थल परिवर्तन करके कवि लंका का वर्णन करता है जहाँ "भयंकर" हनुमान के आगमन के पश्चात् से राक्षस निरन्तर भयग्रस्त हैं। अयोध्याकाण्ड[2] के समान इस दृश्य-परिवर्तन की सूचना स्थानवाचक अव्यय से प्राप्त होती है—

"उहाँ निसाचर रहहिं ससंका . . . . . ।"[3]

इस स्थान पर तुलसीदास ने एक ऐसे कथानक को प्रस्तुत किया है जो वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण में नहीं है—यह प्रसंग मय राक्षस की पुत्री, रावण की प्रथम पत्नी के बीच में पड़ने का है (५, ३६)। राम के दूत हनुमान के पराक्रमों को सुनकर मन्दोदरी को भविष्य की चिन्ता होती है और वह रावण से सीता को लौटा देने के लिए कहती है। विभीषण तथा माल्यवान से पहले मन्दोदरी के इस प्रथम भाषण का कारण भय ही प्रतीत होता है। फिर भी मन्दोदरी यह दर्शा देती है कि उसने

---

[1] वही ५, ३४, २।

[2] रा. च. मा. २, २२६, २ दे० भाग १, अध्याय ७ पृ. १५७।

[3] वही ५, ३६, १।

राम में प्रभु को पहचाना है क्योंकि वह रावण से कहती है कि "हरि"[1] का विरोध नहीं करना चाहिए। लंका काण्ड में मन्दोदरी अधिक स्पष्टतया राम की भक्ति[2] का प्रदर्शन करती है।

मन्दोदरी की चेतावनियों की ओर तनिक भी ध्यान न देकर रावण सभा बुलाता है। प्रतीत होता है कि इस समय वानर सेना पहले ही समुद्र पार कर चुकी थी—

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥ (५, ३७, ४)

यदि यह अर्धाली प्रक्षित नहीं है तो मानना होगा कि तुलसीदास ने त्रुटि की है—क्योंकि वानर-सेना के समुद्र पार करने का वर्णन लंका काण्ड में होता है और काल तथा तर्क की दृष्टि से रावण की सभा के पश्चात् आता है क्योंकि रावण द्वारा लंका से निकाले जाने पर (५, ३७, ४) ही विभीषण से राम समुद्र पार करने के उपायों को पूछते हैं (५, ५०, ३) जिससे यह त्रुटि अक्षम्य प्रतीत होती है। परन्तु (१० अर्धालियोंवाले) नियमित पद्यों के बीच इस ३७ वें पद्य में १० के स्थान पर ११ अर्धालियां होने के कारण यह अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि ३७ वें पद्य की ७ वीं अर्धाली प्रक्षित है। इस अर्धाली से जो असंगतता आजाती है आपातत: उसकी ओर मानस के किसी भी आधुनिक सम्पादक का ध्यान नहीं गया और परिणामस्वरूप उन्होंने इस अर्धाली को जैसा का तैसा रहने दिया है।

वाल्मीकि रामायण के संस्करण 'ग' में रावण तथा अन्य राक्षसों के विचार-विनिमय को १० सर्गों में दिया है (६, ६-१६)। इस बातचीत के समय, रावण का भाई विभीषण तीन बार बीच में पड़कर रावण से राम के विरुद्ध युद्ध न करने का और सीता को लौटा देने का प्रयत्न करता है। इसके पक्ष में प्रधानतया यही तर्क दिए जाते हैं कि राम की शक्ति असीम है और जब से सीता लंका में आई हैं तब से बराबर अपशकुन होरहे हैं। रावण उसकी बात नहीं सुनता और बड़ी कठोरता से उसे अलग करदेता है।

अध्यात्म रामायण (६, ३, २० इत्यादि) में, विभीषण केवल एक बार बीच में पड़ता है और इस एक बार में भी उसका भाषण व्याख्यान का रूप ले लेता है। इसी प्रकार मानस में भी विभीषण राम के दिव्य प्रताप का बखान करता है—

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म . . .[3]

और अन्त में वह रावण से पश्चात्ताप करने को कहता है क्योंकि राम उसे अवश्य क्षमा करदेंगे।

रावण का बुद्धिमान मंत्री माल्यवान भी विभीषण की बात का समर्थन करता है। यहाँ पर माल्यवान के बीच में पड़ने का वृत्तान्त तुलसीदास का आविष्कार प्रतीत होता है।[4] रावण के हठ

---

[1] वही ५, ३६, ३ : . . . करष हरि सन परिहरहू।

[2] दे० अध्याय ११।

[3] रा. च. मा. ५, ३९, १।

[4] वा. रा. ६, ३५ में माल्यवान गुप्तचरों की रिपोर्ट के बाद उपस्थित होता है।

करने पर, माल्यवान तो पीछे हट जाता है पर विभीषण निरन्तर अपनी बात पर जमा रहता है। रावण तथा विभीषण के इस वादविवाद का अन्त तीनों कविताओं में लगभग एक सा है। पर तुलसी ने रावण की कठोरता तथा विभीषण के धैर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है—

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीति।।
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।।
उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई।।[1]

विभीषण के प्रस्थान से रावण का नाश होना उपचारायोग्य हो जाता है—

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा।।[2]

विभीषण से रावण का सम्बन्ध टूटने का और राम के पास प्रस्थान का वर्णन, मानस में बहुत ही मौलिक ढंग से दिया है। वाल्मीकि के लिए, रावण के प्रति विभीषण के राजद्रोह का कारण इसके पक्ष का न्याय संगत होना और रावण की कठोरता है। पर वह है तो राजद्रोह ही—विकट परिस्थिति के समय विभीषण, रावण के शत्रु के पक्ष में हो जाता है। इसके विरुद्ध मानस में यह सुस्पष्ट है कि विभीषण तो सदा से राम का भक्त था तथा रावण की दुष्टता से वह बहुत सताया गया। “ इस सज्जन ” की उपस्थिति से लंका और वहाँ का राजा रावण सुरक्षित थे, पर उसके प्रस्थान से नगरी का अविलम्ब नाश होगया।

अत एव विभीषण मन में हर्षित होकर प्रस्थान करता है—इसके पुरस्कार स्वरूप वह राम का दर्शन पायेगा जिससे वह भी अहल्या तथा दण्डकारण्य के समान पवित्र हो जाएगा।

वाल्मीकि रामायण में, राम अपने परामर्शदाताओं से विभीषण का स्वागत करने के विषय में बात करते हैं। उनके अनुसार शरणागत को शरण न देना पाप तथा युद्ध के नियमों के विरुद्ध होगा (६, १८)। मानस में राम इसी प्रकार का तर्क प्रस्तुत करते हैं परन्तु उनका दृष्टिकोण ‘ नीति ’ का नहीं ‘ भक्ति ’ का है—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू।।
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।
पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ।।
जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई।।
निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।[3]

---

[1] रा. च. मा. ५, ४१, ३-४।

[2] वही ५, ४२, २।

[3] वही ५, ४४, १-३।

वाल्मीकि रामायण में, रावण के अन्याय का तथा अपनी प्रार्थना की अस्वीकृति का वर्णन करके, विभीषण राम के चरणों में गिरपड़ता है। वास्तविक सेनाध्यक्ष के रूप में राम उससे राक्षसों के बल तथा दुर्बलता के विषय में प्रश्न करते हैं और विभीषण आग्रह की प्रतीक्षा किए बिना ही निस्संकोच राजद्रोही का कार्य पूर्ण कर देता है (६, १९, ७)।

अध्यात्मरामायण (६, ३, १७ इत्यादि) में, इस वार्तालाप का लक्षण ही परिवर्तित होगया; विभीषण पहले से ही राम भक्त है। राम के चरणों में गिर कर वह राम की दिव्य-उपाधियों का विस्तार से वर्णन करता है और अन्त में राम से भक्ति का वर मांगता है—तत्क्षण ही राम उसकी कामना पूर्ण करते हैं और उसको लंका के राज्य पर अभिषिक्त कर देते हैं।

मानस के राम-विभीषण संवाद पर अध्यात्मरामायण का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है। यहाँ यह अंश सर्वथा मौलिक है और सुन्दर शैली में है। राम की कृपा की भिक्षा मांगते हुए विभीषण राम के चरणों में गिर जाता है—

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुर त्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥[१]

राम उसे उठा लेते हैं और सान्त्वना देते हैं। वे उसे क्षमा कर देते हैं। प्रभु की कृपा का प्रसाद पाकर विभीषण बहुत ही सुखी होता है—

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ अचरनु कीन्ह नहिं काऊ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा॥[२]

विभीषण को शान्त करने के लिए राम अपनी कृपा के महत्व तथा सेवकों के प्रति अपने स्नेह को बताते हैं—

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥[३]

अन्त में सुखी विभीषण राम से परिशुद्ध भक्ति की प्रार्थना करता है और राम उसे यह वर प्रदान कर देते हैं। इस संवाद का उपसंहार प्रस्तुतकर्ता ने उत्साहपूर्वक किया है—

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥[४]

इस सुन्दर संवाद का फ्रांसीसी भाषा में पूरा अनुवाद होना चाहिए—प्रभु राम की कृपा का यह अनुपम दृष्टान्त है। वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण ने हिन्दी के कवि को इस संवाद की केवल

---

[१] रा. च. मा. ५, ४५, ४।
[२] वही ५, ४७, ४।
[३] वही ५, ४८, १।
[४] वही ५, ५०, १।

प्रेरणा दी। उल्लेखनीय बात यह है कि शिव और पार्वती के साथ यहाँ पर भुशुण्डि को भी (निस्सन्देह अनुभव के आधार पर) राम के "स्वभाव" (अर्थात् उनकी कृपा) से "अभिज्ञ" बताया है। यह भुशुण्डि की कथा की ओर संकेत है जिसका वर्णन उत्तरकाण्ड में होगा।[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि सब पात्रों में विभीषण ही तुलसीदास को विशेष प्रिय था। राक्षस शरीर होने पर भी उसका सन्त चरित, राम भक्ति के पावन गुणों का तथा राम की कृपा का ज्वलन्त उदाहरण है—राम की कृपा भेदभाव रहित है और राम "**बिनु हेतु सनेही**"[2] हैं। मानस के सुन्दरकाण्ड में इस पात्र के चित्रण पर अधिक ध्यान दिया गया है। जिन तीन प्रसंगों में विभीषण उपस्थित हुआ है उनमें से पहले (हनुमान तथा विभीषण की भेंट) में न तो वाल्मीकि रामायण का प्रभाव है न अध्यात्मरामायण का; दूसरा प्रसंग (रावण-विभीषण संवाद) तीनों ही ग्रन्थों में उपलब्ध है पर मानस में उसका निर्वाह कुछ मौलिक ढंग से हुआ है और उसमें कई नई विशेषताएँ हैं; तीसरा प्रसंग (राम-विभीषण संवाद) भी तीनों ग्रन्थों में है परन्तु तुलसी ने उसमें सम्पूर्णतया नवीनता ला दी है। तुलसीदास की परिपक्व अवस्था की कृतियाँ—**विनयपत्रिका** तथा **गीतावली**[3]—में राम के परम भक्त के रूप में विभीषण का महत्वपूर्ण स्थान है। नाभा जी की '**भक्तमाला**'[4] में विभीषण की गणना ४२ हरिवल्लभों में हुई है और उसके व्याख्याकार प्रियदास ने विभीषण की भक्ति का उदाहरण देने के लिए एक उपाख्यान भी दिया है—यदि वैष्णव "सन्तों" में विभीषण का इतना ऊँचा स्थान है तो वह निःसन्देह तुलसी के कारण ही है।

विभीषण के परामर्श के अनुसार, राम समुद्रतट पर बैठकर सागर की इच्छा की प्रतीक्षा करते हैं, यद्यपि लक्ष्मण के हिंसा के आश्रय लेने के सुझाव पर भी राम ने समुद्र से शिष्टाचार पूर्वक पार जाने को कहा था। इस प्रकार आरब्ध, सागर की कथा (५, ५९, ४) स्थगित रहती है और शुक की कथा के पश्चात् यह आगे चलकर (५, ५७ दोहा इत्यादि) फिर वर्णित होती है। वाल्मीकि रामायण के संस्करण 'क' तथा 'ख' में सागर की कथा, रावण द्वारा राम के शिबिर में गुप्तचरों के प्रेषित किए जाने के बाद आती है। इसके विरुद्ध, उसके संस्करण 'ग' और तदनुसार अध्यात्मरामायण में, गुप्त चरों को कई बार प्रेषित किया जाता है जिससे भ्रम होता है। संस्करण 'ग' (६, २०) में शार्दूल, रावण को रिपोर्ट देता है; और शुक का दूत, वानरों द्वारा बन्दी बनाया जाता है, पर राम के कहने पर स्वतंत्र कर दिया जाता है (अ. रा. ६, ३, ४९-५९); उस 'ग' संस्करण (६, २१) में राम सागर पर बाण छोड़ते हैं (अ. रा. ६, ३, ६०-८५); 'ग' संस्करण (६, २४) में रावण को शुक रिपोर्ट देता है (अ. रा. ६, ४, १३ इत्यादि); अन्त में, संस्करण 'ग' (६, २५-३०) में रावण सारण तथा अन्य गुप्तचरों के साथ शुक को **पुनः** राम के शिबिर में भेजता है। वाल्मीकि के संस्करण 'ग' के २५ से ३० वें सर्गों का प्रतिरूप अन्य संस्करणों में भी मिलता है पर २० वें तथा

---

[1] दे० अध्याय १३ पृ० २८८ इत्यादि।

[2] रा. च. मा. ५, ३९, ३।

[3] **गीतावली** ५, २६-४६।

[4] ग्रियर्सन "ग्लीनिङ्गस्....." ज. रा. ए. सो. १९१० पृ० २७३-२७४।

२४ वें सर्ग का नहीं। इस बात से यह समझ में आता है कि सागर की कथा को शुक की रिपोर्ट के पहिले अथवा बाद में रखते तुलसीदास को संकोच हुआ। उन्होंने दूसरी ही उपपत्ति स्वीकार की, इससे कथा के प्रवाह का भी निर्वाह होगया और अध्यात्मरामायण में स्वीकृत पहली उपपत्ति को भी छोड़ा नहीं और इसका परिणाम यह हुआ कि मानस में शुक की कथा ने सागर की कथा को दो टुकड़ों में विभाजित करदिया।

वाल्मीकिरामायण (६, २८) में, राक्षस शुक रावण से राम की सेना का वर्णन करता है और सीता को लौटाकर उनसे युद्ध करने का विचार छोड़ने को कहता हैं; शुक के इस परामर्श से रावण क्रुद्ध हो जाता है और उसे भला बुरा कहकर दूर करदेता है।

अध्यात्मरामायण में शुक तथा रावण की भेंट की प्रगति अपनी ही शैली के अनुसार हुई है। राक्षसों के राजा से शुक बताता है कि राम परम-प्रभु हैं (६, ४, ४०-४२)। मानस में शुक इस प्रकार की कोई बात नहीं कहता, परन्तु वह राम के वास्तविक भक्त के समान ही वार्तालाप तथा आचरण करता है।

अध्यात्मरामायण में, रावण के क्रोध के सामने कांपता हुआ शुक अपने घर लौट जाता है; एक बार फिर ब्राह्मण का रूप धारण करके वह वन में चला जाता है—क्योंकि पहिले यह राक्षस ब्राह्मण था और अगस्त्य ऋषि के शाप के परिणाम-स्वरूप वह राक्षस होगया; पर ऋषि ने वचन दिया था कि राम का दर्शन होते ही वह शाप से मुक्त हो जाएगा; युद्ध काण्ड के ५ वें सर्ग में यह कथा विस्तार से बताई गई है।

मानस में, क्रुद्ध रावण शुक के ठोकर मारता है (जैसे उसने पहले विभीषण के साथ किया था) और शुक तुरन्त (विभीषण के ही समान) राम की शरण में चला जाता है—

जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥
नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई॥
रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा॥[१]

इस अन्तिम अंश में, अध्यात्मरामायण में वर्णित, शुक की कथा का संकेत है। परन्तु शुक के ठोकर खाने और राम के पास जाने का ध्येय, शुक तथा परम भक्त विभीषण में सादृश्य स्थापित करना है।

सागर की कथा, जो ५१ वें पद्यमें अधूरी रह गई थी ५७ वें पद्य में पुनः पर बिना ढंग के प्रस्तुत की गई है—

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।[२]

---

[१] रा. च. मा. ५, ५७, ४-६।
[२] वही ५, ५७ दोहा।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार राम के अग्नि बाणों से सूख जाने के भय से, सागर एक भव्य रूप धारण करके राम के समक्ष आता है; और बड़े गौरव से अपने दुस्तर स्वभाव का उल्लेख करके राम से क्षमा चाहता है—

"हे राघव, पृथिवी, वायु, आकाश, जल तथा ज्योति अपने स्वभाव को सुरक्षित रक्खे शाश्वत रूप से मार्ग का आश्रम लेते हैं; इसीप्रकार मेरा भी स्वभाव है—मैं अगाध हूँ और दुस्तर हूँ"[1]

अध्यात्मरामायण (६, ३, ६८) में भी, सागर "दिव्य रूप धारण करके" ही राम के सामने उपस्थित होता है; और राम में परम प्रभु को न पहचानने के कारण अपनी मूर्खता को स्वीकार करके, उनसे क्षमा मांगता है—

"हे नाथ लीलावश माया से आच्छन्न होकर मनुष्यरूप हुए आप निर्गुण परमात्मा को मैं जड़बुद्धि मूर्ख कैसे जान सकता हूँ? पशुओं को जैसे लाठी मार्गमें ले जाती है उसी प्रकार मुझ जैसे मूर्ख जीवों के लिये तो दण्ड ही सन्मार्ग पर लाने वाला होता है।"[2]

वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्मरामायण से एक साथ प्रेरित होकर रामचरितमानस में इस कथा को विकसित किया गया है—

जरत जंतु जलनिधि जब जाने ॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना ॥

काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच ॥[3]

भयभीत होकर समुद्र प्रभु के चरण पकड़ कर कहता है—

छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी ॥
तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए ॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ॥
प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही ॥
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी ॥
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई ॥[4]

[1] वा. रा. ६, २२, २५-२६।
[2] अ. रा. ६, ३, ७६-७८।
[3] रा. च. मा. ५, ५८, ४, दोहा।
[4] वही ५, ५९, १-४।

वाल्मीकिरामायण (६, २२, ३२ इत्यादि) में सागर राम से उन अभीरों की शिकायत करता है जो उत्तर तट पर निवास करते हैं और नदियों के जल का पान कर के उन्हें अपवित्र करते हैं। समुद्र को इस पाप से मुक्त करने के लिए, राम ने अग्नि बाण से इस प्रदेश की सब नदियों को सुखा दिया। मानस में इस कथानक का संक्षित तथा अस्पष्ट वर्णन है (५, ६०, ३)।

सागर के प्रस्थान के साथ, रामचरितमानस का सुन्दरकाण्ड समाप्त हो जाता है। पिछले काण्डों के समान इसके उपसंहार में भी तुलसीदास राम कथा की प्रशंसा करते हैं (६० छन्द व दोहा)।

सुन्दरकाण्ड की पुष्पिका इस प्रकार है—

"कलियुग के समस्त पापों का नाश करने वाले रामचरितमानस का **ज्ञानसम्पादन** नामक पांचवाँ सोपान समाप्त हुआ।"

सुन्दरकाण्ड की विशेषताएँ

पद्यव्यवस्था तथा कथावस्तु की गति की दृष्टि से, रामचरितमानस का सुन्दरकाण्ड पिछले दो काण्डों की एक प्रकार की प्रतिक्रिया है—यहाँ कथावस्तु अत्यधिक विकसित है, इस काण्ड का अधिक भाग सामान्यतया सजीव तथा नाटकीय संवादों से भरा है और अयोध्याकाण्ड के बाद यही काण्ड साधारणतया अधिक लोकप्रिय भी है।

मानस के सुन्दरकाण्ड में और विशेषकर इसके उत्तरार्ध में वाल्मीकि कथा के उपयोग में तुलसी ने बहुत कुछ स्वतंत्रता बरती है। निस्सन्देह कुछ बातें तो प्रत्यक्षरूप से वाल्मीकि रामायण से ली गई प्रतीत होती हैं और वाल्मीकि रामायण की कुछ ऐसी कथाओं की ओर संकेत भी है जिनका वर्णन हिन्दीरामायण में नहीं है। परन्तु वाल्मीकि की प्रतिध्वनियां इस काण्ड में इतनी नहीं जितनी पिछले काण्डों में हैं। दूसरी ओर, तुलसीदास ने जयदेवकृत प्रसन्नराघव का अधिक उपयोग किया है। श्रीसीताराम[1] के अनुसार, यदि तुलसीदास ने इस नाटक से परिग्रहण किए भी तो इसमें कोई असाधारणता नहीं क्योंकि तुलसीदास के समकालीन वैष्णवों में इस नाटक का बहुत सम्मान था। इस मूल आधार का उपयोग करने से सुन्दरकाण्ड का वह प्रमुख भाग प्राप्त हुआ जिसकी प्रधान पात्र सीता हैं और जिसमें धार्मिकता को छोड़, कुछ लौकिकता और ऐसी अलंकारिता आगई है जो प्रेरणा के रहस्यवाद के समक्ष विचित्र प्रतीत होती है।

मानस के सुन्दरकाण्ड में अध्यात्मरामायण का प्रभाव बहुत कम दृष्टिगोचर होता है। रावण-हनुमान संवाद तथा राम-विभीषण संवादों का स्वरूप मानस में अध्यात्मरामायण से सर्वथा भिन्न है। इस काण्ड में कोई भी दार्शनिक व्याख्यान नहीं है—अध्यात्मरामायण की शास्त्रीयता तथा उसका रहस्यवाद, जिसने अरण्यकाण्ड तथा किष्किन्धाकाण्ड में स्थान पाया था, यहाँ से दूर कर दिए गये हैं। यहाँ पर कथावस्तु के साथ पावन विचारों का सम्मिश्रण कवि[2] की विलक्षण पद्धति के अनुकूल ही हुआ है। पात्रों का चित्रण स्वाभाविक है—रावण क्रूर तथा अहंकारी है, और राम की दिव्यता में

---

[1] ज. रा. ए. सो. १९१४, पृ० ४१६।

[2] उदाहरणत: ५, ३, ५; ३, छन्द ३; १६, दोहा; २६, ४ इत्यादि।

विश्वास करने को तैयार ही नहीं; सीता का चित्रण हाड़ मांस की बनी नारी के समान हुआ है, वे मायामयी छाया नहीं हैं; धैर्यवान होते हुए भी राम अपनी प्रियतमा के विरह में विलाप करते हैं; हनुमान का चरित्रचित्रण निष्ठापूर्ण दूत, चतुर नीतिज्ञ तथा वाग्मी के रूप में हुआ है, उनका यही चरित्र वाल्मीकिरामायण तथा नाटक में था। परन्तु वह यहाँ पर राम के परम भक्त भी हैं और यद्यपि वह "ज्ञानिनामग्रगण्यम्"[1] हैं फिर भी वे अपने को रघुनाथ की कृपा के पात्र,[2] "अधम सखा" स्वीकार करते हैं। भक्तमाला के अनुसार हनुमान शिव के अवतार हैं और शिव ने वानर रूप में अवतार राम की सेवा के निमित्त लिया[3]। अतः उनकी निष्ठा भगवत्सेवा है। परन्तु रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड में हनुमान अपनी गणना उन "दीनों" में करते हैं जिन पर बिना किसी गुण के भी, अकारण स्नेह करने वाले राम की कृपा रहती है।

कुछ अंशों के अलङ्कारिक होने पर भी, सुन्दरकाण्ड की कथा स्फूर्तिदायक है। यद्यपि एक समान, नाटकीय साहित्य से प्रभावित, बालकाण्ड के अन्तिम भाग की अपेक्षा सुन्दरकाण्ड कम लौकिक है। यहाँ पर कवि की मुख्य चिन्ता आपत्तियों को प्रमाणित अथवा खण्डित करना नहीं अपितु उनको उदात्त बनाना तथा उनका उल्लेख करना है—और इसी कारण इस काण्ड की कथावस्तु में अत्यधिक स्वतंत्रता है और पिछले काण्डों की दार्शनिक उलझनों का अभाव भी है। परमप्रभु स्वरूप राम को यहाँ पर विष्णु नहीं बताया गया; वे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव से भी ऊपर हैं[4]। यहाँ पर न तो उनके भावनाहीन होने का प्रश्न है, और न उनकी मायामयी लीला का; इस काण्ड में "माया" शब्द का प्रयोग दार्शनिक अर्थ में नहीं, पर 'छल' या 'जादू' के अर्थ में हुआ है; केवल दो स्थानों पर इस शब्द का प्रयोग राम की सृजन शक्ति को द्योतित करने के लिए हुआ है[5]। फिर भी यहाँ 'माया' और 'सीता' में ऐक्य का प्रतिपादन नहीं हुआ, बल्कि लक्ष्मण व सीता दोनों ही मानव पात्र हैं।

---

[1] रा च. मा. वन्दना श्लोक ३।

[2] वही ५, ७।

[3] वा. रा. (१, १७) के अनुसार देवताओं ने राम के सहायक वानरों का अवतार लिया। तुलसी इस प्रसंग को स्वीकार तो करते हैं (रा. च. मा. १, १८८) पर यहाँ पर उसका ध्यान नहीं करते।

[4] रा. च. मा. ५, २१, २; २३, ४।

[5] वही ५, २१, २; ५९, २।

अध्याय—११

रामचरितमानस का लंकाकाण्ड

मानस का लंकाकाण्ड पिछले तीन काण्डों की तुलना में अधिक लम्बा है—इसमें १२६ पद्य हैं अर्थात् सुन्दरकाण्ड से दुगने और किष्किन्धाकाण्ड से चौगुने। इसमें कथा का आरम्भ समुद्र पर सेतुबन्ध से होता है। यह काण्ड सामान्यतया वाल्मीकिरामायण के बंगाली संस्करण के युद्धकाण्ड के अनुरूप है। परन्तु वाल्मीकिरामायण के तीनों संस्करणों तथा अध्यात्मरामायण के युद्धकाण्ड में लंका के विध्वंस करने के पश्चात् राम के अयोध्या लौटने और उनके राज्याभिषेक का विवरण भी सम्मिलित है, जब कि मानस में यह विवरण उत्तरकाण्ड में दिया गया है।

इस सम्पूर्ण काण्ड में पद्यव्यवस्था बहुत ही अनियमित है पर चार चौपाइयों और एक दोहे से बने नियमित पद्य भी यत्र तत्र उपलब्ध हैं। छन्द का प्रयोग प्राय: केवल युद्ध के वर्णनों और स्तुतियों में किया गया है। अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड तथा सुन्दरकाण्ड के समान इस काण्ड के प्रस्तुतकर्ता भी शिव ही हैं यद्यपि भुशुण्डि तीन बार (३४, ७; ७२, ६; ११४, २) उपस्थित होते हैं।

आख्यानक्रम तथा कथा की प्रगति की दृष्टि से लंकाकाण्ड में तुलसीदास द्वारा प्रस्तुत विवरण वाल्मीकिरामायण से पर्याप्तमात्रा में भिन्न है, मानस में युद्ध के बर्णन को कम स्थान दिया गया है—काण्ड के आधे भाग में लगभग ६० पद्यों में युद्ध का वर्णन है, और फिर भी युद्ध के इन वर्णनों में बीच बीच में अन्य ऐसे विषय भी आजाते हैं जिन में से बहुत से वाल्मीकि रामायण में या तो हैं ही नहीं या यहाँ अपेक्षाकृत अधिक विकसित हुए हैं।

लंकाकाण्ड का कथासार—

वन्दना—श्लोक १—राम के प्रति।
श्लोक २ व ३—शिव के प्रति।

नल, नील तथा वानरों द्वारा सेतु बांधना। इस स्थान पर राम शिवलिंग की प्रतिष्ठापना का संकल्प करते हैं और शिवभक्ति का उपदेश देते हैं। वानरसेना समुद्र पार करती है। समुद्र के पार आकर, राम की आज्ञासे वानर इच्छापूर्वक फल खाते हैं; और वे जिस किसी भी राक्षस को पा जाते हैं उसे तंग करते हैं (१-५)।

राम तथा उनकी सेना के समुद्र पार करने की सूचना प्राप्त करके रावण व्याकुल हो उठता है, मन्दोदरी उसे परामर्श देती है कि वह राम के जोड़ का नहीं हैं और राम बहुत बलवान् शत्रु हैं, वस्तुत:

वे हरि का अवतार हैं। साथ ही वह उससे राम का भजन करने को कहती है। पर रावण उत्तर में यही कहता है कि इसे किसी का भय नहीं (५-८)।

रावण मंत्रियों की सभा बुलाता है। उसके पुत्र प्रहस्त को छोड़कर सभी, युद्ध करने के पक्ष में हैं; प्रहस्त भो रावण को राम की दिव्यशक्ति से टक्कर न लेने की चेतावनी देता है और सीता को लौटा देने का आग्रह करता है। पर रावण उसे भो कठोरता से डाँटता है (८-१०)।

राजमहल में प्रवेश करने के उपरान्त रावण भोग-विलास में लग जाता है। इधर अपने मित्रों के साथ राम सुवेल पर्वत पर आरोहण करते हैं। और वहाँ चन्द्रोदय देखकर अपने साथियों से चन्द्रमा के काले धब्बों के विषय में प्रश्न करते हैं; वे सब भिन्न उत्तर देते हैं। तभी वे लंका के ऊपर दृष्टिपात करते हैं, राजप्रासाद के ऊपर कुछ देखकर वे उसे बादलों का समूह तथा विद्युत मानते हैं; पर विभीषण उन्हें बताता है कि वह रावण का छत्र है और मन्दोदरी के कर्णफूल हैं। विद्युत के कड़कड़ाने की ध्वनि वहाँ पर बजते मृदंगों की हैं। इस पर एक ही बाण से राम रावण के छत्र मुकुट और मन्दोदरी के कर्णफूल काट गिराते हैं; उनका बाण फिर से उनके तरकस में लौट आता है (१०-१३)।

रावण तथा उसका समग्र दल इसको अपशकुन मानकर भयभीत हो जाता है। मन्दोदरी एक बार फिर रावण से विनती करती है कि राम ब्रह्मा का अवतार हैं और उनसे मुकाबला नहीं करना चाहिए। इस बात को वह दार्शनिक ढंग से प्रस्तुत करती है। रावण उसकी बातों का उपहास करत है और मन्दोदरी को डांटता है (प्रथम दिवस का अन्त) (१४-१६)।

दिन होते ही रावण अपनी सभा पुनः बुलाता है और उधर राम भी मंत्रणा करते हैं। जाम्बवान् राम को यह परामर्श देता है कि अंगद को रावण के यहाँ दूत के रूप में भेजा जाय। इस प्रस्ताव को राम स्वीकार कर लेते हैं और अपने दूत को आचरण की पूर्ण स्वतंत्रता दे देते हैं (१७)।

लंका में प्रवेश करने पर अंगद झगड़ा करता है और रावण के पुत्र प्रहस्त से द्वन्द्व-युद्ध करता है और उसे मार देता है। इससे राक्षसों में डर उत्पन्न हो जाता है और उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि भयंकर हनुमान् फिर लौट आयगा (१८)।

रावण के सम्मुख उपस्थित होने पर अंगद उसके प्रश्नों का उत्तर बहुत ही गर्वपूर्ण बाणी में देता है। राम की ओर से वह रावण को धमकी देता है कि वह सीता को लौटा कर राम से क्षमायाचना करे। अपना परिचय देते हुए वह बताता है कि वह रावण के पुरातन मित्र वाली का पुत्र है। इस पर रावण अंगद से वाली का समाचार पूछता है और अंगद उसे राम के हाथों वाली की मृत्यु की सूचना देता है। रावण के अपराध का उपालम्भ करके और उसकी बहन सूर्पणखा का अपमान होने पर भी प्रतीकार-भावना के अभाव का ताना दे कर अंगद रावण को उत्तेजित करता है (१९-२२)।

इस पर रावण अपनी शक्ति का बखान करता है, पर अंगद याद दिलाता है कि हनुमान तक ने उसे छल लिया था। वानर अपने स्वामी के इशारों पर नाचने के लिये सदा तत्पर रहते हैं यह कहकर रावण वानरों का उपहास करता है। इस पर अंगद घोषणा करता है कि वह वाली के मित्र होने के नाते ही रावण को छोड़ रहा है; फिर वह रावण को पिछले सारे अपमानों का स्मरण कराता है। तत्पश्चात् रावण पुनः अपनी शक्ति का गान करता है और अंगद पुनः उसे चेतावनी देता है। रावण राम के

समुद्र पार करने के पराक्रम को अवहेलना की दृष्टि से देखता है। इस पर अंगद पुनः रावण का उपहास करता है। हतधैर्य हो रावण अंगद से मल्लयुद्ध करता है जिसमें अंगद उसे धराशयी कर देता है। इस प्रकार उसके रत्न पृथिवी पर गिर पड़ते हैं; अंगद उन्हें उठा लेता है और वायु-पथ द्वारा उन्हें राम के पास भेज देता है—आकाश में जाते हुए वे टूटते सितारों से चमकते हैं। तत्पश्चात् अंगद रावण का और भी निरादर करता है और अपने पैर को विस्थापित करने की चुनौती देता है; राक्षसों के तथा स्वयं रावण के सारे प्रयास निष्फल रहते हैं। उस पर लज्जित होकर रावण शांत होकर बैठ जाता है और अंगद एक बार फिर उसे उपदेश देता है। तदुपरान्त वह राम के पास लौट आता है (२२-३५)।

सन्ध्या होने पर रावण अपने महल में प्रवेश करता है, तीसरी बार मन्दोदरी उससे बात चीत करती है। एक बार फिर वह रावण को राम की दिव्यता तथा उन पर विजयी होने की असम्भावना को समझा कर बताती है। पर रावण तो मन्दोदरी की बातों से और भी उत्तेजित हो जाता है (दूसरे दिन का अन्त)। प्रातःकाल होते ही रावण सभा में चला जाता है और सारा भय भुलाकर अत्यन्त अभिमान से फूलकर सिंहासन पर जा बैठता है। इधर राम अंगद को बुलाते हैं और उससे पूछते हैं कि उसने रावण के मुकुट के रत्नों को किस प्रकार भेजा। अंगद का विवरण सुनने पर राम, रावण के ऊपर प्रहार करने की योजना के विषय में मंत्रियों से परामर्श करते हैं (३५-३९)।

वानरों तथा रीछों की सेना धूमधाम के साथ लंका पर चढ़ाई करने के लिये आगे बढ़ती है। रावण भी अपने राक्षसदल को प्रस्तुत करता है और युद्ध छिड़ जाता है। वानरों की विजय होती है और राक्षस युद्धक्षेत्र छोड़कर भाग जाते हैं, जिससे रावण और भी क्रुद्ध होता है व राक्षसों को धमकाता है कि यदि वे तनिक भी पीछे हटे तो वह उन्हें मार डालेगा। राक्षस पुनः युद्धक्षेत्र में उतरतें हैं इस बार वे हावी होते हैं। तब हनुमान कूद कर लंका के किले पर आजाते हैं और मेघनाद का रथ तोड़ देते हैं। तत्पश्चात् अंगद और हनुमान के पराक्रमों से नगर में भय का राज्य हो जाता हैं। सन्ध्या होते होते वे सब राम के पास लौट जाते हैं (३९-४५)।

अंगद तथा हनुमान के प्रस्थान से वानर तथा भालूगण हतोत्साह हो हैं और उधरजाते राक्षसों में उत्साह बढ़ने लगता है और वे फिर प्रहार करते हैं। पुनः युद्ध छिड़ जाता है। अकम्पन तथा अतिकाय नामक राक्षस माया का आयुध लेकर घना अंधकार छा देते हैं पर अग्निबाण से राम उस अंधकार को दूर कर देते हैं। तब वानर तथा भालू राक्षसों को भगा देते हैं। रात्रि छाने पर वे सब राम के पास लौट जाते हैं और उनका दर्शन पाकर अपनी सारी थकान भूल जाते हैं (तीसरे दिन का अन्त) (४६-४८)।

रावण पुनः मंत्रणा करता है। वृद्ध राक्षस माल्यवान रावण को एक बार फिर चेतावनी देता है और स्मरण कराता है कि राम हरि का अवतार हैं और, अच्छा यही है कि वह राम की शरण लेकर उनकी पूजा करे। पर रावण उसे कटुवचन कहकर वहाँ से जाने को कहता है। रावण का पुत्र मेघनाद (इन्द्रजित) महान् पराक्रमों के सम्पादन की प्रतिज्ञा करता है (४८-४९)।

प्रातः होते ही वानरों तथा राक्षसों में पुनः युद्ध होता है। मेघनाद को देखते ही वानर तथा भालू भागने लगते हैं। हनुमान उसे चुनौती देते हैं पर मेघनाद, आकाश में उड़ जाता है और युद्ध करने से इन्कार कर देता है। वह माया का प्रयोग कर वानरों को डरा देता है परन्तु राम एक ही बाण से उस की माया का खण्डन कर देते हैं (४९-५२)।

युद्ध पुनः आरम्भ होता है; लक्ष्मण तथा मेघनाद में द्वन्द्व युद्ध होता है। प्राणों को संकट में देखकर मेघनाद वीरघातिनी शक्ति चलाता हैं जिससे लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं। इस पर मेघनाद योधाओं को साथ ले लक्ष्मण को उठाने का प्रयत्न करता है परन्तु न उठा सकने पर वह लज्जा कर किले में चला जाता है। सन्ध्या होने पर दोनों ओर की सेनाएँ अपने अपने शिबिर में लौटती हैं। मूर्च्छित लक्ष्मण को हनुमान् राम के पास ले आते हैं। अपने भाई की इस अवस्था को देखकर राम को अत्यन्त दुःख होता है और वे लंका से सुषेण नामक वैद्य को बुला लाने केलिये हनुमान को आदेश देते हैं। हनुमान उसे घर समेत तुरंत ही उठा लाते हैं। सुषेण हनुमान को एक विशेष पर्वत से एक विशेष औषधि लाने को कहते हैं (चतुर्थ दिन का अंत) (५३-५५)।

एक दूत द्वारा हनुमान के प्रस्थान की सूचना पाकर रावण कालनेमि नामक राक्षस को हनुमान के मार्ग रोकने का आदेश देता है। कालनेमि खेद प्रकट करता है पर रावण की धमकियां के सम्मुख क्या कर सकता है। अपनी माया से, वह हनुमान के मार्ग पर तालाब तथा सुन्दर बाग सहित एक मन्दिर बनाता है और स्वयं तपस्वी का वेष धारण करता है। इस बाग को देखकर हनुमान अपनी आकाश यात्रा को स्थगित कर कृत्रिम तपस्वी की वन्दना करते हैं— जो राम की स्तुति करता है और राम की विजय की भविष्यवाणी करता है। हनुमान उससे जल मांगते हैं और कालनेमि उनसे पास के तालाब तक जाने को कहता है। जैसे ही हनुमान जल में जाते हैं वैसे ही एक बड़ी मछली उनका पैर पकड़ लेती है। हनुमान उसे मार देते हैं और तब वह एक अप्सरा का रूप धारण कर लेती है। हनुमान द्वारा मुक्ति पाते पर वह हनुमान को इस कृत्रिम तपस्वी से सावधान रहने को कहती है क्योंकि वह वास्तव में राक्षस है। हनुमान तब इस कृत्रिम तपस्वी के पास आते हैं और इसे पछाड़ देते हैं। मरते समय कालनेमि अपना राक्षसी शरीर प्रकट करता है और इस प्रकार राम राम का जाप करके वह प्राण छोड़ देता है (५६-५८)।

हनुमान फिर यात्रा आरम्भ करते हैं और सारा पर्वत ही उखाड़ लाते हैं। वापसी के मार्ग में भरत उन्हें देखते हैं और उन्हें राक्षस समझ कर बिना फर का एक बाण मारते हैं। इस पर राम का नाम लेते हुए हनुमान पृथिवी पर आ गिरते हैं। वानर को देखकर भरत उन्हें अपने हृदय से लगालेते हैं और उनसे सीता व राम का कुशल समाचार पूछते हैं। फिर एक बाण पर उन्हें चढ़ाकर राम के पास भेज देते हैं (५८-६०)।

इधर मूर्च्छित लक्ष्मण को देखकर राम ने निराशा में रात बिता दी। हनुमान के आने पर सुषेण ने दवा तय्यार की जिससे लक्ष्मण सचेत हो जाते हैं और हनुमान उस वैद्य को वापस लंका पहुंचा देते हैं (६१-६२)।

रावण कुम्भकर्ण को जगाने के लिये जाता है और उससे अपने सारे कष्टों का विवरण देता है। कुम्भकर्ण भी अपने भाई को उलाहनी देता है और राम की दिव्यता की पुष्टि करता है, पर साथ ही वह राम से युद्ध करने को सहमत भी हो जाता है। बहुत अधिक खापीकर वह युद्ध में आ उतरता है। सब से पहले वह विभीषण से स्नेहपूर्वक मिलता है और उसे बधाई देता है, तत्पश्चात् वह युद्ध में आता है। वानर उसपर व्यर्थ में ही प्रहार करते हैं। हनुमान उसे धराशायी कर देते हैं पर वह फिर उठ खड़ा होता है, हनुमान को डरा देता है जिससे वानरों का दल अस्तव्यस्त हो जाता है, और मूर्च्छित सुग्रीव को कांख में दबाकर लौट जाता है। पर सुग्रीव उसके नाक कान काटकर उसके हाथों से

निकल भागता है। वानर एक बार फिर कुम्भकर्ण पर टूट पड़ते हैं पर वह पुन: वानरों की सेना को तितरबितर करने लगता है। तब राम आगे बढ़ते हैं और उनके बाणों से शत्रु की सेना में भगदड़ मच जाती है। अंततोगत्वा वे कुम्भकर्ण पर विजयी होते हैं—उसके शरीर से सिर अलग गिर कर रावण के पैरों में आ पड़ता है और उसका "तेज" प्रभु के मुख में प्रवेश कर जाता है। कुम्भकर्ण की पराजय पर देवगण हर्षित होते हैं। और नारद आकर राम की स्तुति का गान करते हैं। युद्धक्षेत्र में विजयी राम का बर्णन। रात्रि होने पर दोनों ओर की सेनाएँ विश्राम करती हैं। वानर साहस बटोरते हैं। उधर रावण कुम्भकर्ण की मृत्यु पर विलाप करता है। मेघनाद उसे सान्त्वना देता है और शीघ्र ही स्वयं युद्ध के लिये सन्नद्ध होता है (पांचवें दिन का अन्त) (६२-७२)।

प्रात: होने पर वानरों का पुन: प्रहार और युद्ध का पुन: आरम्भ। मेघनाद अपने मायावी रथ पर चढ़ता है औ वानरों पर बाणों की वर्षा करता है जिससे वे तितरबितर होजाते हैं। फिर वह राम पर प्रहार करता है और अपने नागपाशों से राम को वश में कर लेता है। जाम्बवान मेघनाद को मारता है और इसे लंका की ओर फेंक देता है। राम को नागपाशों से छुड़ाने के लिये देवता तथा संत, नागशत्रु गरुड़ को भेजते हैं। माया का नाश होता है और वानर पुन: प्रहार प्रारम्भ कर देते हैं (७२-७४)।

चेतना पाकर मेघनाद एक यज्ञ की तय्यारी करता है जिससे उसकी विजय निश्चित हो जाय विभीषण राम को इस की सूचना देता है और राम, हनुमान, अंगद तथा अन्य वानरों के साथ लक्ष्मण को यज्ञ भंग करने के लिये भेजते हैं। पहले तो वानर मेघनाद को तंग करने में सफल नहीं होते पर अन्त में मेघनाद यज्ञ को छोड़ देता है और उससे युद्ध करना अरम्भ कर देता है। लक्ष्मण बीच मे पड़कर उसके एक बाण मारते हैं और राम तथा लक्ष्मण का नाम लेते लेते वह मर जाता है। हनुमान उसके शरीर को लंका के द्वार पर रखते हैं और मेघनाद की मृत्यु पर मन्दोदरी तथा अन्य राक्षस विलाप करते हैं। रावण मन्दोदरी को सान्त्वना देता है (छटे दिन का अन्त) (७५-७८)।

रावण अपनी सेना को युद्ध के लिये प्रोत्साहित करता है और स्वयं भी तय्यारी करता है। पर प्रस्थान के समय अपशकुन होते हैं। वानर राक्षसों का सामना करने को आगे बढ़ते हैं। राम को पैदल और रावण को रथ पर आरूढ़ देखकर विभीषण को चिंता होती है परन्तु राम उसे एक उदात्त उपदेश देकर सान्त्वना देते हैं। युद्ध को देखने के लिये सारे देवता आ उपस्थित होते हैं (७८-८१)।

भयंकर युद्ध छिड़ जाता है। आरम्भ में वानर तथा भालुओं की विजय होती है। परन्तु रावण बढ़ता है और उनकी सेनाओं को पीछे भगा देता है। वे सब के सब राम का नाम लेकर त्राहि त्राहि पुकारते और भाग निकलते हैं। तब लक्ष्मण आगे बढ़ते हैं रावण को उत्तेजित करते हैं और उसे मूर्च्छित कर देते हैं। सचेत होने पर रावण लक्ष्मण पर एक ब्रह्मबाण से प्रहार करता है, परन्तु उनको उठाने का प्रयत्न करने पर वह निष्फल रहता है। हनुमान आगे बढ़कर एक घूंसे से ही रावण पर प्रहार करते हैं और लक्ष्मण को उठाकर ले जाते हैं। वानर यूथ रावण के रथ को तोड़ डालते हैं और उसको बाणों से बीध देते हैं। और तब वह लंका ले जाया जाता है (८१-८४)।

स्वस्थ होने पर रावण भी एक यज्ञ की तय्यारी करता है। विभीषण राम को इसकी भी सूचना देता है और ये, हनुमान, अंगद, तथा अन्य वानरों को यज्ञ भंग करने के लिये भेजते हैं। पहले तो वानर रावण को तंग करते हैं और फिर रावण को पीटते हैं पर उसे हिला नहीं पाते; तब अंगद उसकी रानियों

पर प्रहार करके उनके बालों को पकड़ कर घसीटता है। इस पर क्रुद्ध होकर रावण उठता है और वानरों से छुटकारा पाता है, पर यज्ञ तो भंग हो ही गया। इस पर हर्षित होकर वानर लौट आते हैं और उधर रावण पुनः युद्ध की तय्यारी में लगजाता है। राम भी युद्ध की तय्यारी करते हैं और उनको योधा के वेष में देखकर देवगण भी बहुत प्रसन्न होते हैं (८४-८६)।

राक्षस सेना पर राम बाणों की वर्षा करते हैं और रक्त की नदियाँ बहा देते हैं। युद्ध का भयंकर दृश्य। वानरों की विजय होती है। इस पर रावण अपनी माया का प्रयोग करने का निर्णय करता है। इस परिस्थिति से चिन्तित हो इन्द्र अपना रथ तथा सारथि राम की सेवा के लिये भेजता है (८७-८९)।

रावण की माया के प्रयोग से असंख्य राम व लक्ष्मण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। केवल राम को छोड़कर सब के सब भ्रम में पड़जाते हैं। पर एक क्षण में राम इस भ्रम को नष्ट कर देते हैं। वे स्वयं रावण से युद्ध करने को आगे बढ़ते हैं और रावण अपनी शक्ति का बखान कर राम को और भी उत्तेजित करता है। इस पर राम शान्त तथा व्याजोक्ति पूर्ण वचन कहते हैं (८९-९०)।

राम व रावण के महान युद्ध में वे दोनों ही विभिन्न प्रकार के भयंकर अस्त्रों का प्रयोग करते है। राम के बाण राक्षसों की सेना को नष्ट कर देते हैं और रावण के सिर तथा भुजाओं को काट देते हैं, पर वे बार बार उभर आते हैं और सब दिशाओं में उड़ते रहते हैं। तब रावण विभीषण पर अपनी शक्ति फेंकता है परन्तु राम उसकी रक्षा कर लेते हैं और स्वयं (देखनेमात्र केलिये) उस भारी प्रहार से अचेत हो जाते हैं। राम के बल का आश्रय लेकर पहले विभीषण और फिर शीघ्र ही हनुमान रावण पर टूट पड़ते हैं (९१-९५)।

जब रावण को प्राणों का संकट होता है तो एक बार पुनः वह अपनी माया का प्रयोग करता है और इस प्रकार असंख्य रावण दृष्टिगोचर होने लगते हैं जिससे वानरों की सेना भयभीत हो जाती है। उनके भय को देखकर राम मुस्कराते हैं और एक ही बाण से इस भ्रम को नष्ट कर देते हैं। सब वानर एकत्र हो जाते हैं और राम पुनः रावण की भुजाएँ तथा सिर काटने में लग जाते हैं। और वे पुनः उभरने लगते हैं। निशा समीप होने से शक्ति प्राप्त करने पर रावण वानरसेना का विध्वंस करता है। अंत में जाम्बवान् उसे अचेत कर देता है और मूर्च्छित रावण को पुनः लंका लाया जाता है (सातवें दिन का अंत) (९६-९८)।

रात में, त्रिजटा नामक राक्षसी सीता के पास जाती है और सारी वार्ता कह सुनाती है। सीता का विलाप। तब त्रिजटा समझाती है कि रावण हृदय में एक ही बाण लगने से परास्त हो सकता है पर राम को इस हृदय को बींधते संकोच होता है क्योंकि वहाँ पर सीता की मूर्ति विराजमान है....। राम रावण के सारे सिरों को काट देंगे और उसे इतना दुःख होगा कि वह सीता को भूल बैठेगा और उस समय राम उसके हृदय को बीध सकेंगे। त्रिजटा के उत्साहपूर्ण वचनों के बावजूद सीता विलाप करती रहती हैं पर एक शुभ शकुन से उन्हें सान्त्वना हो जाती है (९९-१००)।

सचेत होने पर रावण अपने साथियों को डांटता है जो उसे युद्ध क्षेत्र से उठा लाये। पौ फटते ही वह अपने रथ पर चढ़ जाता है। वानर तथा भालू उस पर पुनः प्रहार करते हैं। उनसे छुटकारा पाने के लिये रावण विभिन्न प्रकार के निशाचरों का आविष्कार करता है जिससे वानर डर जाते हैं। पुनः राम अपने एक बाण से सम्पूर्ण भ्रम नष्ट कर देते हैं। और अपने बाणों से वे शत्रु के

समस्त सिर तथा भुजाएँ काट देते हैं, पर वे एक बार पुनः उभर आते हैं और रावण मरता नहीं। तब विभीषण राम को समझाता है कि रावण की नाभी में अमृत भरा होने के कारण ऐसा होता है। अपशकुन होते हैं और राम एक साथ इकतीस बाण छोड़ते हैं जिनमें से अन्तिम रावण की नाभी को सुखा देने वाला है और बाकी बाणों से रावण के हाथ तथा सिर कट कर गिर जाते हैं। तब रावण पृथिवी पर गिर पड़ता है और अन्तिम बार राम का नाम लेकर वह अपने प्राण त्याग देता है। उसका "तेज" प्रभु के मुख में समा जाता है। रावण के गिरते ही पृथिवी हिल जाती है और देवगण तथा भूमंडल में आनन्द छा जाता है (१००-१०३)।

मन्दोदरी का विलाप। वह राम की कृपा का गान करती है। उन्होंने रावण की अन्ध बुद्धि पर भी दया की और उसका उद्धार किया। अपने भाई की मृत्यु पर विभीषण भी शोक संतप्त होता है और राम उसे शांत करने को लक्ष्मण को आदेश देते हैं। विभीषण को अन्त्येष्टि का प्रबंध करने का और लक्ष्मण तथा वानरों को विभीषण के राज्याभिषेक की तय्यारियों का भी आदेश होता है। वानरों का धन्यवाद कर, सीता को आश्वासन देने के लिये हनुमान को भेजा जाता है। हनुमान सीता के पास शुभ समाचार देकर वापस आते हैं। तब राम, हनुमान तथा विभीषण से, सीता को साथ लिवा लाने को कहते हैं। राक्षसियाँ सीता का प्रसाधन करती हैं और सीता पालकी में बैठती हैं। वानर तथा भालू सीता को देखने के उत्सुक हैं और राम उनसे पैदल चलने को कहते हैं जिससे, सारे ही मित्रगणों की, सीता को देखने की उत्सुकता, सन्तुष्ट हो सके (१०४-१०८)।

कठोरता का प्रदर्शन कर, राम सीता से अग्नि-चिता पर चढ़ने को कहते हैं। सीता लक्ष्मण से चिता तय्यार करने को कहती हैं और फिर उस पर चढ़ जाती हैं परन्तु अग्निज्वाला चन्दन के समान शीतल हो जाती है और सीता को कोई हानि नहीं पहुँचती—केवल उनकी "छाया" और उनका अपमान ही भस्मसात् होता है। अग्नि देव स्वयं प्रगट होते हैं और रामको सीता सौंप देते हैं। इस चमत्कार को देखकर सब प्रेक्षकगण आनन्दित हो जाते हैं (१०८-१०९)।

देवगण राम को बधाई देने केलिये आकर रामकी स्तुति का गान करते हैं और उनके शत्रु रावण का नाश करके उन्होंने उसे जो सुख प्रदान दिया उसकी अप्रत्यक्ष शिकायत भी करते हैं। अपनी बारी आने पर ब्रह्मा भी भक्तिपूर्वक राम की स्तुति कहते हैं। इस पर स्नेहार्द्र दशरथ उपस्थित होते हैं और राम उनको परिष्कृत बुद्धि का वर देते हैं। इन्द्र भी राम की स्तुति कहता है और राम उससे राक्षसों द्वारा हत वानरों तथा भालुओं को पुनः जीवित करने को कहते हैं (वास्तव में, देवताओं का अवतार होने के कारण वे मरे नहीं थे)। अन्त में शिव, राम के पास आते हैं और भवसागर से मुक्त होने की प्रार्थना करते हैं। साथ में वे यह भी वचन देते हैं कि वे राम के राज्याभिषेक पर उपस्थित होंगे (११०-११५)।

विभीषण राम के चरणों में नतमस्तक होता है और अपने राज्य में पधारने के लिये राम को निमंत्रित करता है। पर भरत से शीघ्र भेंट करने के कारण राम इस निमंत्रण को अस्वीकार करते हैं। विभीषण पुष्पक रथ तय्यार करता है। राम के आदेश पर वह रथ पर चढ़ कर वानरों तथा भालुओं को वस्त्र तथा आभूषण फेंकता है और वे सब लपकने के लिये आगे बढ़ते हैं जिससे राम व सीता का बहुत मनोरंजन होता है। मधुर वचन कहकर राम बानरों को विदा करते हैं अपने मित्रों तथा वानरों और भालुओं के नेताओं को अपने रथ में बिठाकर शुभशकुनों से अभिनन्दन

किये जाने पर रथ उत्तर की ओर बढ़ता है। मार्ग से गुज़रते हुए राम सीता को वे सब स्थान दिखाते जाते हैं जहाँ यात्रा की अधिकांश घटनाएँ घटित हुईं। त्रिवेणी पर आने पर राम भरत के पास अपने आगमन की सूचना देने को और उनका कुशल समाचार लाने के लिये हनुमान को भेजते हैं (११६-१२०)।

काण्ड के अन्त में राम की (प्रयाग में) भरद्वाजाश्रम की यात्रा का वर्णन। (शृङ्गवेर में) राम गुह से पुनः भेंट करते हैं। सीता गंगा की पुनः स्तुति करती हैं। राम गुह को हृदय से लगा लेते हैं। इस अवसर पर कवि राम की कृपा का व्याख्यान और रामकथा के श्रवण के पुण्य को रेखाङ्कित कर काण्ड की समाप्ति करता है (१२१)।

इस काण्ड के तीन भाग किये जा सकते हैं—आरम्भ से दूत अंगद की वापसी और युद्ध की तय्यारियों तक (१-३९) पहला, विद्रोह के आरम्भ से रावण की मृत्यु, सीता की मुक्ति, और उनकी अग्निपरीक्षा तक (४०-१०९) दूसरा, तथा अपने पित्रों की विदाई से लेकर सीता सहित राम के अयोध्या में आगमन तक (११०-१२१) तीसरा।

१—विद्रोह का आरम्भ (१-३९)

मानस के लंकाकाण्ड में विद्रोह के आरम्भ का विवरण ३९ पद्यों में अर्थात् काण्ड के एक तिहाई भाग में दिया गया है। इस प्रकार यह भाग विशेष विकसित है और साथ ही मौलिक भी। इस अंश में वाल्मीकि का प्रभाव बहुत ही कम है। सुन्दरकाण्ड के समान यहाँ भी नाटकों का, विशेषकर प्रसन्नराघव का, प्रभाव अधिक दृष्टिगोचर होता है।

अध्यात्मरामायण (६, ४, १-४) में कहा गया है कि जिस समय वानर समुद्र पर सेतु बांधने का कार्य आरम्भ करते हैं तो राम 'रामेश्वर' नामक लिंग की प्रतिष्ठापना करके उसकी पूजा करते हैं। यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में अज्ञात है और मानस ने इसे अध्यात्मरामायण से लिया है। मानस में राम इस अवसर पर शिव की भक्ति का माहात्म्य बताते हैं—

सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ॥
सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥[1]

मानस में वानरों द्वारा सेतु की रचना तथा समुद्र पार करने के विवरण से वस्तुकलाविज्ञों की चतुरता कम तथा प्रभु राम का प्रताप अधिक व्यक्त होता है। जाम्बवान नल तथा नील को अपने हृदय में राम का भजन करने का परामर्श देता है जिससे सारा कार्य बिना परिश्रम सिद्ध हो जायगा। वास्तव में इस कथानक में सारी ही बातें चमत्कारपूर्ण हैं और इन सब का एकमात्र कारण राम हैं—

बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई। भए उपल बोहित सम तेई ॥
महिमा यह न जलधि कइ बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कइ करनी ॥

---

[1] रा. च. मा. ६, २, ३-४।

श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥[१]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार सब ही जलचरों ने सेना को पार होते देखा। पर तुलसीदास की कल्पना के अनुसार छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े सभी जलचर पानी के ऊपर उठ आये जिससे वे प्रभु का दर्शन पा सकते, यहाँ तक कि कई वानर तो पैर गीले किये बिना, उनकी पीठों पर चढ़कर ही समुद्र पार कर गये।

रामचरितमानस के लंकाकाण्ड[२] में रानी मन्दोदरी रावण को समझाने के लिये तीन बार बीच में पड़ती है, पहली बार जब कि वानर समुद्र पार कर चुके होते हैं।[३]

वाल्मीकि रामायण के "ग" (दक्षिणी) संस्करण में और अध्यात्मरामायण में राम से युद्ध न छेड़ने के विषय में मन्दोदरी की बातचीत का उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत "क" (उत्तरपश्चिमी) तथा "ख" (बंगाली) संस्करणों में, (राम के दूत अंगद के हाथों) प्रहस्त की मृत्यु के पश्चात् मन्दोदरी बीच में पड़ती है और रावण को राम से सन्धि करने को कहती है क्योंकि राम मानवमात्र नहीं हैं। ("क" संस्करण ३५; "ख" संस्करण ३३)। इस पर रावण यही उत्तर देता है कि देवताओं के समान मैं राम पर भी विजयी हो जाऊँगा ("क" संस्करण ३६; "ख" संस्करण ३४)। नाटकों में भी लंका की रानी का यही कार्य है—प्रसन्नराघव में मन्दोदरी तथा प्रहस्त रावण को राम से युद्ध करने से रोकने का प्रयत्न करते हैं (७, २७-७४); महानाटक में, अंगद के प्रस्थान के शीघ्र पश्चात् मन्दोदरी रावण के पास आती है, और उससे शत्रु (राम) की शक्ति का विचार करने तथा सीता को लौटाने का अनुरोध करती है (८, ४९८)। निश्चय है कि नाटकों में मन्दोदरी को वह महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ जो वाल्मीकि रामायण में नहीं।

अध्यात्मरामायण में, मन्दोदरी को राम के भक्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है, रावण के यज्ञ के भंग होने पर, वह रावण से कहती है कि राम परब्रह्म हैं और रावण उत्तर देता है कि मुझे यह ज्ञात है—यदि वह राम से युद्ध करने की ठान चुका है तो इसलिये कि वह प्रभु के हाथों प्राणों का अंत करने की कामना करता है (६, १०, ४४ इत्यादि)। परन्तु मानस में यह संवाद नहीं दिया गया।

युद्ध से पूर्व रावण की सभा का प्रसंग[४] मानस में दो बार आया है—एक बार तो सुन्दरकाण्ड (३७) में रावण सभा बुलाता है और इसमे वह विभीषण को बाहर भेज देता है; दूसरी बार इस

---

[१] रा. च. मा. ६, ३, ४ दोहा।

[२] मानस के सुन्दरकाण्ड में, मन्दोदरी, सब से पहले, रावण की सभा होने से पूर्व ही बीच में पड़कर रावण को परामर्श देती है (५, ३५, १; अध्याय १० पृ० ६३-६४)।

[३] रा. च. मा. ६, ६-७।

[४] वाल्मीकि रामायण के तीनों संस्करणों में इस प्रसंग के वर्णन में पर्याप्त भेद है। (दे० का. बुल्के, ज. ओ. रि. म. १९४९, जिल्द १७ भाग १, पृ० १८-२०)। "ग" संस्करण में सभा (६, ९) में स्थगित की जाती है और ६, ११ में पुन: बुलाई जाती है। तीनों संस्करणों में, सभा के अंत में विभीषण को बाहर भेजा जाता है।

काण्ड में (६, ८-१०), रावण सभा बुलाता है और न केवल उसका भाई विभीषण (जो पहले ही बाहर किया जा चुका है) अपितु उसका पुत्र प्रहस्त भी रावण के विरुद्ध वचन कहता है। वाल्मीकि रामायण (६, ८, १) में प्रहस्त को केवल एक चतुर सेनापति के रूप में चित्रित किया गया है; तुलसीदास ने उसे रावण का पुत्र और राम का भक्त बताया है; विभीषण तथा शुक के समान, प्रहस्त को भी राम की दिव्यता में आस्था है—

जेहिं बारीस बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई।[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रहस्त को घटनाओं का पूर्वज्ञान हो जाता है क्योंकि अभी तक उस सुवेल पर्वत का प्रश्न ही नहीं आया था जहाँ राम उतरे थे। रावण की सभा के पश्चात् प्रस्तुतकर्ता हमें सुवेल पर्वत के पास ले आता है जहाँ राम आ पहुंचे हैं (परन्तु यह कहा नहीं गया)। स्थलपरिवर्तन को बताने के लिये स्थानसूचक क्रियाविशेषण का एक बार फिर प्रयोग किया गया है—

"इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा उतरे सेन सहित . . ."[2]

राम के सुवेल पर्वत पर आने का और चन्द्रमाके उदय का वर्णन वाल्मीकि रामायण (६, ३८) में भी किया गया है, पर अध्यात्मरामायण में नहीं। तुलसी ने वाल्मीकि रामायण से प्रेरित होकर इसे अपने ढंगसे अधिक विकसित किया है। सर्वप्रथम उन्होंने राम को सुवेल पर्वत पर "आसीन" बताया है—

सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी॥
तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए॥
तापर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहिं आसन आसीन कृपाला॥
प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। बाम दहिन दिसि चाप निषंगा॥
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना॥
बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥
प्रभु पाछें लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन॥
एहि बिधि कृपा रूप गुन धाम रामु आसीन।
धन्य ते नर एहिं ध्यान जे रहत सदा लयलीन[3]॥

---

[1] रा. च. मा. ६, ९, ३। वा. रा. के "ख" संस्करण ८२, ३२-३५ में प्रहस्त वानरों की सेना का नाश करके रावण के हितकी सुरक्षा का वचन देता है।

[2] रा. च. मा. ६, ११, १।

[3] रा. च. मा. ६, ११, १, दोहा १।

इस प्रकार का वर्णन वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलता। ग्राउज़[१] का कहना है कि यह “एक ऐसा दृश्य है जिसे हिन्दु चित्रकारों ने अपने कलाप्रदर्शन का विषय बनाया है। और इस का कारण यह है कि तुलसीदास के अनुसार कि इस दृश्य का ध्यान करने वाले आशीर्वाद के भागी होते हैं”। परन्तु इस वर्णन की चित्रकारी की स्पष्टता से प्रश्न होता है कि कहीं तुलसीदास ने किसी लौकिक चित्र को तो लेखबद्ध नहीं किया। पात्रों का एकत्रीकरण तथा उनके विचित्र आसनों का रूढ़ि-आश्रित होना इस अनुमान की ओर संकेत करता है।

इस स्थान पर वाल्मीकि ने पूर्णचन्द्रमा के उदय का वर्णन किया है—

“उस समय संध्या से अनुरक्त सूर्य अस्ताचल पर आरूढ़ हुआ और पूर्णचन्द्रमा से प्रदीप्त रात्रि का आगमन हुआ।”[२]

मानस में राम उदयमान चन्द्रदेव अथवा शशि की तुलना, गुहा से निकलते सिंह से, करते हैं—

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक॥

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी॥
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा॥[३]

यहाँ पर रूपक प्रसन्नराघव से लिया गया है। इस नाटक में विभीषण कहता है—

“(उदयमान) चन्द्रमा, पूर्व दिशाओं की गुहाओं के गर्भ में नींद से उठे सिंह के समान है। अपनी किरणोंरूपी तीक्ष्ण पंजों से अंधकाररूपी मदमस्त हाथी के मस्तक को विदीर्ण करता है और आकाशरूपीवन में मोतियों के समान छिटकते हुए तारों को बखेरता जाता है।”[४]

मानस में इस स्थल पर चन्द्रमा के धब्बे की उत्पत्ति के विषय में नाटकों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है परन्तु भक्ति का महत्व कम नहीं हुआ, यह बात हनुमान द्वारा कथित उपसंहार से ज्ञात होती है—

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥[५]

उधर रात्रि हो जाने पर, रावण मन्दोदरी के साथ ‘अखाड़ा’ देख रहा है। सुवेल पर्वत की ऊँचाई से राम, रावण के छत्र को मेघसमूह तथा मन्दोदरी के आभूषणों को विद्युत और शंखध्वनि को

---

[१] ई. टी. पृ० ५०४, पादटिप्पणी १।
[२] वा. रा. ६, ३८, १८।
[३] रा. च. मा. ६, ११ दो. २; १२, १-२।
[४] प्रसन्नराघव ७, ६१।
[५] रा. च. मा. ६, १२, दो० १।

गर्जना समझते हैं (६. १३)। टेसिटोरी[१] का कथन है कि तुलसी ने वाल्मीकि में उपलब्ध प्रसंग (६, ४०, ६) को ही विस्तृत किया है क्योंकि वहाँ पर छत्र के नीचे बैठे और सुनहले वस्त्र पहने रावण की तुलना "सूर्यास्त की लालिमा से प्रकाशित मेघराशि" से की है—और मानस में रूपका का अभिप्राय ठीक नहीं लगा।

वाल्मीकि रामायण (६, ४०, ७ इत्यादि) में, रावण को पहचानिने के तुरन्त पश्चात् सुग्रीव सुवेल पर्वत की ऊचाई से उस पर छलाँग मारता है और उसका मुकुट उतारकर उसे पृथिवी पर फेंक देता है। अध्यात्म रामायण (६, ५, ४१-४४) में, इसके विरुद्ध, राम अपने एक बाण से रावण के छत्रं तथा मुकुट को गिरा देते हैं। इसी प्रकार, मानस में भी, राम अपने एक बाण से न केवल रावण के छत्र तथा मुकुट को परन्तु मन्दोदरी के कर्णफूलों को भी गिरा देते हैं (६, १३, दोहा १)।

यहाँ पर मन्दोदरी दूसरी बार रावण को समझाती है। और इस बार मन्दोदरी के वचन कुछ दार्शनिक रूप लेते हैं, वह राम के विराट् रूप का वर्णन ऐसी शब्दावली में करती है जो सांख्यदर्शन से परिगृहीत है—

बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥
अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥
रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना॥

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥
अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ॥[२]

यहाँ पर साँख्यदर्शन की शब्दावली का कतिपय भ्रामक प्रयोग हुआ है जैसी कि ग्राउज़[२] ने भी नोट किया है—सांख्यदर्शन में "महत्" और "बुद्धि" को एक ही माना गया है। पर मानस के इस सन्दर्भ में उनको विभिन्न मानकर 'महत्' को प्रकृति के तुल्य बताया गया है, यद्यपि वास्तव में वह प्रकृति से उत्पन्न है।

---

[१] इं. एं. ४२, (१९१३), पृ० १५-१६ (७५)।
[२] रा. च. मा. ६, १४, दो०; १५, १, दोहा २।
[३] ई. टी. पृ० ५०६ पादटिप्पणी १।

मानस की यह "मन्दोदरी गीता" भागवतपुराण के उस सन्दर्भ[1] का अनुकरण करती है जहाँ बाणासुर पर विजयी होने के पश्चात् कृष्ण को सम्बोधित कर शिव कहते हैं—

"तुम ब्रह्म हो, और वाङ्मय ब्रह्म (वेदों) में निगूढ़ परमज्योति हो, आकाश के समान, आपकी अखण्ड एकता को निर्मल आत्मावाले ही देख सकते हैं।

अन्तरिक्ष तुम्हारी नाभी हैं, अग्नि मुख है, जल वीर्य है, आकाश सिर है, दिशाएँ श्रुति है, पृथिवी पैर हैं, चन्द्रमा मन है, सूर्य दृष्टि है, मैं (शिव) अहम्भाव हूँ, समुद्र पेट है, इन्द्र भुजाएँ हैं। औषधियाँ तुम्हारे रोम हैं। बादल बाल हैं, विरिञ्चि (ब्रह्मा) बुद्धि हैं, प्रजापति विसर्ग हैं, धर्म हृदय है, तुम लोकों से कल्पित पुरुष हो।"[2]

लंकाकाण्ड में "मन्दोदरीगीता" ही केवल एक गीता है। यह अध्यात्म रामायण से तनिक भी प्रभावित नहीं। इस प्रकार के विराट् रूप के वर्णन भागवतपुराण तथा अध्यात्म रामायण में कम नहीं पर मानस में अवश्य अपवाद के रूप में ही प्राप्त होते हैं। इससे मिलते जुलते प्रसंग बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में मिलते हैं जहाँ क्रमश: कौशल्या तथा भुशुण्डि बाल-राम के विराट् रूप[3] का दर्शन कर प्रसन्न होते हैं। परन्तु ये वर्णन भागवतपुराण का अथवा इस पुराण से प्रेरित किसी अन्य साम्प्रदायिक ग्रन्थ का अनुकरण करते हैं।

वानर अंगद का रामके दूत के रूप में प्रस्तुत होना वाल्मीकि रामायण का एक ऐसा प्रसंग है जिसे अध्यात्म रामायण के संक्षिप्त विवरण में स्थान प्राप्त नहीं। वस्तुत: इसका कोई विशेष महत्व भी नहीं है और न ही इससे रामकथा की प्रगति पर कोई विशेष प्रभाव पड़ता है क्योंकि अंगद का प्रयास निष्फल रहता है और उसके तर्कों से केवल रावण का क्रोध अधिक उत्तेजित ही होता है। वैसे भी, संस्कृत रामायण में यह कथानक संक्षेप से ही वर्णित है—राम अंगद को स्पष्ट आदेश देते हैं और वह रावण से राम के आदेश को दोहरा कर ही संतुष्ट हो जाता है। इस संदेश से राक्षसों का राजा क्रुद्ध हो जाता है और वह अंगद से ही बदला लेना चाहता है पर अंगद अपने प्रत्युत्पन्नमतित्व से बच निकलता है (६, ४१)।

रावण के साथ अंगद की भेंट को मानस के लंकाकाण्ड में पर्याप्त महत्व का स्थान मिला है और वह वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा कहीं अधिक है। रामकथाश्रयी नाटकों में भी यही बात है—राक्षसों के राजा से इस युवक वानर के युद्ध का प्रसंग ऐसा है जिसे संस्कृत के नाटककारों ने सहर्ष विकसित किया है। कदाचित् इसके नाटकीय होने के कारण। सम्भवत: इसी लिये मानस के अंगद-रावण संवाद में नाटकों का, विशेषकर महानाटक का, प्रचुर प्रभाव व्यक्त होता है।

मानस में, रावण के महल में पहुंचने पर, अंगद, रावण के पुत्र[4] प्रहस्त को मार देता है; आपातत: यह तुलसीदास का अपना आविष्कार है क्योंकि वे इस भक्त को अपने गुणों के अनुरूप मृत्यु

---

[1] मानसपीयूष में इन दोनों की तुलना प्रस्तुत की है ६, पृ० १६४-१६५।

[2] भागवतपुराण १०, ६३, ३४-३६। ऐसा ही वर्णन २, १, २३-२७ में परीक्षित को सम्बोधित करते शुकदेव ने किया है।

[3] १, २०१-२०२; ७, ८०।

[4] दे० ऊपर पृ० २४३। वाल्मीकि (६. ५८) में प्रहस्त नील द्वारा मारा जाता है।

प्रदान कराना चाहते होंगे—कारण राम के दूत के हाथों मारे जाने से वह निश्चय ही परमानन्द की प्राप्ति के योग्य हो जाता है।

लंकाकाण्ड में अंगद तथा रावण के विकट कलह को पढ़कर बालकाण्ड[1] के लक्ष्मण-जामदग्नि कलह का स्मरण हो आता है—दोनों ही स्थलों पर एक युवक वीर तथा कुशल नायक—जो राम का पक्षपाती है, राम के शत्रु, क्रूर, वीर को चुनौती देता है और उसका उपहास करता है। हम ऊपर देख आये है कि परशुरामकथा पर नाटकीय परम्परा का कितना प्रभाव पड़ा है, वही प्रभाव अंगद के प्रसंग में भी अनुभव होता है।

मानस में दोनों विरोधियों के कई उत्तर-प्रत्युत्तर प्रत्यक्ष महानाटक का अनुकार हैं, उदाहरणतः रावण को नीचा दिखाने के लिये अंगद बात बनाता है कि उसके सम्मुख उपस्थित रावण उन "अनेकों" रावणों में से कौन सा है जिन्हें कई बार पराजित किया गया (महानाटक ७, ४५१ ; रा. च. मा. ६, २४, ६ दोहा); इस उत्तेजक-वार्ता का उत्तर रावण आत्मप्रशंसायुक्त विवरण से देता है (महानाटक ७, ४५२ ; रा. च. मा. ६, २५, १ दो०) अंगद, रावण को एक ही प्रकार के पराक्रमों को बार बार कहने का उपालम्भ देता है (महा० ७, ४७२ ; रा. च. मा. ६, २९, ४) ; अंगद रावण को बहुतेरी उपमाएँ देकर समझाता है कि राम एक साधारण मानव नहीं हैं (महानाटक ७, ४८८), मानस में भी उन्हीं उपमाओं को परिवर्तित करके अंगद वही बात रावण को समझाता है (रा. च. मा. ६, २६, ३-४)।

इस प्रख्यात नाटक ने तुलसी को इस विषय की प्रेरणा दी है जिसको उन्होंने अनुपम रंग से विकसित किया है—मानस का यह अंश यद्यपि लम्बा अवश्य है तथापि अंगद-रावण वाग्युद्ध व्यंग्यपूर्ण तथा वस्तुतः 'उत्तेजक' है और लक्ष्मण-जामदग्नि वाग्युद्ध की अपेक्षा अधिक प्रभावात्मक है क्योंकि राक्षसों का राजा रावण परशुराम की अपेक्षा अधिक उत्कट तथा वाक्कुशल है।

अंगद द्वारा रावण के मुकुटों को लेने तथा आकाशमार्ग से उन्हें राम के पास भेजने और वानरों का उन्हें तारागण समझने का प्रसंग (६, ३२) तुलसीदास का मौलिक आविष्कार प्रतीत होता है। यह विचित्र प्रसंग सुवेल पर्वत के उस दृश्य का स्मरण कराता है जब कि रावण के मुकुटों और मन्दोदरी के आभूषणों को दूर से देखकर राम उन्हें विद्युत् समझते हैं (६, १३)। कदाचित् कवि यह दिखाना चाहता है कि राम के दूत द्वारा प्रस्तावित सन्धि को ठुकरा कर रावण तुरन्त ही अपने को प्रभुत्व हीन पाता है—कम से कम इस के बाद के प्रसंग से यही अभिप्राय निकलता है।

इसके बाद से शैली में परिवर्तन हो जाता है—अंगद की कथा के आरम्भ तथा अंत से दो विभिन्न स्रोतों का ज्ञान होता है और कथा सिद्धान्तात्मक रूप धारण कर लेती है। अंगद की चुनौती और उसके पैर को उठाने के राक्षसों के निष्फल प्रयत्नों से अंगद की शक्ति कम, पर उसके इष्टदेव राम का प्रभुत्व अधिक व्यक्त होता है—

> पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरइ न कीस चरन एहि भाँती॥
> पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी[2]॥

---

[1] दे० परशुरामचरित, अध्याय ६ पृ० १२७ इत्यादि।

[2] रा. च. मा. ६, ३४, ७।

यहाँ द्रष्टव्य यह है कि भुशुण्डि अकस्मात् ही कथा के अन्तर्गत, नीतिवचन के प्रस्तावक के रूप में ही नहीं अपितु प्रस्तुतकर्ता के रूप में उपस्थित होता है।

जब कि रावण स्वयं अंगद का चरण पकड़ने लगता है तो अंगद कहता है—

मम पद गहें न तोर उबारा ॥
गहसि न राम चरन सठ जाई। सुनत फिरामन अति सकुचाई ॥
भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई ॥
सिंघासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गँवाई ॥[1]

और शिव इस कथानक की समाप्ति निम्नवत् करते हैं—

जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा ॥
उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा ॥
तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई ॥[2]

अभिव्यक्ति तथा शैली की दृष्टि से यह अंश अरण्यकाण्ड के काग जयन्त की कथा का स्मरण कराता है जहाँ भुशुण्डि[3] बीच में प्रस्तुतकर्ता के रूप में उपस्थित होता है। इसी प्रकार, सीताहरण के अवसर पर जब रावण सीता के पास आश्रमनिवासी का वेष बदल कर उपस्थित हो अपराध के पथ में प्रथम चरण उठाता है तो भुशुण्डि गरुड़ से कहता है—

इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥[4]

राम के सर्वशक्तिमान होने के विषय में, शिव की घोषणा किष्किन्धाकाण्ड[5] (४, ७, १२) में भुशुण्डि द्वारा गरुड़ को बताए विचार से तथा उत्तरकाण्ड के 'भुशुण्डि-चरित' के विचारक्रम से मिलती जुलती है।

मानस के लंकाकाण्ड में, अंगद के प्रसंग (६, ३६-३७) के तुरन्त पश्चात् ही मन्दोदरी तीसरी बार रावण को समझाती है और यह वाल्मीकि रामायण के "ख" संस्करण (६, ३६-३७) ("क" संस्करण ६, ३५-३६) के अनुरूप है। इस परिस्थिति में रानी मन्दोदरी अपने पति को उन सब अपमानों की याद दिलाती है जो उसे राम के हाथों सहन करने पड़े। फिर विराध, खर, त्रिशिरा, कबन्ध तथा वाली को केवल एक बाण से मारनवाले वे राम मानव कैसे हो सकते हैं?

---

[1] वही ६, ३५, १-३।
[2] वही ६, ३५, ३-४।
[3] दे० अध्याय ८, पृ० १७८ इत्यादि।
[4] रा. च. मा. ३, २८, ५, दे० अध्याय ८, पृ० १९२।
[5] दे० अध्याय ९, पृष्ठ २१०।

२—लंका में युद्ध (३९-१०९)

लंकाकाण्ड के युद्धसम्बन्धी विवरण में तुलसीदास ने वाल्मीकि की कथा का बहुत स्वतंत्रता से काम लिया है—कथा संक्षिप्त ही नहीं है अपितु घटनाक्रम तथा उन घटनाओं के अपेक्षाकृता महत्व में भी परिवर्तन किया है यहाँ तक कि इस प्रसंग को लेने पर दोनों कथाओं में सम्बन्ध जोड़ना असम्भव हो जाता है।

यहाँ युद्ध के वर्णनों में तुलसी ने एकसमान कला का परिचय नहीं दिया—यहाँ कम से कम मृदु आलोचना यह की जा सकती है कि उनमें महाकाव्य के योग्य प्रतिभा का अभाव है, जहाँ तहाँ रूक्ष अथवा बीभत्स स्थलों ने वीररस के स्थलों को गौण कर दिया है। इस प्रकार की अर्धपक्व महाकाव्य-शैली का नमूना हमें कवि ने अरण्यकाण्ड में ही, राम तथा राक्षस सेनापति खर के युद्ध में दिया था। लंका में जो युद्ध हुआ उसकी शैली भी वैसी ही है—केवल रावण के सिर तथा भुजाएँ सब दिशाओं में उड़ते हैं, बाणों के मेघों से आकाश आच्छादित हो जाता है और रक्त की नदियाँ बह निकलती हैं। इस प्रकार के श्यामल दृश्यों के साथ साथ कवि ने युद्धक्षेत्र में विजयी राम की वीरता का वर्णन भी मिलाना चाहा है।

इस विवरण में चमत्कारों को भी अनावश्यक स्थान प्राप्त हुआ है, और तुलसीदास वाल्मीकि से भी आगे बढ़ गये हैं। युद्ध के समय राक्षस मायावी अस्त्रों तथा जादूपूर्ण और भ्रामक युक्तियों का आश्रय लेते हैं और उनकी ऐसी सब युक्तियाँ राम के बाणों से निरन्तर विफल हो जाती हैं। कभी कभी युद्ध, माया के परिणामस्वरूप एक समान अनेक मूर्तियों के आविष्कार का तथा भयंकर व भ्रामक रूप धारण करलेता है। और वह दो शक्तिशाली सेनाओं के बीच आक्रमण नहीं अपितु एक ऐसे असंतुलित युद्ध में परिणत हो जाता है जिसमें एक ओर राक्षसी माया है और दूसरी ओर प्रभु राम की सर्वशक्तिशाली माया, जिसके कारण "सारा चराचर संसार ऐसा नाचता है जैसे मदारी के इशारों पर बन्दर।"

कथानकों को चुनते हुए और उनकी रचना में, कवि का प्रमुख विचार राम की कृपा को दर्शाना है, यह कृपा केवल प्रभु राम के मित्रों तक ही सीमित नहीं अपितु शत्रुओं पर भी इसका राज है—राक्षसों का उद्धार करने के लिये ही राम लंका में प्रवेश करते हैं। ये सारे युद्ध तुलसी के इष्टदेव राम के प्रताप के अनुरूप नहीं, और सारे चराचर जगत् के अत्यंत दुःखी और दीन लोगों के प्रति प्रभुकी दया को दर्शाने के सिवा कदाचित् तुलसीदास के लिये इन सारे युद्धों का कोई गाम्भीर्य भी नहीं। मानस के पिछले काण्डों की अपेक्षा, कथा के इस भाग में प्रस्तुतकर्ता का धार्मिक सिद्धांत और भी अधिक व्यक्त है।

हनुमान और अंगद, जो लंकाके किले में प्रवेश पाने में सफल रहते हैं राक्षसों की सेना का तितर बितर कर देते हैं और उनकी आत्माओं की मुक्ति के साधन भी हैं यद्यपि ये साधन कुछ क्रूर हैं—

महा महा मुखिआ जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं॥
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा॥[1]

---

[1] रा. च. मा. ६, ४५, १।

और शिव आगे कहते हैं—

उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर।।
देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी।।[१]

यहाँ पर, जो कुछ भी कहा गया है वह सब धार्मिक सिद्धान्त की स्थापना का एक व्याजमात्र है—राम द्वारा चलाया गया अग्निबाण, अकम्पन तथा अतिकाय राक्षसों की माया के कारण उत्पन्न अंधकार को वैसे ही नष्ट कर देता है जैसे

ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं।।[२]

इस अवसर पर माल्यवान बीच में पड़कर रावण को समझाता है कि सब कुछ राम पर छोड़ देना चाहिए क्योंकि वे हरि का अवतार हैं और "ब्रह्मा तथा शिव" भी उनकी पूजा करते हैं। रावण के द्वारा कठोरता से भगाये जाने पर माल्यवान इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि राक्षसों के राजा रावण में प्रभु राम के हाथों मरने की अभिलाषा है। (और यही व्याख्या अध्यात्म रामायण में भी दी है)। अत: मानस में मन्दोदरी तथा प्रहस्त के समान, माल्यवान भी राम का भक्त ही है।

मानस में, लक्ष्मण तथा इन्द्रजित् का प्रथम युद्ध (६, ५४) वाल्मीकि रामायण के लक्ष्मण तथा रावण के इस युद्ध (६, ५९) के अनुरूप है जिसमें लक्ष्मण को मूर्च्छा होती है। अध्यात्म रामायण में कहा गया है कि यह मूर्च्छा कृत्रिम है क्योंकि लक्ष्मण हरि-विष्णु[3] के अंगमात्र शेष का अवतार हैं। इसी प्रकार मानस में भी शिव उमा को राम की दिव्यता के विषय में बताते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लक्ष्मण का आचरण रहस्यमय है—

यह कौतूहल जानइ सोई। जा पर कृपा राम कै होई[४]।।

वाल्मीकि रामयण (६, १०१, ४०-४४) में वानरगण लक्ष्मण के वक्षस्स्थल से शक्ति निकालने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं—केवल राम ही सफल होते हैं। अध्यात्म रामायण के अनुसार, रावण शक्ति को निकालने का नहीं, पर लक्ष्मण को उठाने का प्रयत्न करता है—

"लक्ष्मण को लेजाने के लिये रावण उन्हें अपने हाथों से उठाने में सफल न हुआ, अत: उसे बड़ा ही विस्मय हुआ। भला जो सम्पूर्णजगत् का सार परमेश्वर विराट् पुरुष है, इस निखिल लोकाधार विष्णु को एक क्षुद्र राक्षस कैसे उठा सकता है?"[५]

---

[१] वही ६, ४५, २-३।

[२] वही, ६, ४७, २।

[3] वा. रा. (६, ५९, १०९-११०) में रावण द्वारा आहत होने पर, लक्ष्मण को स्मरण हो आता है कि वे स्वयं विष्णु का एक अंश हैं। रावण उन्हें उठा भी नहीं सकाता।

[४] रा. च. मा. ६, ५५, २।

[५] अध्यात्म रामायण ६, ६, ११-१२।

तब रावण को हटाकर हनुमान, लक्ष्मण को राम के पास लाते हैं। इसी प्रकार मानस में भी (रावण नहीं) मेघनाद अन्य राक्षसों की सहायता से लक्ष्मण के अचेत शरीर को उठाने का प्रयत्न करता है—

> मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
> जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ॥[1]

इस स्थान पर, लक्ष्मण को, लोकाधार शेष के तुल्य बताकर तुलसी ने अध्यात्म रामायण का अनुकरण किया है।

अध्यात्म रामायण की दृष्टि में मूर्च्छित लक्ष्मण के विषय में राम का विलाप कृत्रिम है परम प्रभु "मनुष्यत्व का आश्रय" लेकर (मानुषत्वमुपाश्रित्य) 'लीला'[2] करते हैं। मानस में भी ठीक इसी प्रकार शिव उमा से कहते हैं—

> उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥
> बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन॥
> उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई॥[3]

अरण्यकाण्ड के समान, ग्रन्थ के इस भाग में भी तुलसी, अध्यात्म रामायण के दृष्टिकोण को अपनाते प्रतीत होते हैं, क्योंकि इस रामायण में राम के कार्य और विशेषकर उनके विलाप उनकी "लीला" मात्र है। पर द्रष्टव्य यह है कि तुलसीदास ने राम को "बहाना" करते नहीं बताया; वे उनके रहस्य को रेखांकित करना श्रेयस्कर समझते हैं।[4]

मानस में यह घटना दो बार हुई है—पर दूसरी बार वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण के समान, मानस में भी, रावण ने लक्ष्मण पर प्रहार किया (६, ८३ छन्द, ८४)। ब्रह्मा की शक्ति लगने पर लक्ष्मण मूर्च्छित हुए और रावण व्यर्थ ही उन्हें उठाने का प्रयत्न करता है। तब हनुमान रावण से उलझ जाते हैं, उसको घूंसा मारते हैं और तब अचेत लक्ष्मण को राम के पास ले जाते हैं। मानस में लक्ष्मण की दूसरी बार की मूर्च्छा अध्यात्म रामायण (६, ६, ८ इत्यादि) की घटना का सम्पूर्ण अनुकरण प्रतीत होती है; और एक बार फिर लक्ष्मण को शेष अथवा अनन्त के समान बताया गया है।

लक्ष्मण को चेतना दिलाने के लिये सुषेण हिमालय के एक पर्वतशिखर से जड़ी बूटी लाने को हनुमान को भेजते हैं (वा. रा. ६, १०२, २१-२४)। मार्ग में हनुमान को, रावण के आदेश पर कालनेमि द्वारा प्रस्तुत विघ्नों पर भी विजय पानी है। यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण के "ग" संस्करण में नहीं है, पर अन्य दोनों संस्करणों में ("क" ६, ८१; "ख" ८२, १४२ इत्यादि) इस यात्रा का

---

[1] रा. च. मा. ६, ५४, दोहा।

[2] अ. रा. ६, ६, ३२।

[3] रा. च. मा. ६, ६१, १, ९।

[4] दे० अध्याय ८ पृ० १९३।

वर्णन ब्यौरेवार दिया गया है; अध्यात्म रामायण (६, ६, ३५ इत्यादि, ६, ७, १-३३) में इसको विशेष विस्तार प्राप्त हुआ है।

तुलसीने अध्यात्म रामायण की कथा का अनुकरण किया है और जहाँ तहाँ कुछ नई बातें भी जोड़ दी हैं; अध्यात्म रामायण (६, ६, ४२ इत्यादि) में, कालनेमि स्वयं राम का भक्त है, रावण से सीता को लौटाने का उपदेश करता है और अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का स्मरण कराके उसके मोह को दूर करने का प्रयत्न करता है; मानस में कालनेमि रावण को केवल राम की पूजा करने को कहता है—

देखत तुम्हहि नगरु जेहिं जारा। तासु पंथ को रोकन पारा।।
भजि रघुपति करु हित आपना। छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना।।
नील कंज तनु सुंदर स्यामा। हृदयँ राखु लोचनाभिरामा।।
मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महा मोह निसि सूतत जागू।।
कालब्याल कर भच्छक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई।।[1]

अध्यात्म रामायण में, रावण द्वारा सौंपे गए कार्य को सम्पन्न करने की स्वीकृति देकर, कालनेमि केवल उसके बल के वशीभूत होने का अपराधी है। पर मानस में, जैसे अरण्यकाण्ड में मारीच, वैसे यहाँ पर कालनेमि अपने मोक्ष की इच्छा से रावण के आदेश को स्वीकार करता है—

. . . तेहिं मन कीन्ह बिचार।
राम दूत कर परौं बरु यह खल रत मल भार।।[2]

कालनेमि का छलपूर्ण आचरण और उसमें असफलता दोनों कविताओं में एक समान वर्णित हैं, परन्तु केवल इस कथा के अंत में थोड़ा अन्तर हैं—अध्यात्म रामायण में हनुमान के प्रहार के पश्चात् कालनेमि अपना राक्षसी शरीर धारण करके उनसे लड़ता है, पर हनुमान घूंसे मार मार कर उसका सिर फोड़ देते हैं; इस के विपरीत मानस में, कालनेमि क्षुद्र तपस्वी है, और हनुमान का बिल्कुल विरोध नहीं करता और राम का नाम लेते लेते प्राण त्याग देता है (६, ५८, ३)।

इस प्रकार कालनेमि का अंत भी मारीच के अंतसे कम उदात्त नहीं। मानस के लेखक ने कालनेमि का मारीच के समान चित्रण किया है और इन दोनों राक्षस भक्तों की समानता को सबोध रेखांकित किया है।

कालनेमि की कथा से पूर्व, वाल्मीकि रामायण के "ख" संस्करण में एक ऐसा प्रसंग आता है जो अन्य दोनों संस्करणों में नहीं मिलता—जड़ीबूटीवाले पर्वत की ओर आकाशमार्ग से अग्रसर होते हुए हनुमान अयोध्या के ऊपर से जाते हैं, भरत उन्हें देखते हैं और उन्हें राक्षस समझ कर नीचे मार गिराना ही चाहते हैं कि हनुमान अपना परिचय देकर रामचरित का वर्णन करते हैं ("ख" संस्करण ६, ८२, ९० इत्यादि)। यह प्रसंग अध्यात्म रामायण में नहीं है। मानस में भरत हनुमान

---

[1] रा. च. मा. ६, ५६, २-४।

[2] रा. च. मा. ६, ५६, दोहा दे० अध्याय ८ पृ० १९१।

को लोटते समय देखते हैं, वे बिना फल का एक बाण मारते हैं और हनुमान राम का नाम लेते हुए पृथिवी पर आगिरते हैं। अनजान में राम के भक्त को मारने पर दु:खी भरत राम का नाम लेकर (हनुमान को सचेत करदेते हैं, उनका आलिंगन कर उनसे सीता व राम का कुशल समाचार पूछते हैं। फिर पर्वतसमेत बाण पर चढ़ाकर उन्हें राम के पास भेजने का प्रस्ताव करते हैं। मन ही मन भरत की अपूर्व भक्ति की प्रशंसा करते हुए हनुमान भरत से विदा लेते हैं (६, ५८ दोहा; ५९, ६०)। जैसा कि स्पष्ट है तुलसीदास ने वाल्मीकि में उपलब्ध प्रसंग को अत्यधिक विस्तार दिया है। मानस में, इस प्रसंग से भरत की शक्ति का आभास तो होता ही है पर इससे दो भक्तों की एक ऐसी भेंट का अवसर भी प्राप्त होता है जिनका विवरण तुलसीदास को विशेष प्रिय रहा होगा।[1]

मूर्च्छित लक्ष्मण को देखकर राम के विलाप का वर्णन वाल्मीकि रामायण के एक लम्बे सन्दर्भ में हुआ है (६, १०२, १-४); अध्यात्म रामायण में इसका संक्षेप से संकेत है—

“राम भी लक्ष्मण को मूर्च्छित अवस्था में पृथिवी पर पड़े देखकर मनुष्यभाव का आश्रय ले (मानुषत्वमुपाश्रित्य) लीला से (लीलया) शोक करने लगे।”[2]

यह सन्दर्भ प्राय: शब्दश: मानस में उपलब्ध है—

उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥[3]

मानस में राम के विलाप का वर्णन कम नहीं है—राम कहते हैं कि स्त्री, पुत्र, व परिवार जगत् में बार बार मिल सकते हैं पर सहोदर भाई बार बार नहीं मिलता। उन्हें चिन्ता यह है कि जब लक्ष्मण की माता उनसे पूछेंगी तो वे क्या कहेंगे। ये दोनों बातें वाल्मीकि रामायण के “ख” संस्करण (६, २४, ७-८ व १२) तथा “ग” संस्करण (६, ४९) में उपलब्ध हैं। शिव के द्वारा कहे गए वचन कवि के दृष्टिकोण को रेखांकित करते हैं—

उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई॥[4]

वाल्मीकि रामायण के “क” तथा “ख” संस्करणों में (बड़ी कठिनाई के बाद जाग्रत किये जाने पर) कुम्भकर्ण रावण से कहता है कि नारद ने एक बार वाणी की थी कि प्राचीनकालमें देवताओं ने विष्णु के एक अवतार द्वारा रावण के नाश का निर्णय किया था; तथा ये राम विष्णु का ही अवतार हैं (“क” संस्करण ६, ४१, ३३-५६; “ख” संस्करण ६, ४०, ३०-५३)। पर रावण उत्तर देता है कि उसे विष्णु से भय नहीं, वह देवताओं पर पहले ही विजय पाचुका है, और वह विष्णु के हाथों मर कर परम पद को पाना चाहता है (“क” संस्करण ४२, १-२४; “ख” संस्करण ६, ४१)।

---

[1] दे० अयोध्याकाण्ड पृ० १९३-१९४ में गुह तथा भरत की भेंट; सुन्दरकाण्ड ६-८ में हनुमान तथा विभीषण की भेंट।

[2] अ. रा. ६, ६, ३१-३२।

[3] रा. च. मा. ६, ६१, १।

[4] वही ६, ६१, ९।

कुम्भकर्ण के ये वचन तथा नारद की वाणी दोनों ही अध्यात्म रामायण (६, ७, ५६ इत्यादि) में प्राप्त हैं। इसी प्रकार मानस में भी, कुम्भकर्ण राम के प्रताप को बताता है और नारद की वाणी की ओर संकेत करता है और साथ में यह भी कह देता है कि इसको दोहराने का उसके पास अवकाश नहीं (रा. च. मा. ६, ६२, दोहा; ६३, १-४)।

वाल्मीकि रामायण (६, ८७) में, युद्ध क्षेत्र में विभीषण से भेंट करने पर इन्द्रिजित उसे विद्रोह करने के लिये उपालम्भ देता है। इसके विपरीत, "क" संस्करण में (और केवल वहीं) कुम्भकर्ण विभीषण को बधाई देता है कि उसने राम की शरण ले बुद्धिमत्ता का परिचय दिया (६, ४६, ८२-९१)। अध्यात्म रामायण (६, ८, ६ इत्यादि) में विभीषण कुम्भकर्ण के सम्मुख नतमस्तक होता है और उस राजद्रोह के कारण समझाता है। कुम्भकर्ण उसे बधाई देता है पर उस से बचे रहने की प्रार्थना करता है क्योंकि "मेरे नेत्र मद से मतवाले हो रहे हैं और मुझे इस समय अपना-पराया कुछ नहीं सूझता।" दोनों भाइयों की भेंट का वर्णन मानस में लगभग इसी प्रकार हुआ है। विभीषण के क्षमावचनों के उत्तर में कुम्भकर्ण कहता है—

सुनु सुत भयउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयहु तात निसिचर कुल भूषन॥
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर॥
बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर॥[1]

युद्धक्षेत्र में विभीषण के पराक्रम के विवरण में तुलसी ने वाल्मीकि का बहुत समीप से अनुकरण किया है। इस स्थल पर टेसिटोरी ने दो "वाल्मीकीय छायाओं" का उल्लेख किया है—जागने पर कुम्भकर्ण की तुलना काल से हुई है ("ग" संस्करण ६, ६१, ११; रा. च. मा. ६, ६२, ४); तथा कुम्भकर्ण के शरीर पर रक्त की नदियों का तुलना पर्वत से बहते झरनों से की गई है ("ग" संस्करण ६, ६७, ९०; रा. च. मा. ६, ६९, ४)।

तुलसीदास यह रेखांकित करना नहीं भूले कि राम द्वारा मारे जाने पर कुम्भकर्ण परमसुख को प्राप्त हुआ, वह राम से मिल गया, यद्यपि "सभी देवों तथा मुनियों को आश्चर्य हुआ," (६, ७१, ४)।

अध्यात्म रामायण में कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् नारद युद्ध क्षेत्र में उपस्थित होते हैं, और राम के गुणों का गान करते हैं, तथा यह भविष्य वाणी कहते हैं कि अगले दिन लक्ष्मण इन्द्रजित को मारेंगे और उसके एकदिन पश्चात् राम रावण का संहार करेंगे (६, ७, ३४-५२)। तुलसीदास नारद के इस क्षणिक आगमन तथा उनकी भविष्यवाणी का संक्षिप्त संकेत करते हैं (६, ७१, ५-६)।

रामचरितमानस में, कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् कथा की प्रगति कुछ रुक जाती है। यहाँ एक हरिगीतिका छंद में कविने युद्धक्षेत्र में विजयी राम के सौन्दर्य का वर्णन किया है—

---

[1] रा. च. मा. ६, ६४, ४ दोहा।

संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी ।
श्रम बिंदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी ।।
भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहु दिसि बने ।
कह दास तुलसी कहि न सक छवि सेष जेहि आनन घने ।।[1]

अगले दिन युद्ध और तेज़ी से आरम्भ होता है । भुशुण्डि गरुड से कहता है कि इस युद्ध की तीव्रता "अवर्णनीय" है (६, ७२, ६) ।

वाल्मीकि की कथा के अनुसार इन्द्रजित के नागपाशों से बंदी किये गए राम, सर्पों के भक्षक गरुड़ द्वारा मुक्त किये जाते हैं (६, ४४-५०) । राम के लिये इस लज्जाजनक प्रसंग को अध्यात्म रामायण में नहीं दिया गया । इस के विपरीत तुलसी ने एक विलक्षण ढंग से इसकी व्याख्या दी है—

ब्याल पास बस भए खरारी । स्वबस अनंत एक अबिकारी ।।
नट इव कपट चरित कर नाना । सदा स्वतंत्र एक भगवाना ।।
रन सोभा लगि प्रभुहिं बँधायो । नागपास देवन्ह भय पायो ।।
गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास ।
सो कि बंध तर आवइ ब्यापक बिस्व निवास ।।
चरित राम के सगुन भवानी । तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी ।।
अस बिचारि जे तग्य बिरागी । रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ।। [2]

पर तुलसी मायामयी सीता के विषय में मौन हैं, वाल्मीकि रामायण के अनुसार, मेघनादने इन्हें राम को हतोत्साह करने के लिये मारा था (६, ८१-८३); क्योंकि राम राक्षसों के इस प्रकार के कपट से धोखा नहीं खा सकते ।

वाल्मीकि रामायण (६, ८२, २६-२९) में, और अध्यात्म रामायण में भी अपनी विजय के लिये इन्द्रजित ने जो यज्ञ किया था वह विधिवत्—"होम" है; इसके विपरीत मानस में यह "रक्त तथा भैंसों की बलि से लित" अशुद्ध यज्ञ है ; इस प्रकार के यज्ञ राक्षसों के लिये उचित होते हैं ।

लक्ष्मण तथा इन्द्रजित का युद्ध तथा इन्द्रजित की मृत्यु का वर्णन वाल्मीकि रामायण के कई सर्गों (६, ८५ इत्यादि) में हुआ है, पर मानस में उसे संक्षेप से दिया गया है । मरते समय इन्द्रजित राम तथा लक्ष्मण का नाम लेता है जिससे उसका परलोक का सुख सुरक्षित हो जाता है । इन्द्रजित के साथ हुए प्रथम युद्ध के समान यहाँ भी लक्ष्मण को दिव्यता प्राप्त है, उन्हें "अनन्त" (७५ दो०, ७७, २), "अहीश" (७६, ७) "जगदाधार" (७७, २) कहकर सम्बोधित किया गया है और ये सारे विशेषण अनन्तता के प्रतीक तथा संसार के आधार सर्पों के राजा शेष के हैं ।

---

[1] रा. च. मा. ६, ७१ छन्द ।

[2] वही, ६, ७३, ७ दो० ; ६, ७४, १ ; "तग्य"—तत्वज्ञानी, यह शब्द (=संस्कृत "तज्ज्ञ"—अनुवादक) इस स्थान पर तथा उत्तरकाण्ड के सिवा अन्यत्र प्रयुक्त नहीं हुआ है ।

मानस के लंकाकाण्ड के ८९ से १०९ वें पद्यों में रामरावण युद्ध के उतार चढ़ाव का, रावण की मृत्यु का व सीता की मुक्ति तथा अग्निपरीक्षा का वर्णन है। इन पद्यों में कहीं एक और कहीं, अधिक हरिगीतिका छंद भी हैं जिनसे इस अंश की गीतिप्रधानता का बोध होता है—इसी प्रकार की व्यवस्था हमें बालकाण्ड में कामदेव के प्रस्थान, शिवपार्वती के विवाह के प्रसंगों में तथा अरण्यकाण्ड में राक्षसों से राम के युद्ध के विवरण में मिली थी।

शत्रु के शस्त्रास्त्रों की तुलना में राम के आयुधों की हीनता को देखकर विभीषण विचलित हो जाता है—राम के पास रथ नहीं है, न कवच है, न पदत्राण हैं, पर राम उत्तर देते हैं—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥
सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरषि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज॥[1]

यह तुलसीदास का मौलिक आविष्कार है। वाल्मीकि रामायण (१०३, ५ इत्यादि) में और अध्यात्म रामायण (७, ११, १९-२०) में रावण को रथ पर और राम को पैदल देखकर देवताओं को चिंता होती है। तब इन्द्र राम के लिये अपना रथ और सारथि मातलि भेजते हैं। इस प्रसंग को तुलसी ने सुरक्षित रखा है यद्यपि यह रावण के यज्ञ के पश्चात् (६, ८९) कुछ आगे आता है। यहाँ विभीषण का बीच में पड़ना सर्वथा अनावश्यक है—वस्तुतः वह नीतिविषयक प्रसंग को विकसित करने का एकमात्र निमित्त है। द्रष्टव्य यह है कि यह अंश केवल एक पद्य (८०) में है, शैली की दृष्टि से यह पद्य अपवादमात्र है क्योंकि इस पद्य में कोई भी हरिगीतिका छन्द नहीं है। कदाचित् यह पद्य बाद में जोड़ा गया हो।

वाल्मीकि रामायण के समान, रामचरितमानस में भी, रावण, लक्ष्मण पर एक "ब्रह्मा से प्राप्त भयंकर-शक्ति"[2] फेंकता है और उसके लगते ही लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं। मानस में लक्ष्मण

---

[1] रा. च. मा. ६, ८०, २-५, दो० १ व २।

[2] वा. रा. ६, ३६, ८३—"शक्तिः समरप्रचण्डस्वयम्भुवदत्त" ("ग" ६, ५९, १०४); रा. च. मा. ६, ८३ छन्द "सो ब्रह्मदत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।" अध्यात्म रामायण

के दूसरी बार मूर्च्छित होने का वर्णन पहली बार के समान ही है। जैसे ऊपर मेघनाद वैसे ही यहाँ रावण लक्ष्मण को उठाने का व्यर्थ परिश्रम करता है, यहाँ पर फिर लक्ष्मण को शेष ही माना है—

ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुअन धनी॥[1]

इस बार लक्ष्मण, सुषेण की देखभाल के कारण नहीं, पर राम के चमत्कार से सचेत हो जाते हैं—यह ठीक से समझमें नहीं आता कि तुलसीदास ने लक्ष्मण की मूर्च्छा की कथा की आवृत्ति क्यों की?

रावण के यज्ञ की कथा वाल्मीकि के “क” (६, ८५) संस्करण में (यद्यपि “ख” व “ग” संस्करण में नहीं) और अध्यात्म रामायण (६, १०, ४ इत्यादि) में उपलब्ध है। यह कथा मानस (६, ८५) में भी वर्णित है पर उसके ब्यौरे में नवीनताएँ ला दी गई हैं। वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण के समान मानस में इस यज्ञ को “होम” नहीं माना गया है, वह कदाचित् अशुद्ध मेघनाद के यज्ञ के समान “कुछ जग्य” है। रावण के युद्धविमुख होने पर आक्रमण करते वानर उसका उपहास करते हैं और “बगुले का सा ध्यान लगाकर” बैठने पर उपालम्भ देते हैं। अध्यात्म रामायण में, रावण के ध्यान को भग्न करने के लिये अंगद मंदोदरी के वस्त्रों तक का हरण कर लेता है। पर तुलसीदास अंगद के इस शिष्टाचार विरुद्ध आचरण का उल्लेख नहीं करते।

युद्ध क्षेत्र में राम के बाणों से रक्त की नदियाँ बह निकलती हैं और उसका वर्णन तुलसीदास इस प्रकार करते हैं—

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं। भूत पिसाच बधू नभ नंचहिं॥
भट कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना बिधि गावहिं॥
जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं॥
कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं। सीस परे महि जय जय बोल्लहिं॥[2]

इस प्रकार के वर्णन तुलसीदास ने कम नहीं किये—अरण्यकाण्ड में युद्ध के विवरण में इसका उदाहरण पहले ही प्राप्त हो चुका है;[3] कवितावली[4] में भी इसके अन्य उदाहरण हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि इन मध्यकालीन कवि ने भयंकर का बीभत्स से सम्मिश्रण किया है।

वाल्मीकि (६, १०१, १९ इत्यादि) में लक्ष्मण, विभीषण के बीच पर्वत सा बन कर अचल खड़े होजाते हैं और दो बार उसकी रक्षा करते हैं। इसी प्रकार, अध्यात्म रामायण में

(६, ६, ५ इत्यादि) में रावण विभीषण पर शक्ति फेंकता है पर लक्ष्मण उसकी रक्षा करने के लिये पर्वत के समान अचल होकर खड़े होजाते हैं; यह शक्ति “मायादत्त” अर्थात् मायाद्वारा दी है।

[1] रा. च. मा. ६, ८३ छन्द।

[2] रा. च. मा. ६, ८८, ४-५।

[3] दे॰ अध्याय ८ पृ॰ १८९।

[4] कवितावली ६, ३०-५१।

(६, ६, ५ इत्यादि) में भी लक्ष्मण विभीषण पर लक्षित प्रहार को सहकर स्वयं मूर्च्छित होते हैं। मानस में, स्वयं राम ही (अपने शरीर से, अपने भक्त की रक्षा करते हैं) एक क्षण भरके लिये मूर्च्छित होते हैं, पर शिव कहते हैं कि यह प्रभु का 'खेल'[1] है। कवि के धार्मिक सिद्धांत को ध्यान में रखने पर इस मौलिकता का कारण बोधगम्य हो जाता है।

युद्ध के सातवें दिन के अंत पर, जाम्बवान द्वारा प्रहार किये जाने पर नष्टचेतन रावण लंका में ले आया जाता है। इस स्थान पर तुलसीदास ने एक ऐसा प्रसंग दिया है जो वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण में नहीं है अर्थात् त्रिजटा नामक राक्षसी सीता के पास जाती है और उन्हें युद्ध का सारा समाचार बताती हैं। सीता अपने दुर्भाग्य पर विलाप करती हैं और चातुर्ययुक्त भाषण से त्रिजटा उन्हें सान्त्वना देती है—

कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी॥
प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयँ बसति बैदेही॥
एहि के हृदयँ बस जानकी उर मम बास है।
मम उदार भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है॥[2]

इस प्रकार की अलंकृत शैली नाटकों के प्रभाव की परिचायक है—वस्तुतः यह महानाटक (१४, २७) की छाया ही है।

वानर सेना तथा राक्षससेना का महायुद्ध जो हिंसा तथा विचित्रता में सब से बढ़कर है एक लम्बे पद्य (१०१) में वर्णित है। इस में ८ तोमार छन्द[3] और दो हरिगीतिका छन्द हैं—उनके बाद दो दोहे। अरण्यकाण्ड के वन में राम व राक्षसों के युद्धविषयक १८ वें पद्य की भी व्यवस्था नितांत ऐसी ही है।

वाल्मीकि रामायण (६, १११, १-२) में मातलि राम को परामर्श देता है कि वे उसे ब्रह्मशक्ति मारें। एक भक्त होने के कारण यह आश्चर्यजनक है कि रावण इतनी देर तक राम का मुकाबला कर सका; और इसीलिये, रामचरितमानस में, विभीषण समझाता है कि राम के बाणों के बावजूद यदि रावण अभी तक प्राणों की रक्षा कर सका तो वह उसकी नाभी में अमृत होने के कारण। कदाचित् इस प्रकार की असंभव कल्पना जनापवाद को शांत करने के लिये आवश्यक थी। विभीषण की इस चेतावनी के पश्चात् राम एक साथ इकतीस बाण मारते हैं और इकतीसवें बाण से उसकी नाभी सूख जाती है—और मरते समय रावण चिल्लाता है—

"कहाँ रामु रन हतौं पचारी॥"[4]

---

[1] रा. च. मा. ६, ९४, २।

[2] वही ६, ९९, ६-७ व छन्द।

[3] दे० अध्याय ८ पृ० १८९ पादटिप्पणी १।

[4] रा. च. मा. ६, १०३, २।

अध्यात्म रामायण (६, ११, ७८-७९) के समान, मानस में भी रावण मरते ही परमपद को प्राप्त करता है—उसका तेज 'प्रभु के मुख में समाविष्ट हो जाता है' और वह प्रभु से मिल जाता है। मरणासन्न राक्षसके मुख से ये शब्द कहला कर तुलसीदास ने यह दिखाना चाहा है कि मरते समय भी—चाहे विद्रोह से ही—राम का नाम जपने से मोक्ष सुनिश्चित है।

इस समय सारे देवता राम की स्तुति गाते हैं और इस स्तुति में विष्णु-कृष्ण[1] के एक विशेषण "मुकुन्द" का राम के संबन्ध में प्रयोग करते हैं।

वाल्मीकि रामायण (६, ११४) में रावण की मृत्यु पर मन्दोदरी विलाप करती है और भाग्य को कोसती है। मानस में, लंका की रानी अपने पति की मूढ़ता पर विलाप करती है क्योंकि वह राम में परब्रह्म को नहीं पहचान सका; साथ ही वह प्रभुकी कृपा की प्रशंसा करती है जिसके कारण रावण को परमपद प्राप्त हुआ (६, १०४)।

अध्यात्म रामायण (६, १२, १० इत्यादि), में रावण की मृत्यु के पश्चात्, राम के आदेश पर, लक्ष्मण दार्शनिक विचारों की सहायता से विभीषण को सान्त्वना देते हैं। मानस में यह व्याख्या उपलब्ध नहीं पर इसकी ओर संकेत हुआ है—

तव प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा ॥
लछिमन तेहि बहु बिधि समुझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो ॥ [2]

इसी प्रकार, अध्यात्म रामायण (६, १२, ३-४) के समान, मानस (६, १०६ छन्द) में राम उन सब को परम सुख की प्राप्ति का वचन देते हैं जो वानरों की कीर्ति गाते हैं।

वानरों के साथ, सीता राम के पास लाई जाती हैं। वाल्मीकि रामायण (६, ११८) के अनुसार राम क्रूरवचन कहकर उनका स्वागत करते हैं; उनके सतीत्व पर संदेह करते हैं; दूसरे के यहाँ निवास करने वाली पत्नी को अस्वीकार करते हैं तथा उनका परित्याग कर देते हैं। अध्यात्म रामायण (६, १२, ७५-७६) में इस प्रसंग का संक्षिप्त संकेत है। यद्यपि राम का चित्रण अधिक प्रशंसाजनक नहीं, पर साथ ही यह भी कहा गया है कि जिस स्त्री के प्रति राम इस प्रकार के कटुवचन कहते हैं वह वास्तव में सीता नहीं—

"तब रघुनन्दन ने, इन माया सीता को देखकर, जिनको कार्य के सम्पादन के हेतु रचा गया थी, बहुत से अकथनीय वचन कहे।"

रामचरितमानस के १०८ वें पद्य की अंतिम अर्धाली तथा दोहे में भी इसी व्याज की ध्वनि है—

सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी ॥
तेहि कारन करुना निधि कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानीं सब लागीं करै बिबाद ॥

---

[1] ब्रह्मा द्वारा विष्णु की स्तुति (१, १८६ छन्द १-४; दे० प्रथम भाग, अध्याय ५, पृ० ९४) में भी।

[2] रा. च. मा. ६, १०५, ३।

हमारे अनुसार इस का अनुवाद निम्नवत होना चाहिए—

" (राम) जो अन्तर्हृदय के साक्षी हैं, उन सीता को प्रकट कराना चाहते थे जिन्हें उन्होंने पहले अग्नि में प्रवेश कराया था। इसी कारण, करुणा के भण्डार राम ने कुछ कटु वचन कहे। इन्हें सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगीं।"

१०८ वें पद्य की अंतिम अर्धाली का अर्थ समस्याजनक है। ग्राउज़[1] के अनुसार इसका अर्थ यों है—

" सर्वप्रथम उन्हों ने सीता को अग्नि में प्रवेश कराया, क्योंकि वे आन्तरिक साक्षी को प्रकट कराना चाहते थे।"

प्रथम पादटिप्पणी में ग्राउज़ ने कहा है—

" 'अंतर साखी' शब्दों का अर्थ, आंतरिक साक्षी अथवा आत्मा का साक्षी—संस्कृतमूल (वाल्मीकिरामायण) की सहायता के बिना सुव्यक्त नहीं होगा। इस संस्कृत मूल में सीता अग्निदेव से प्रार्थना करते हुए उसे इस प्रकार सम्बोधित करती हैं—" हे अग्निदेव, तुम सारे प्राणियों के रहस्य को जानने वाले हो (शरीरान्तरगोचरः); हे सर्वोत्तम देव, तुम मेरे साक्षी होओ; देहधारण करके मेरी रक्षा करो।"[2]

वाल्मीकि रामायण के अनुरूप स्थल की तुलना पर अश्रित ग्राउज़ का यह अर्थ नहीं जमता। मानस के उपरिनिर्दिष्ट स्थल में, यह स्पष्ट है कि 'अंतर साखी' विशेषण राम के लिये प्रयुक्त हुआ है और ऐसा ही श्री श्यामसुन्दरदास तथा मानसाङ्क के व्याख्याकार का मत है।

रामचरितमानस में अन्यत्र कहीं भी 'अंतर साखी' विशेषण का प्रयोग नहीं हुआ; ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर यह "अंतरजामी" के पर्याय के समान प्रयुक्त हुआ है। और यह अन्तिम विशेषण मानस में राम के लिये कई स्थानों पर "अन्तर्ज्ञानी" के अर्थ में आया है।[3] हो सकता है कि यहाँ "अन्तरजामी" के स्थान पर "अंतर साखी" का प्रयोग, जैसा कि ग्राउज़ ने अनुमान लगाया है, वाल्मीकि के तदनुरूप स्थल के संस्मरण के कारण हुआ हो, यद्यपि संस्कृत रामायण में इस विशेषण का प्रयोग अग्नि के लिये हुआ। परन्तु इतना तो निश्चय है कि मानस में यह विशेषण राम के लिये है अग्नि के लिये नहीं—तुलसीदास कहना चाहते हैं कि सर्वज्ञ होने के कारण, राम को सीता के सतीत्व में संदेह नहीं हो सकता था पर यदि उन्होंने सीता की अग्नि परीक्षा ली तो वह इसलिये कि वह "वास्तविक" सीता को प्रकट करना चाहते थे जिन्हें वे पहले अग्नि में प्रवेश करा चुके थे।

बात तो यह है कि अध्यात्म रामायण (३, ७, १-४) में, राम के आदेश से, हरण से पहले ही सीता अग्नि में समा चुकी थीं, और वन में जिन सीता को रावण ने हरा था वह मायामयी सीता,

---

[1] ई टी. पृ० ५६९।

[2] वा. रा. " ख " संस्करण ६, १०१, ३०—

" त्वमग्ने सर्वभूतानां शरीरान्तरगोचरः। त्वं साक्षी मम देहस्थः त्राहि मां देवसत्तम।"

" ग " संस्करण (११९, २४) के अनुसार, सीता अग्नि को " लोकस्य साक्षी " कहती हैं।

[3] दे० प्रथम भाग अध्याय ७ पृ० १८९।

वास्तविक सीता का प्रतिबिम्बमात्र थीं। केवल इस प्रतिबिम्ब को ही रावण लंका लेगया और इस को ही राम ने पुनः प्राप्त किया। [१]वास्तविक सीता तो अग्निपरीक्षा के बाद ही प्रकट होती हैं जब अग्निदेव स्वयं उन्हें राम को समर्पित करता है—

“हे रघुवीर, पहले तपोवन में मुझे सौंपी हुई देवी जानकी को अब ग्रहण कीजिए। हे हरि, रावण का प्राणहरण करने के लिये आपने मायामयी सीता रचकर रावण को उसके पुत्र और बन्धु-बान्धवों सहित मारडाला। हे प्रभो, ऐसा करके आपने पृथिवी का भार उतार दिया। वह प्रतिबिम्बरूपिणी माया सीता, जिस कार्य के लिये रची गई थीं उसे पूरा करके अब अदृश्य हो गई हैं।”[२]

मानस के अरण्यकाण्ड में, अध्यात्म रामायण के सीता विषयक आविष्कार का परिग्रहण करने के पश्चात् तुलसीदास को लंकाकाण्ड में अग्निपरिक्षा के समय वास्तविक सीता के प्रकट करने का प्रसंग भी देना था। और इसीलिये मानस में, सीता लक्ष्मण से अग्नि चिता बनाने को कहती हैं। पर जब सीता राम का नाम लेकर अग्नि में प्रवेश करने लगती हैं तो उसकी ज्वाला “चन्दन के समान शीतल हो जाती है और यहाँ से “प्रतिबिम्ब” का संकेत आरम्भ होता है—

प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहुँ न लखे . . . . ।।[3]

यहाँ पर “प्रतिबिम्ब” शब्द अरण्यकाण्ड (३, २४, २) में अग्नि में समाई सीता के स्थानापन्न उनकी छाया का संकेत करता है।[४]

पर यदि यह संकेत निश्चित है तो आश्चर्य है कि इतना संक्षिप्त क्यों है। लंकाकाण्ड का यह सन्दर्भ अध्यात्म रामायण का सहायता बिना अस्पष्ट रहेगा। इतना तो स्पष्ट है कि मानस के लेखक के लिये इस प्रकार के स्थानान्तरण का कोई विशेष महत्व नहीं, और जैसे वाल्मीकि के लिये वैसे ही तुलसीदास के लिये “वास्तविक” सीता का ही हरण रावण ने किया था और उनको ही राम ने छुड़ाया।

३—लंकाकाण्ड की समाप्ति (११०-१२१)

रावण की मृत्यु से विद्रोह का अंत होता है और राम विजयी ठैरते हैं। इस स्थान से लेकर काण्ड के अन्त तक तुलसीदास ने कथा को वाल्मीकि रामायण से भिन्न बनाने में और भी स्वतंत्रता बरती है। इस अंश में, कई स्तुतियों के कारण कथा अवरुद्ध हो गई है, इन में से अधिकतर के बीज वाल्मीकि रामायण में प्राप्त नहीं होते। अध्यात्म रामायण ही इन स्तुतियों का मूल आधार है।

अध्यात्म रामायण (७, ११, ७९ इत्यादि) के अनुसार रावण को प्राप्त प्रसाद को देखकर देवगण ईर्ष्यालु हैं—इस अपराधी अपवित्र व्यक्ति को तो मोक्ष मिल गया और वे सब इसकी कामना ही

---

[१] दे० अध्याय ८ पृ० १९१।

[२] अ. रा. ६, १३, २०।

[3] रा. च. मा. ६, १०९ छंद।

[४] निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता।

करते रहे। पर नारद उनको उपदेश देते हैं, वे भागवतों के प्रिय सिद्धांत की व्याख्या करते हैं जिसके अनुसार महापापी भक्त भी "दु:खों से छूट कर वैकुण्ठ को प्राप्त होता है।"

इसी प्रकार मानस में भी रावण को प्राप्त प्रसाद से देवता ईर्ष्यालु हैं। वे राम को धन्यवाद कहने आते हैं पर वे असन्तुष्ट हैं—

आए देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी॥
दीन बंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया॥
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारगगामी॥
तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय॥
मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो॥
यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही॥
अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरें मन बिसमय आवा॥
हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी॥
भव प्रबाहँ संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे॥[1]

अध्यात्म रामायण के युद्धकाण्ड (६) में राम के प्रति ब्रह्मा की स्तुति आदर्शस्वरूप है। वहाँ राम को एक साथ विष्णु का अवतार तथा नित्य, निर्विकल्प, ज्ञानस्वरूप व अनादि परब्रह्म माना गया है—

"जो नानाशास्त्र और वेदसमूह से प्रतिपादित नित्य, आनन्दस्वरूप, निर्विकल्प, ज्ञानस्वरूप, और अनादि हैं तथा जिन्हों ने मेरा कार्य करने के लिये मनुष्य रूप धारण किया, उन मरकतमणि के समान नीलवर्ण मथुरानाथ[2] भगवान राम को मैं प्रणाम करता हूँ।"[3]

मानस की "ब्रह्मास्तुति" की शैली भी ऐसी ही है। वह एक लम्बे पद्य (१११ वें) में है और इसमें तोटक[4] छन्द का प्रयोग हुआ है। इस स्तुति के अंत में, अतीत के मोह के लिये दु:ख प्रकट करने के पश्चात् ब्रह्मा भक्ति का वर मांगते हैं।

वाल्मीकि रामायण (६, १२२, १७) के अनुसार, रावण की मृत्युके पश्चात् अपने पुत्र के निजी स्वर्ग से ऊबने के कारण राजा दशरथ राम के सम्मुख प्रकट होते हैं और उन्हें "परब्रह्म" मानकर

---

[1] रा. च. मा. ६, ११०, १-६। इस पद्य में विष्णु के अवतारों की (अपूर्ण) गणना की गई है और इस दृष्टि से यह रा. च. मा. का अपूर्व स्थल है। केवल यहीं पर भागवतों के समान, परशुराम को भी विष्णु का अवतार माना गया है। दे० प्रथम भाग, अध्याय ६ पृ० १२७।

[2] भागवतपुराण से प्रचुर मात्रा में प्रभावित अध्यात्म रामायण प्राय: कृष्ण के सम्बन्ध में प्रयुक्त विशेषणों तथा विशेषताओं को राम पर घटित करती है।

[3] अ. रा. ६, १३, १७।

[4] चार पादों का छन्द जिसके प्रत्येक पाद में चार सगण (⏑⏑—) होते हैं।

पूजा करते हैं। अध्यात्म रामायण (६, १३, ३६) में, दशरथ राम से कहते हैं कि इनकी ही कृपा से मैं "संसाररूपी दुःखसमुद्र से पार हो गया।" पर मानस में राम की कृपा से दशरथ को जो सुख प्राप्त हुआ उसका विशदीकरण किया गया है—

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना॥
ताते उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो॥
सगुनोपासक मोच्छ न लहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥[1]

इस प्रकार के विचारों का उत्तरकाण्ड में, और विशेषकर 'भुशुण्डि चरित' में प्रचुर विकास हुआ है—वहाँ भुशुण्डि 'भेदभक्ति' तथा सगुण के पक्षपाती के रूप में उपस्थित हुआ है।

अध्यात्म रामायण में, ब्रह्मा के बाद इन्द्र की बारी आती है और वह विजेता की कीर्ति का गान करता है। वह राम को जगत् का प्रभु व चराचर का स्वामी मानता है और यह स्वीकार करता है कि परम शक्ति के गर्व से मोहित हो जाने पर उसने राम का सच्चा स्वरूप नहीं पहचाना था पर जब उसका मोह नष्ट हो गया तब वह राम के प्रत्यक्ष स्वरूप की सोत्साह स्तुति करता है (६, १३, ३०)

इसी प्रकार मानस में भी तोमार[2] छन्द में इन्द्र राम की स्तुति करता है, और गर्व के वशीभूत हुए अपने मोह को पहचान जाता है। यहाँ भी वह "सगुण" की प्रशंसा करता है और भक्ति का वर मांगता है—

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अब्यक्त जेहि श्रुति गाव॥
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप॥
बैदेहि अनुज समेत। मम हृदयँ करहु निकेत॥
मोहि जानिऐ निज दास। दे भक्ति रमानिवास॥[3]

वाल्मीकि रामायण (६, १२३) के अनुसार, राम की प्रार्थना पर इन्द्र, युद्ध में काम आये बानरों तथा भालुओं को अमृतकी वर्षा कर पुनः जीवित कर देता है। अध्यात्म रामायण में (६, १३, ३७, ४०) में भी यह प्रसंग सुरक्षित है। मानस में इसे छोड़ा नहीं गया पर इस के रहस्य पर भुशुण्डि ने प्रकाश डाला है—

सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी। अति अगाध जानहिं मुनि ग्यानी॥
प्रभु सक त्रिभुअन मारि जिआई। केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई॥[4]

---

[1] रा. च. मा. ६, ११२, ३-४; शरभंग के साथ भी ऐसा ही हुआ, दे० ३, ७-८; तथा अध्याय ८ पृ० १८३।

[2] दे० अध्याय ८ पृ० १८९ पादटिप्पणी १।

[3] रा. च. मा. ६, ११३ तो० छं. ७-८।

[4] वही ६, ११४, २।

इन्द्र द्वारा बरसाया गया अमृत वानरों तथा राक्षसों पर एक साथ गिरता है पर केवल वानर ही पुनर्जीवित होते हैं, राक्षस नहीं यद्यपि तुलसी का कहना है कि राक्षसों पर अधिक अमृत पड़ा।

रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छूटे भव बंधन ॥
सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति कीं ईछा ॥
राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी ॥
खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिबर पावन ॥[1]

अध्यात्म रामायण (६, १३, ३४) में तदुपरांत शिव राम के सम्मुख प्रकट होते हैं और उनके राज्याभिषेक पर उपस्थित होने का वचन देते हैं। मानस में भी शिव राम को वही वचन देते हैं परन्तु इस वचन देने से पूर्व "मोदक"[2] छन्द में एक स्तुति (६, ११५) आती है जिसका प्राग्रूप अध्यात्म रामायण में नहीं है। यहाँ पर शिव, राम को "काम, क्रोध, और मदरूपी हाथियों के लिये सिंह" के समान बताते हैं। उनसे इस "दुस्तर संसार सागर को पार" कराने की विनती करते हैं; अन्त में उनसे लक्ष्मण तथा सीता सहित निरंतर-अपने हृदय में निवास करने को कहते हैं[3] ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य देवताओं के समान शिव का उद्धार राम की कृपा के बिना सम्भव नहीं।

राम की आज्ञा पर, विभीषण "पुष्पक" नामक आकाशयान पर चढ़ता है और वानरों को वस्त्र तथा आभूषण फेंकता है। वानरों की लोलुपता तथा उनकी लपक झपट राम का मनोरंजन करती है और प्रस्तुतकर्ता शिव यह स्पष्ट कर देते है कि राम केवल उन सब पर कृपा करते हैं जो उनकी भक्ति में मग्न हैं—

उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम ॥[4]

वाल्मीकि रामायण (६, १२७) में लंका से लौटते समय, राम पुष्पक को प्रयाग पर रोकते हैं और वहाँ पर एक बार पुन: भरद्वाज ऋषि से भेंट करते हैं। इस स्थल पर अध्यात्म रामायण में एक नई स्तुति जोड़ी गई है—भरद्वाज राम की स्तुति करते हैं। मानस में इस "भरद्वाजस्तुति" का उल्लेखमात्र किया गया है (६, १२१, १)। पर तुलसीदास ने गुह के निवासस्थान शृङ्गवेर में राम के पुनरागमन का वर्णन किया है, यद्यपि इस आगमन का प्रसंग न तो वाल्मीकि रामायण में है ने अध्यात्म रामायण में—इसका अभिप्राय यह हुआ कि मानस में राम के भक्त के रूप में गुह का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि वह जन्म से नीच है पर उसकी सज्जनता, भक्ति की पावन शक्ति का

---

[1] रा. च. मा. ६, ११४, ४-५।

[2] चार पादों का छन्द, जिसके प्रत्येक पाद में चार "यगण" (— ⏑ ⏑) होते हैं, यद्यपि इसके अपवाद भी देखने में आते हैं।

[3] रा. च. मा. ६, ११५ मोदक १-५।

[4] वही ६, ११७, दोहा २।

एक ज्वलंत उदाहरण है।[1] इस बार भी राम उसको हृदय से लगाते हैं और तुलसी इस प्रसंग से यह उपदेश निकालते हैं—

सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो।।[2]

यहीं पर रामचरितमानस का लंकाकाण्ड समाप्त हो जाता है। वाल्मीकि रामायण के सभी संस्करणों में तथा अध्यात्म रामायण में राम के अयोध्या लौटने पर उनके राज्याभिषेक की कथा भी दी गई है, पर मानस में यह कथा उत्तरकाण्ड के आरम्भ में आती है।

मानस के १२१ वें पद्य की अंतिम ६ अर्धालियों में फलस्तुति है—

यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा।
कामादिहर बिग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा।।
समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान।।
यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्रीरघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार।।[3]

मानस के लंकाकाण्ड की पुष्पिका इस प्रकार है—

"कलियुग के समस्त पापों का नाश करने वाले रामचरितमानस का विमलविज्ञान सम्पादन नामका यह छटा सोपान समाप्त हुआ।"

४—रामचरितमानस के लंकाकाण्ड की विशेषताएँ।

एक ओर मानस के लंकाकाण्ड में वर्णित और दूसरी ओर वाल्मीकि रामायण के तीनों संस्करणों तथा अध्यात्म रामायण में वर्णित कथा के भेदों की संख्या और महत्व से कई समालोचक, विशेषकर टेसिटोरी बहुत प्रभावित हुए हैं। टेसिटोरी वाल्मीकि रामायण को ही रामचरितमानस का "प्रमुख मूल आधार" मानते हैं और इन भेदों की व्याख्या करने के लिये अनुमान करते हैं कि "वाल्मीकि के युद्धकाण्ड की अत्यधिक जटिलता में हिन्दी कवि तुलसीदास पथभ्रष्ट होगये और घटना चक्र की भूल भुलय्यों में अपने को प्राय: खो बैठे।"[4]

---

[1] दे० प्रथम भाग अध्याय ७ पृ० १७६-१७९।

[2] रा. च. मा. ६, १२१ छन्द २।

[3] वही ६, १२१, छन्द २, दोहा १-२।

[4] इं. एं. ४१ (१९१२) पृ० २७५।

वस्तुत: इस छटे काण्ड का जहाँ तक सम्बन्ध है, वाल्मीकि के तीनों संस्करणों में परस्पर भेद है।[1] इनमें से प्रत्येक संस्करण में कुछ ऐसे प्रसंग हैं जो अन्य संस्करणों में उपलब्ध नहीं। "ग" संस्करण में विशेषकर अनेक कथाएँ हैं तथा प्रसंगों की आवृत्ति हुई है। अध्यात्म रामायण सामान्यतया वाल्मीकि रामायण के इसी संस्करण का अनुकरण करती है, परन्तु उसमें कई ऐसे कथानक हैं जो इस संस्करण में नहीं हैं, अपितु अन्य दो या दो में से किसी एक संस्करण में उपलब्ध हैं। इन भेदों के कारण इस काण्ड के प्रसारण में भ्रम हुआ, और इस भ्रम का कारण घटनाओं की अपूर्व जटिलता रही होगी।

जहाँ तक रामचरितमानस का प्रश्न है, टेसिटोरी द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण अपर्याप्त है। सम्भव है कि यदि तुलसीदास प्रयत्न करते तो वाल्मीकि के युद्धकाण्ड की अधिक प्रामाणिक छाया प्रस्तुत कर सकते थे क्योंकि आध्यात्म रामायण के युद्धकाण्ड में उन्हें इस कथा का सार उपलब्ध था ही।

दूसरी ओर, रामचरितमानस के लंकाकाण्ड को पढ़ने से यह आभास कदापि नहीं होता कि घटनाक्रम की दुर्व्यवस्था का कारण दुर्बल स्मरणशक्ति से उत्पन्न अस्थिरता है। यह मानना होगा कि यत्र तत्र असावधानी तथा अदक्षता का परिचय मिलता है, पर इतना स्पष्ट है कि कवि ने कथा का वह रूप प्रस्तुत किया है जो उसका अभीष्ट था। उसने विभिन्न संस्करणों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया है परन्तु कथाओं को तथा उनके क्रम को अपनी इच्छानुसार चुना और निजी दृष्टिकोणानुसार संजोया है। इस काण्ड के प्रथम भाग में, जैसा कि हम देख चुके हैं, प्रसन्न राघव का अधिक और वाल्मीकि रामायण का प्रभाव कम है। युद्ध के वर्णनों का, जो काण्ड का प्रधान भाग है, तुलसी ने पर्याप्तमात्रा में संक्षेप किया है और वाल्मीकि रामायण में सूक्ष्मतया वर्णित अधिकतर मल्लयुद्धों का वर्णन नहीं किया—अपनी अपनी शक्ति के अनुसार कुम्भकर्ण ने एकबार, मेघनाद ने दो बार, और रावण ने तीन बार युद्ध किया। अन्य राक्षसों के युद्धों की चर्चा ही नहीं है, यत्र तत्र किन्हीं एक दो के नाम का उल्लेख हुआ है जैसे कुम्भकर्ण को जगाते हुए रावण कहता है—

> तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संघारे॥
> दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी॥
> अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥[2]

इस प्रकार कविने दिखाया है कि वह महाराक्षसों के पराक्रमों को भूला नहीं, परन्तु ये पराक्रम उसके ध्येय की पूर्ति नहीं करते, अथवा इनका वर्णन कर वह अपनी कथा को बोझिल नहीं बनाना चाहता।

रामचरितमानस के लंकाकाण्ड में यथार्थत: नवीनताएँ कम हैं परन्तु तुलसीदास की प्रवृत्ति वाल्मीकि रामायण के कुछ कथानकों को दोहराने की है—मानस में मन्दोदरी तीन बार बीच में पड़कर रावण को समझाती है (वाल्मीकि रामायण के "क" व "ख" संस्करण में तथा अध्यात्म रामायण में वह केवल एक बार उपस्थित होती हैं); शक्ति लगने पर लक्ष्मण दो बार मूर्च्छित होते

---

[1] दे० का. बुल्के—दि थ्री रिसेंशन्स . . . ज. ओ. रि. म, १९४९, १७ भाग १।

[2] रा. च. मा. ७, ६२, ५-६।

हैं—एक बार मेघनाद के प्रहार से और दूसरी बार रावण के प्रहार से (वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण में केवल एक बार रावण के प्रहार से) ; रावण के मुकुटों की कथा, जिन्हें अंगद राम के पास भेजता है और जिन्हें वानरगण सितारे समझ बैठते हैं, सुवेल पर्वत के दृश्य का अनुकरण है जब कि रावण के छत्र तथा मन्दोदरी के कर्णफूलों के विषय में राम इसी प्रकार की मिथ्याकल्पना करते हैं ; कालनेमि की उदात्त मृत्यु, अरण्यकाण्ड के मारीच की मृत्यु का स्मरण कराती है ; और कुम्भकर्ण की मृत्यु रावण की मृत्यु के समान है .... । विशेष उदात्त समझे जानें वाले ऐसे कथानकों की संख्या बढ़जाने से नीरसता आये बिना नहीं रहती।

अधिकतर नवीनताएँ और जोड़ तोड़, इष्टदेव के मान की एक मात्र चिंता से प्रेरित हैं और यह चिंता, पिछले काण्डों की अपेक्षा, इस काण्ड में अधिक व्यक्त है—इस काण्ड में, घटनाओं की सन्धि तथा उनका अपेक्षाकृत महत्व, कवि के धार्मिक विचारों की अभिव्यक्ति के सर्वथा अधीन है।

अरण्यकाण्ड की भांति यहाँ भी, अध्यात्म रामायण का अधिकतर उपयोग हुआ है परन्तु साथ में स्वतंत्रता भी बरती गई है—यह स्वतंत्रता केवल कथा में ही नहीं अपितु गीतात्मक तथा नीतिप्रमुख स्थलों में भी दृष्टिगोचर होती है। इस लंकाकाण्ड में अध्यात्म रामायण की सभी गीताओं को या तो दक्षता के साथ छोड़ ही दिया गया है या प्रस्तुतकर्ता उनकी ओर संक्षेप[1] से संकेत कर के ही संतुष्ट हो जाता है। लंकाकाण्ड का दार्शनिक अंश मन्दोदरी गीता है, यह प्रत्यक्ष भागवत पुराण से प्रेरित है और इस में अध्यात्म रामायण का तनिक भी प्रभाव नहीं। इस के विपरीत, इस काण्ड के अंत की स्तुतियाँ सब की सब अध्यात्म रामायण से प्रेरित हैं; परन्तु मानस में ये स्तुतियाँ दार्शनिक नहीं हैं।

लंकाकाण्ड में, राम "लक्ष्मी पति" विष्णु हैं और "शिव तथा ब्रह्मा" भी इनकी उपासना करते हैं; रामावतार से पहले के अवतारों का—मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतार, नृसिंहावतार, और परशुरामावतार [2] का उल्लेख भी है। विष्णु के अन्य महान अवतार, तथा लौकिक धारणा में राम के प्रतिद्वन्द्वी, कृष्ण के विषय में तुलसीदास मौन हैं, परन्तु राम पर उनके विशेषणों तथा उनकी विशेषताओं का जैसे मधु राक्षस पर उनकी विजय का आरोप अवश्य हुआ है—(६, ४८ दो०)। भागवतपुराण में कृष्ण के भाई बलराम के समान, लक्ष्मण को यहाँ पर अनन्त तथा जगदाधार शेष कहा गया है। इस के विरुद्ध सीता को दिव्यता प्राप्त नहीं हुई। नारद तथा सनत्कुमार के साथ साथ, शिव तथा ब्रह्मा की गणना राम के महाभक्तों में हुई है। राम की क्रियाओं को मायावी बताया गया है—वे मनुष्य के समान कार्य करते हैं, उनके कार्य उनकी माया की "लीला" है जो वे केवल भक्तों के प्रेम के कारण ही करते हैं। निम्नलिखित अंश से कवि का विचार सुव्यक्त होजाता है, यद्यपि इसका उच्चारण कवि ने शिव से कराया है—

उमा करत रघुपति नरलीला। खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥
भृकुटि भंग जो कालहि खाई। ताहि कि सोहइ ऐसि लराई॥

---

[1] दे० रावण को कालनेमि का उपदेश; कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् राम के प्रति नारद का कीर्तिगान; रावण की मृत्यु के पश्चात् लक्ष्मण का विभीषण को उपदेश; राम के प्रति भरद्वाज की गीता।

[2] रा. च. मा. ६, ११०, ४।

जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं॥[१]

वस्तुतः इस लंकाकाण्ड को "कृपाकाण्ड" का नाम दिया जा सकता है; पिछले काण्डों की अपेक्षा इस काण्ड में प्रभु राम के सौजन्य के उदाहरण सुलभ हैं—वे अपराधी राक्षसों तक पर कृपा करते हैं, सब के सब मरते समय राम का नाम लेते हैं जिससे उन्हें परमधाम प्राप्त होता है। भागवतपुराण से प्रभावित अध्यात्म रामायण और रामचरितमानस का यह दृष्टिकोण एकसा है। अध्यात्म रामायण में, मारीच तथा कुम्भकर्ण के समान, रावण भी अपनी मुक्ति को सुरक्षित रखने के विचार से राम के हाथों जानबूझ कर मरना चाहता है। अरण्यकाण्ड में, मारीच के व्यवहार के लिये तो तुलसीदास ने अध्यात्म रामायण में दी व्याख्या को स्वीकृत किया ही, और लंकाकाण्ड में भी, वे कुम्भकर्ण के लिये उसी सिद्धांत को स्वीकार करते प्रतीत होते हैं पर रावण के लिये नहीं, क्योंकि वह तो अंत तक, विधि का शिकार बना रहता है यद्यपि मारीच, विभीषण, मन्दोदरी, माल्यवान और कुम्भकर्ण सभीने उसे बार बार समझाया। कथा की नाटकीयता को सुरक्षित रखने के लिये रावण की इस अडिग मूढ़ता को बताना आवश्यक था। अरण्यकाण्ड के समान, लंकाकाण्ड में भी राजा प्रतापभानु का कोई उल्लेख नहीं किया गया यद्यपि रावण उसी का अवतार बताया गया था।[२]

लंकाकाण्ड के अन्तिम भाग में सैद्धांतिक विचारों के प्रति तुलसीदास का झुकाव प्रतीत होता है, ऐसा लगता है कि कवि परब्रह्म के "निर्गुण" स्वरूप की अपेक्षा "सगुण" स्वरूप की प्रमुखता को सिद्ध करना चाहता है। "सगुण" के उपासक, भक्ति का आश्रय लेने वाले हैं और भक्ति का फल मोक्ष नहीं अपितु भक्ति के भाजन भगवान से सबोध "रामाकारता" है। निर्गुण की अपेक्षा सगुण की प्रमुखता का परिणाम ज्ञान की अपेक्षा भक्ति मार्ग की प्रमुखता है। कदाचित् मानस के लंकाकाण्ड में ये विचार नवीन नहीं और अरण्यकाण्ड में उन्हें विशेष स्थान प्राप्त हो चुका है (शरभंग, सुतीक्ष्ण, तथा अगस्त्य की कथा), पर यहाँ इन विचारों को अधिक सुस्पष्टतया तथा बलपूर्वक प्रस्तुत किया गया है। अद्वैत सिद्धांत का तार्किक खण्डन उत्तरकाण्ड में हुआ है जहाँ काग भुशुण्डि "सगुण" के प्रतिपादक के रूप में उपस्थित होता है।

इस लंकाकाण्ड में, काग भुशुण्डि तीन जगह प्रस्तुत-कर्ता के रूप में उपस्थित होता है यद्यपि इसका कोई कारण नहीं। पर अभी तक उसकी उपस्थिति क्षणिक है, और शिव ही प्रमुख प्रस्तुतकर्ता रहते हैं। इसके विपरीत उत्तरकाण्ड में, प्रस्तुतकर्ता के रूप में भुशुण्डि को प्रमुख स्थान प्राप्त होगा और वह शिव का स्थान लेगा। सुन्दरकाण्ड की तुलना में लंकाकाण्ड में विद्यमान पद्यव्यवस्था की अनियमितता भी उत्तरकाण्ड में क्रमशः बढ़ती जायगी। इस प्रकार विषय तथा आकार की दृष्टि से लंकाकाण्ड (विशेष कर उसका उत्तरार्द्ध) रामचरितमानस के प्रधान भाग तथा उत्तरकाण्ड के बीच संक्रामक है।

---

[१] वही ६, ६६, १-२।

[२] दे० प्रथम भाग, अध्याय ४, प्रतापभानुचरित पृ० ८३ इत्यादि।

अध्याय—१२

रामचरितमानस का उत्तरकाण्ड

(पूर्वार्ध, ७, १-५२)

लंकाकाण्ड से कुछ अधिक लम्बे, रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में १३० पद्य हैं। यह काण्ड कम एकाकार है और इसकी रचना भी विचित्र ढंग से हुई है—विभिन्न अंशों को केवल एक साथ जुटा के रख दिया गया प्रतीत होता है, क्योंकि उन में सन्धिभाव नहीं है। कुल मिलाकर पद्य व्यवस्था भी काफ़ी अनियमित है। पहले इकतीस पद्यों में रामकथा समाप्त हो जाती है। उन के बाद के तेईस पद्यों में एक प्रकार का सैद्धांतिक परिशिष्ट है। बावनवें पद्य में शिव-पार्वती का एक नया संवाद आरम्भ होता है जिसमें एक नई कथा प्रस्तुत है, जिसका प्रमुख नायक काक भुशुण्डि है। इसे मानस के उत्तरकाण्ड का उत्तरार्ध माना जा सकता है, और हम इसका अध्ययन अगले अध्याय में करेंगे।

उत्तरकाण्ड के पूर्वार्ध का कथासार

वन्दना—श्लोक १-२ : मित्रों सहित पुष्पक पर आरूढ़ राम के प्रति
३ : शिव के प्रति

अयोध्यानिवासी राम के प्रत्यागमन की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं। उन्हें आते न देखकर, भरत चिंतित होते हैं। पर राम के दूत हनुमान से सीता व राम के आगमन की सूचना और भरत के प्रति राम के अटूट स्नेह का आश्वासन पाकर वे शांत होते हैं। इस समाचार से अयोध्यानिवासी आनन्द से उनके अभिनन्दन की तय्यारियाँ करते हैं। भरत, भाई से मिलने के लिये जाते हैं (१-३)।

पुष्पक पर आरूढ़ आकाशमार्ग से यात्रा करते हुए राम अपने साथियों को मार्ग के सुन्दर दृश्यों की शोभा का वर्णन करते चलते हैं। पुष्पक अयोध्या के पास उतरता है। उतर कर, राम ऋषियों को प्रणाम करते हैं। भरत राम के चरणों की वन्दना करते हैं और राम उन्हें हृदय से लगा लेते हैं। सब उपस्थित ऋषि तथा राजकुमार परस्पर आलिंगन करते हैं। तब राम तथा उनका दल नगर की ओर चलता है, और कौशल्या तथा अन्य रानियाँ उनसे भेंट करने के लिये आगे बढ़ती हैं। वातावरण में हर्ष छा जाता है। राम कैकेयी को सान्त्वना देने जाते हैं और बाद में जब नगर में खुशियाँ मनाई जाती हैं तो राम अपने निवासस्थान में जाते हैं। ब्राह्मणों को बुला कर वशिष्ठ राम के राज्याभिषेक की आज्ञा देते हैं। राम तथा उनके साथियों को स्नान कराया जाता है और रानियाँ सीता को स्नान-

कराके श्रृङ्गार करती हैं। सीता के साथ राम सिंहासन पर बैठते हैं। हर्षित हो सब देवगण राम के गुण गान करने को उपस्थित होते हैं (४-१०)।

राम की कीर्ति के गान के लिये वेद भाटों का रूप धारण करते हैं। शिव भी राम की स्तुति गाते हैं। भुशुण्डि रामकथा के सुनने से उपलब्ध पुण्य का उपदेश गरुड़ से करता है (१२-१४)।

राम अपने साथियों को बुलाकर उनके सहयोग के लिये धन्यवाद कहते हैं और उन्हें उपहार देकर विदा करते हैं। अंगद रामके पास से जाना नहीं चाहता और वहीं रहने की प्रार्थना करता है। उसके स्नेह से राम प्रभावित होते हैं पर अपने ही अलंकारों का उपहार देकर उसे विदा कर देते हैं। वानर विदा हुए ही थे कि हनुमान सुग्रीव से राम के पास लौट आने की और वहीं कुछ दिन रहने की आज्ञा लेते हैं, और सुग्रीव उन्हें आज्ञा दे भी देता है। राम निषादपति गुह को बुलाकर विदा करते हैं और पुनः भेंट करने को निमंत्रित करते हैं (१५-२०)।

रामराज्य का वर्णन, रामराज्य के समय विश्व के सुख का वर्णन (२०-२३)।

अपनी सासों तथा पति के प्रति सीता का अपूर्व सेवाभाव। लव तथा कुश नामक राम के दो पुत्रों का जन्म। राम के प्रत्येक भाई के यहाँ भी दो पुत्रों का जन्म। हनुमान राम के भाइयों को प्रभु के पराक्रमों की कथा बताते हैं और इस कथा से सब ही नगरनिवासी अनन्दविभोर हो जाते हैं (२४-२६)।

नारद तथा सनत्कुमार का अयोध्या में आगमन। नगरी के सौन्दर्य का पुनः वर्णन (२७-३१)।

अपने भाइयों तथा हनुमान के साथ राम पास की वाटिका में भ्रमणार्थ जाते हैं और महामुनि (सनत्कुमार इत्यादि) भी वहाँ आजाते हैं। ऋषिगण अगस्त्य के पास आकर रुक जाते हैं और वे महामुनि उन सब को रामकथा सुनाते हैं। तब उनकी भेंट राम से होती है। वे उनसे विनम्रता से मिलते हैं और उन्हें बिठाते हैं। ऋषिगण राम की कीर्ति गाते हैं और भक्ति का वर मांगते हैं (३२-३५)।

चारों भाई हनुमान के साथ बैठे रह जाते हैं। हनुमान द्वारा प्रोत्साहित भरत, राम से "सन्तों के लक्षण" पूछते हैं। राम गुणों तथा दोषों की विवेचना करते हैं जिनके कारण सन्तों और दुर्जनों में भेद है। इस उपदेश को सुन कर सब लोग हर्षित होते हैं। फिर वे सब राजमहल में प्रवेश करते हैं। प्रतिदिन राम इसी प्रकार के कार्यक्रम में निरत रहते हैं। नारद स्वर्ग में जाकर ब्रह्मा को यह सारी कथा सुनाते हैं जिससे मुनिगण अत्यंत आनन्दित होते हैं (३६-४२)।

एक दिन राम सब ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा नगरवासियों को आमंत्रित करते हैं और उन्हें जीवन के उस पक्ष पर व्याख्यान देते हैं जिससे व्यक्ति मोक्ष पा जाता है। मानव-जीवन को परमसुख बताकर वे उससे लाभ उठाने का उपदेश करते हैं। सब से सरल और लाभप्रद साधन भक्तिमार्ग है। वे सब उनके चरणों पर नतमस्तक होते हैं और लौट जाते हैं (४३-४७)।

वशिष्ठ ऋषि राम के पास आते हैं और स्वीकार करते हैं कि बिना भक्ति, बुद्धि निरर्थक है; वे राम से प्रार्थना करते हैं कि जन्म जन्मान्तरों में भी मैं राम की भक्ति से कभी विमुख न होऊँ (४८-४९)।

राम अपनी प्रजा को घोड़े व हाथी बांटते हैं और अपने भाइयों तथा हनुमान के साथ स्वयं एक वाटिका में जाकर बैठते हैं। नारद वहाँ आकर उनकी स्तुति करते हैं और फिर ब्रह्मलोक को लौट जाते हैं। यहाँ पर शिव उमा को कथा समाप्त होने की सूचना देते हैं यद्यपि राम की कथाएँ अनन्त है। उन्होंने केवल वह सब कहा है "जो भुशुण्डि ने गरुड़ को बताया था" और उमासे पूछते हैं कि अब तुम और क्या सुनना चाहती हो (५०-५२)।

१—कथा की समाप्ति (७, १-३१)

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड के प्रथम बारह पद्यों में पिछले काण्ड का विस्तार ही है। इनका विषय वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड के अंतिम सर्गों ("ग" संस्करण, ६, १२६-१२८) तथा अध्यात्म रामायण के युद्धकाण्ड के अंतिमसर्ग के अनुरूप है—इन सर्गों में राम का अयोध्या में आगमन, भरत से मिलन, राज्याभिषेक तथा रामराज्य के सुख का वर्णन है। मानस के लंकाकाण्ड के अंत होते, राम का पुष्पक रथ अयोध्या के समीप तक आचुकता है और उत्तरकाण्ड के आरम्भ में राम के अभिनन्दन के लिये नगरनिवासियों की तय्यारियों का वर्णन होता है। मानस में कथा का इस प्रकार विभाजन अधिक युक्तिसंगत लगता है क्योंकि वह दृश्य तथा स्थल परिवर्तन के अनुकूल है—उत्तरकाण्ड के आरम्भ में दृश्यस्थल अयोध्या है जहाँ भरत बड़ी उत्सुकता से अपने भाई की वापसी की प्रतीक्षा कर रहे होते हैं।

पिछले काण्ड के समान, उत्तरकाण्ड के इन प्रारम्भिक पद्यों में भी प्रस्तुतकर्ता शिव हैं; पद्यव्यवस्था भी लगभग वैसी ही है—पद्यों में चार से लेकर आठ तक चौपाईयाँ और उनके साथ एक से लेकर तीन तक दोहे हैं। पर विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से, लंकाकाण्ड के अंत में और उत्तरकाण्ड के आरम्भ में एकसी बात नहीं है।

कथा के इस भाग में राम के भाई तथा महाभक्त भरत का महत्वपूर्ण स्थान है। तुलसी ने राम की प्रतीक्षा करते हुए और अपनी क्षुद्रता पर दुःख करते हुए भरत का चित्रण किया है, हनुमान उनके दुःख तथा पश्चात्ताप के भागी हैं—इस सन्दर्भ से अयोध्याकाण्ड के कई स्थलों का स्मरण हो आता है। इसी प्रकार, अयोध्या में राम तथा भरत के मिलन से उन दोनों के वन में मिलन की स्मृति हो आती है। अयोध्याकाण्ड (२, २४४, १-२) में अयोध्या के निवासियों के स्नेह के उत्तर में, अपनी चमत्कारिक शक्ति से राम असंख्य रूप प्रकट करके उन सब का एक साथ आलिंगन करते हैं; इस चमत्कारपूर्ण घटना का उत्तर काण्ड में पुनः सम्पादन हुआ है (७, ६, २-३)। साथ ही, अयोध्याकाण्ड (२, २४४, ४) के समान यहाँ (७, १०, १) भी राम कैकेयी के प्रति विशेष आदर दिखाते हैं और उसे वे ही सर्वप्रथम प्रणाम करते हैं। रामचरितमानस की सारी रचना सुडौल रहे इस चिन्ताका यह भाग एक नया उदाहरण है।

प्रथम ग्यारह पद्यों को शिव ने कहा है; परन्तु १२वें पद्य में भुशुण्डि अकस्मात् उपस्थित होकर गरुड़ को राज्याभिषेक का वर्णन सुनाता है; और यहाँ से लेकर शिव को अन्यपुरुष में संबोधित किया गया है—

> सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृंद।
> चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद॥[1]

यहीं से पद्यव्यवस्था में भी परिवर्तन हो जाता है। राम के प्रति देवताओं तथा ऋषियों की स्तुतियाँ, जिन की आवृत्ति भुशुण्डि गरुड के सम्मुख करता है, छन्दों में है। इन स्तुतियों पर अध्यात्म रामायण का कोई प्रभाव नहीं, बल्कि वे अध्याम रामायण में प्रतिपादित "अद्वैत" सिद्धांतों के

---

[1] रा. च. मा. ७, ११, दोहा ३।

स्पष्टतया विरुद्ध हैं। आपातत: यहाँ तुलसी ने किसी अन्य आधार का आश्रय लिया है—प्रस्तुतकर्ता के परिवर्तन के साथ ही प्रेरणा के स्रोत में भी परिवर्तन हुआ है।

इन स्तुतियों में से पहली वह है जिसको वेदों ने भाटों का रूप धारण कर कहा है। यह स्तुति अपेक्षाकृत कुछ लम्बी है, यह हरिगीति का छन्दमें है अर्थात् २४ पाद हैं। इसका सार निम्नवत्[1] है—

"१—वेद राम के सगुण-निर्गुण-रूप तथा "संजुक्त-शक्ति" की वन्दना करते हैं।

२—राम की माया के वशीभूत चराचर सब प्राणी संसार चक्रमें भटकते रहते हैं पर जिनपर राम की कृपादृष्टि होती है वे सब प्रकार के दुखों से मुक्त हो जाते हैं और जो राम का नाम भजते हैं वे बच जाते हैं।

३—ज्ञान के अभिमान में विशेष मतवाले, भक्ति का अनादर कर, देवदुर्लभ पद को तो पा सकते हैं पर अंतमें उस पद से नीचे गिर जाते हैं। और जो पूर्णतया राम का आश्रय लेते हैं वे सरलतया परमानन्द को प्राप्त करते हैं।

४—राम ही लक्ष्मीपति विष्णु, "मुकुन्द" हैं। शिव तथा ब्रह्मा द्वारा पूजित उनके चरणों में ध्वजा, वज्र, अंकुश और कमल के चिह्न हैं।

५—राम संसारवृक्षस्वरूप हैं—इस वृक्ष का मूल अव्यक्त है, इस के चार त्वचाएँ हैं, छ तने हैं, २५ शाखाएँ हैं और अनेकों पत्ते व बहुत से फूल हैं, इस के फल दो प्रकार के हैं—कड़वे तथा मीठे और इस वृक्ष पर आश्रित एक बेल है।

६—ब्रह्म, अजन्मी है, अद्वैत है, केवल, अनुभव से ही जाना जाता है, वह मन से परे है। परन्तु वेद-भाट प्रभु का सगुण यश गाना ही पसंद करते हैं और राम के चरणों में अनन्य भक्ति के प्रसाद पाने की प्रार्थना करते हैं।

संस्कृत (व तत्सम) शब्दों का निरन्तर प्रयोग इस स्तुति की विलक्षणता है जैसे पहले पांच छंदों में क्रियाएँ (नमामहे, स्मरामहे, भजामहे इत्यादि)। छटे छंद में ब्रह्म को "अजमद्वैतमनुभवगम्यम्" कहा गया है—शास्त्रीयता का यह सबोध प्रदर्शन है—तथाकथित ज्ञानियों के निरर्थक ज्ञान के सम्मुख कवि ने राम के भक्तों के सार्थक ज्ञानको प्रस्तुत किया है।

अत: यह कोई ऐसी वैसी स्तुति नहीं है, वस्तुत: यह श्रद्धा से अनुप्राणित है। जो व्यक्ति इस प्रकार की धारणा रखते हैं वे "अद्वैत" के विरोधी, सगुण ब्रह्म के पक्षपाती और भक्ति के अनुयायी हैं और इन के अनुसार भक्ति ही मोक्ष का परमप्रभावशाली साधन है। परन्तु यहाँ पात्र "वेद" हैं जिन्होंने मानवरूप धारण किया है। इस प्रकार का रूप-परिवर्तन मर्यादित है। ऐसा वर्णन करने से कवि का अभिप्राय केवल यही है कि "राम की भक्ति" ही श्रुतियों का सार है।

यह स्तुति स्पष्टतया वैष्णव है—राम लक्ष्मीपति हैं, ब्रह्मा व शिव उनकी स्तुति करते हैं और उन के पैरों मैं वे चिह्न हैं जिनका परम्परागत सम्बन्ध विष्णु से है। उन्हें मुकुन्द कह कर भी सम्बोधित किया गया है— यह विष्णु का विशेषण है जो वस्तुत: कृष्ण के लिये उपयुक्त होता है और मानस में कभी कभी[2] (बहुत ही कम) जैसे अत्रि की स्तुति में (३, ४), राम के विषय में भी प्रयुक्त

---

[1] रा. च. मा. ७, १३, १-६ छन्द।

[2] दे० १, १८६, छंद २ (ब्रह्मास्तुति); ६, १३ छंद ४ (देवताओं की स्तुति)।

हुआ है। यहाँ पर सीता को राम की शक्ति बताना अपवादमात्र है। इस स्तुति का आधार, भागवतपुराण से प्रभावित कोई वैष्णव ग्रन्थ रहा होगा। यहाँ प्रस्तुतकर्ता के रूप में भुशुण्डि के महत्व को देखते हुए यह कल्पना की जा सकती है कि यह वैष्णव ग्रन्थ कदाचित् भुशुण्डि रामायण हो।

वेदों के पश्चात् भुशुण्डि ही शिव को प्रस्तुत करता है—शिव राम को लक्ष्मीपति मानकर उनकी उपासना करते हैं और उनकी शरण लेते हैं। यह "शिवस्तुति", लंकाकाण्ड की ब्रह्मास्तुति के समान, तोटक छंद में है, और संस्कृत शब्दावली का प्रयोग इसकी भी विलक्षणता है—

जय राम रमारमनं समनं। भव ताप भयाकुल पाहि जनं।।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत मागत पाहि प्रभो।।[1]

इस स्तुति में शिव ने राम को "श्रीरंग"[2] भी कहा है, और यह 'रमारमन' का पर्याय है—विष्णु के ये दोनों विशेषण मानस में अन्यत्र कहीं भी प्रयुक्त नहीं हुए।

अध्यात्म रामायण में 'रामराज्याभिषेक' विषयक युद्धकाण्ड के १५ वें सर्ग में भी राम के प्रति शिव की एक स्तुति है और यहाँ पर राम को "आदि, अन्त और मध्य से रहित अद्वितीय परब्रह्म"[3] करके पूजा गया है। परन्तु इस रामायण की तथा मानस की स्तुति की शैली तथा सन्दर्भ इतना भिन्न है कि उससे परिग्रहण की कल्पना नहीं की जा सकती। मानस में वेद-भाटों की तथा शिव की स्तुतियाँ भुशुण्डि द्वारा उच्चरित निम्नलिखित उपसंहार का अभिन्न अंग हैं—

सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भव भय दावनी।।
महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका।।
जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं।।
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपति पुर जाहीं।।
सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति संपति नई।।
खगपति राम कथा मैं बरनी। स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी।।
बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहुँ सुंदर तरनी।।[4]

ऐसा प्रतीत होता है कि यह फलस्तुति सम्पूर्ण ग्रन्थ के लिये है। परन्तु कथा तो अभी समाप्त नहीं हुई। कथा जारी है और भुशुण्डि ही उसका प्रस्तुतकर्ता है।

राम अपने मित्रों को विदाई के उपहार तथा उपदेश देकर लौटा देते हैं। मानस के १५ वें से २० वें पद्यों का विषय वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड के १३१ वें सर्ग के बहुत कुछ अनुरूप है, यद्यपि मानस में राम द्वारा विदा देने का वर्णन कुछ भिन्न प्रकार से हुआ है—यहाँ प्रभु अपने मित्रों को अपार स्नेह का आश्वासन देते हैं और अपना ही भजन करने को कहते हैं—

---

[1] रा. च. मा. ७, १४ तोटक १।

[2] वही ७, १४, दोहा १।

[3] अध्यात्म रामायण ६, १५, ५१।

[4] रा. च. मा. ७, १५, १-४।

अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्ब गत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम ।।[1]

यहाँ हम राम को प्रथम बार अपनी दिव्यता की ओर संकेत करते पाते हैं, उन्होंने अन्यत्र कभी भी, अपने विषय में कुछ नहीं कहा। इस उत्तरकाण्ड में हम देखते हैं कि उनके देवत्व के सामने उनका कथा के नायक वाला स्वरूप लोप होने लगता है।

वाल्मीकि रामायण (६, १३१, ८१-८२) में, राम के दिये उपहारों से लदे वानर बड़े हर्षित होकर वापस लौटते हैं। इस के विपरीत, तुलसी के अनुसार कोई भी राम से दूर नहीं जाना चाहता और युवक अंगद तो राम के पास रहने की विनती ही करता है। उधर सुग्रीव के साथ लौटे हनुमान उस से पुन: अयोध्या वापस जाने की और राम के पास दस दिन अधिक रहने की आज्ञा पा लेते हैं। इस विषय में भुशुण्डि कहता है—

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि ।।[2]

हनुमान को लौटाकर उन्हें फिर से अपने पास वापस आने की आज्ञा देने में राम के विचार परिवर्तन को आगे की कथा से भली भाँति समझा जा सकता है—यहाँ तुलसीदास को बाद की कथा में हनुमान की उपस्थिति को तर्कसंगत करना था और साथ ही इस परम्परा का आदर भी करना था जिसके अनुसार राम के राज्याभिषेक के पश्चात् अन्य वानरों के साथ हनुमान भी लौट गए थे।

अध्यात्म रामायण (६, १६, १८ इत्यादि) में निषादपति गुह राम के राज्याभिषेक पर उपस्थित है और अभिषेक के पश्चात् उसे राम से "दिव्य आभूषण" भी प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार, मानस में भी, गुह राज्याभिषेक पर उपस्थित भी है और विदा होते समय उसे राम से उपहार भी मिलते हैं (७, २०, १-३)। पर दूसरी ओर वाल्मीकि रामायण (६, १३१, ८८ ८९) के विपरीत, भरत के युवराज बनने के विषय में मानस में कुछ नहीं कहा गया।

अगले दो पद्यों में (२०-२१), रामराज्य के समय में विश्व के सुख का वर्णन है ; इस सुख का कारण परिपूर्ण सदाचार है और इसका उपसंहार भुशुण्डि निम्नवत् करता है—

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।।
भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।।
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू।।
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी।।

---

[1] रा. च. मा. ७, १६ दोहा १।

[2] वही ७, १९, दोहा ३।

सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी।।
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला।।[1]

इस प्रकार, भुशुण्डि के लिये, राम की मायावी "लीला" भक्तों के मन में संदेह उत्पन्न करने पर भी ज्ञान की बाधक तो नहीं है ही, वह सुबुद्धि का "पुरस्कार" है। दूसरे शब्दों में कहना चाहिये कि सगुण ब्रह्म का (साक्षात्) दर्शन ही ज्ञान की चरम सीमा है। "काल, कर्म, सुभाव, गुन" की गणना के प्रयोग से उत्तरकाण्ड के उत्तरार्ध का सामीप्य व्यक्त होता है क्योंकि वहाँ ये शब्द कई बार प्रयुक्त हुए हैं।

उत्तरकाण्ड के २२ वें पद्य से भुशुण्डि का लोप हो जाता है और वह केवल ३१ वें पद्य में प्रस्तुतकर्ता के रूप में पुनः उपस्थित होता है। रामराज्य का वर्णन बराबर चलता रहता है या कहना चाहिये पुनः आरम्भ हो जाता है, पर यहाँ कथा की शैली तथा प्रवाह में परिवर्तन हो जाता है—यह दूसरा वर्णन सर्वथा मर्यादित है, और २२ वें पद्य की अंतिम अर्धाली तथा सम्पूर्ण २३ वें पद्य में सुवर्णिम युग का वर्णन है।

मानस के उत्तरकाण्ड के २४ वें से ३० वें पद्य में रामकथा का उपसंहार है और इनका विषय वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड से थोड़ा आगे निकल जाता है। अश्वमेध, अथवा अश्वमेधों (क्योंकि राम ने अनेकों ऐसे यज्ञ किये) का, और राम के पुत्र लव तथा कुश के जन्म का (७, २५, ३) संक्षिप्त उल्लेख है।[2] इसके विरुद्ध, सीता के द्वितीय बार परित्याग तथा वनवास (वा. रा. ७, ४३-४८) के विषय में तुलसी मौन हैं, बल्कि अध्यात्म रामायण (७, ४) में यह कथानक सुरक्षित है, यद्यपि इस ग्रन्थ के अनुसार उनका परित्याग स्पष्टतया मिथ्या है। तुलसीने ठीक ही किया, तो अध्मात्म रामायण की इस कथा का अनुकरण नहीं किया और राम की उदारता तथा कृपा के प्रतिकल इस प्रसंग को बोधपूर्वक दूर रखा।

यहाँ पर शिव प्रस्तुतकर्ता के रूप में उपस्थित होकर राजमहल में इन दम्पती के पावन तथा सदाचारी जीवन का वर्णन करते हैं। वर्णन में सीता को लक्ष्मी के तुल्य "रमा ब्रह्मादि बंदिता जगदंबा"[3] कहा गया है।

वाल्मीकि रामायण में उत्तरकाण्ड के प्रथमसर्ग में राम के महल में मुनियों के आगमन का वर्णन है। पर तुलसीदास ने इन महापुरुषों की पूरी सूची न देकर केवल इतना कहा है—

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा।।
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं[4]।।

इस उल्लेख के पश्चात्, तीन पद्यों (२७, २८, २९) में अयोध्या के भव्य सौन्दर्य का वर्णन है। इन में से प्रत्येक में चौथी चौपाई तथा दोहे के बीच एक हरिगीतिका छंद है। पद्यों की यही

---

[1] रा. च. मा. ७, २१ दो०; २२, १-३।

[2] वही ७, २४, १ "कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे"।

[3] वही ७, २४, ५।

[4] वही ७, २७, १।

व्यवस्था बालकाण्ड में शिवपार्वती के तथा राम-सीता विवाह के वर्णन में थी। इस वर्णन के अंत में अयोध्यानिवासियों द्वारा प्रस्तुत राम की स्तुति है जहाँ उन्हें सब का स्वामी, रक्षक, त्राता और "तुलसीदास के प्रभुहि उदारहि"[1] कहा गया है।

उत्तरकाण्ड के ३१ वें पद्य में, भुशुण्डि पुन: प्रस्तुतकर्ता के रूप में उपस्थित होता है और साथ ही शैली भी दार्शनिक रूपकों से पूर्ण हो जाती है—

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका॥
जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥
धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना॥[2]

भुशुण्डि के इस उपदेश से, पम्पासर के तट पर (३, ४४) नारद को दिये राम के उपदेश का स्मरण होता है—यहाँ और वहाँ आधार एक ही प्रतीत होता है।[3]

मानस में यहाँ रामकथा की समाप्ति हो जाती है। अवशिष्ट उत्तरकाण्ड इस कथा के बाहर का विषय है।

उत्तरकाण्ड के इन प्रारम्भिक ३१ पद्यों में लंकाकाण्ड की कथा का विस्तार है, वहाँ शिव प्रमुख प्रस्तुतकर्ता थे व भुशुण्डि की उपस्थिति क्षणिक थी। इसके विरुद्ध, यहाँ लगभग दस पद्यों (१२-२२) के एक लम्बे टुकड़े में प्रस्तुतकर्ता भुशुण्डि है और पहली बार वह शिव की ओर संकेत किये बिना रामकथा के प्रस्तुतकर्ता के रूप में उपस्थित होता है (७, १५, ३)। पर इस लम्बे अंश का प्रसंग से सम्बन्ध ठीक नहीं जमता। पन्द्रहवें पद्य की फलस्तुति अस्थानिक लगती है और २२ वें तथा २३ वें पद्य का विषय एक होने से पुनरावृत्ति है। सम्भवत: यह अंश किसी साम्प्रदायिक ग्रन्थ से—कदाचित् भुशुण्डि रामायण से—लिया गया है और शिव द्वारा बताई कथा में चपेक दिया गया क्योंकि वे ही वहाँ प्रमुख प्रस्तुतकर्ता हैं। ३१ वाँ पद्य भी इसी आधार से लिया प्रतीत होता है। इतना तो निश्चय है कि शिव ही रामकथा के प्रमुख प्रस्तुतकर्ता हैं, उनकी यह प्रधानता आगामी बीस पद्यों (३२-५२) से अधिक पुष्ट हो जाती है क्योंकि ये पद्य एक प्रकार का सैद्धांतिक परिशिष्ट बनाते हैं। द्रष्टव्य यह है कि अभी तक, शिव-पार्वती तथा भुशुण्डि-गरुड़ संवाद में कोई सम्बन्ध व्यक्त नहीं होता, यह अंतिम संवाद पहले संवाद के अंतर्गत आता है पर एक प्रकार से उससे पृथक् रहता है।

---

[1] रा. च. मा. ७, ३०, ५।

[2] वही ७, ३१, १-४।

[3] दे० राम-नारद संवाद अध्याय ८ पृ० १९९ इत्यादि।

२—राम कथा का सैद्धांतिक परिशिष्ट—(३२-५२)

एक छोटे से अपवाद को छोड़कर, अगले बीस पद्य नियमित हैं अर्थात् प्रत्येक पद्य में चार चौपाइयाँ और एक दोहा (दस अर्धालियाँ) हैं। यहाँ भुशुण्डि उपस्थित नहीं होता, केवल शिव ही पार्वती को सम्बोधित करके विषय प्रस्तुत करते हैं। ३५वें पद्य में (इस में १० के स्थान पर ११ अर्धालियाँ हैं) तुलसीदास का नाम भी आया है, ठीक वैसे ही जैसे प्रत्येक काण्ड की समाप्ति के हरिगीतिका छंद में।

बालकाण्ड के शिव-पार्वती संवाद में, जिसे, रामकथा की प्रमुख भूमिका कहना ठीक होगा, पार्वती ने शिव से आध्यात्मिक समस्याओं के विषय में अतिरिक्त व्याख्या प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की थी—

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी ॥[1]

उत्तरकाण्ड के प्रस्तुत पद्यों में पार्वतीके इन प्रश्नों का उत्तर मिलता है। मानस के इस भाग में, राम संतों अर्थात् भलों के विलक्षण गुणों की तथा मोक्षमार्ग की विवेचना करते हैं और शिव उनके उपदेशों को पार्वती को बताते हैं। राम से वार्तालाप करनेवालों में उनके तीन भाई तथा वानर हनुमान हैं। राम के अन्य साथी तो अयोध्या से जा चुके हैं व सीता अन्तःपुर में चली गईं और वहाँ वे अपनी सासों की सेवा पूजा में लगी हैं।

बालकाण्ड के ४८ वें पद्य के समान, उत्तरकाण्ड के ३२ वें पद्य की चौथी चौपाई में भी, अगस्त्य मुनि को रामकथा का प्रस्तुतकर्ता बताया गया है। उनकी बताई कथा ब्रह्मा के चार पुत्र, सनत्कुमार और उनके भाई सुनते हैं। ये सब, अगस्त्य तथा नारद राम के महाभक्त[2] हैं। वे सब राम को सगुण तथा निर्गुण ब्रह्म मानते हैं[3] और 'इंदिरा रमन' तथा 'सोभाकर' करके पूजते हैं।

अपने साथियों को दिये राम के प्रथम उपदेश का विषय "संतों तथा असंतों के लक्षण हैं (७, ३७, ३ इत्यादि)। अरण्यकाण्ड में भी नारद के एक प्रश्न के उत्तर में उन्हों ने संतों तथा असंतों के लक्षणों का विवेचन किया था (३, ४५, ४ इत्यादि)। दोनों ही स्थानों पर स्वयं राम ही उपदेश देते हैं और विषयसार भी एकसमान है[4]। संभव है कि दोनों ही भागों का विषय किसी एक ही आधार से लिया गया हो।

प्रस्तुतकर्ता ने रामचरित कहने के नारद के और उसको सुनने के सनत्कुमार के उत्साह को सराहा है—

सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं ॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी ॥

---

[1] रा. च. मा. १, १११, १, दे० अध्याय ३ पृ० ५९।

[2] भक्तमाल में सनकादि (सनक तथा उनके भाई) की गणना राम के १२ महाभक्तों में हुई है। देखो ग्रियर्सन-ग्लीनिंग्स—ज. रा. ए. सो १९०९ पृ० ६३७। वे भागवतपुराण के वाचक भी हैं।

[3] रा. च. मा. ७, ३४, २ "जय निर्गुन जयजय गुनसागर"।

[4] दे० अध्याय ८, पृ० २००।

जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान ।
जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान ।। [1]

सनत्कुमार तथा उनके भाइयों का उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि "निर्गुण" में आसक्ति होना प्रभु राम की उपासना के प्रतिकूल नहीं, तथा जीवन्मुक्त की अवस्था परम आनन्द की अवस्था नहीं है, न ही वह उस सुख के तुल्य है जो राम के भक्त उनके साकार रूप का दर्शन करके अनुभव करते हैं।

हरे भरे वातावरण में अपने साथियों को दिये राम के इस उपदेश के बाद एक और उपदेश आता है जो इससे अधिक लम्बा तथा अधिक गम्भीर है। इसमें प्रभु सारे ही नगर को—वृद्धों, मुनियों, ब्राह्मणों और क्षत्रियों को—परमसुखदायक भक्तिमार्ग का रहस्य बताते हैं।

सम्पूर्ण पावन जीवन की सर्वप्रथम शर्त अथवा प्रस्थानबिन्दु मानवजीवन है—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ।।

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ ।। [2]

इन्द्रियों के विषयों का उपयोग इस जीवन का ध्येय नहीं है; जो लोग इन्द्रियों के विषयों में मन लगाते हैं वे मूर्ख हैं व "काल कर्म सुभाव गुन" के वशीभूत होते हैं। मानव शरीर, कर्मों का नहीं, दिव्यकृपा का परिणाम है।

कबहुँक करि करुना नर देही । देत ईस बिनु हेतु सनेही ।।
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो । सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ।। [3]

राम से प्रेम करना और उनकी सेवा में तत्पर रहना, बस यही सुख का रहस्य है। ज्ञान तथा तप जैसे मोक्ष के, अन्य मर्यादित पन्थों का भी लक्ष्य यदि भक्ति नहीं है, तो राम उन्हें दूर कर देते हैं। दूसरी ओर राम यह भी कहते हैं कि सत्संगति तथा सुकर्म मोक्ष के लिये सामान्यतया अनिवार्य हैं। क्योंकि—

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी । बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ।।
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता । [4]

सब से अधिक पुण्य—और राम के अनुसार तो एकमात्र पुण्य—"ब्राह्मणों की विनम्र सेवा तथा उनके प्रति असीम सेवाभाव" है। तथा शिव की पूजा के बिना भी वास्तविक भक्ति सम्भव नहीं। यह

---

[1] रा. च. मा. ७, ४२, ४ व दोहा ।
[2] वही ७, ४३, ४ व दोहा ।
[3] वही, ७, ४४, ३-४ ।
[4] वही, ७, ४५, ३ ।

एक रहस्य है—

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥[1]

इस प्रकार भक्ति के मार्ग का लक्षण बताया गया है और वहाँ सब ही पहुंच सकते हैं—

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥[2]

अन्त में, राम सच्चे भक्त के सुख का वर्णन करते हैं क्योंकि वह मानहीन पापहीन और क्रोधहीन होकर 'राम के गुणों के सारभूत,' उनके नाम के भजन में निरन्तर व्यापृत रहता है[3]।

उपर्युक्त महत्वपूर्ण व्याख्यान, जहाँ रामने स्वयं मोक्ष का मार्ग बताया है, अध्यात्मरामायण के अंत में (७, ५) स्थित "रामगीता" के अनुरूप है। यह "रामगीता" स्वयं प्रसिद्ध भगवद्गीता से प्रेरित है, वहाँ कृष्ण ने अर्जुन को मोक्ष-मार्ग का उपदेश दिया है। अध्यात्मरामायण में इधर उधर बिखरे दार्शनिक तथा धार्मिक सिद्धांतो का क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक सार इस "रामगीता" में निहित है। स्वयं प्रभु के मुख से इन सिद्धांतों का प्रतिपादन कराने से उनकी प्रामाणिकता भी अधिक निर्विवाद हो जाती है। रामचरितमानस की रामगीता का भी यही उद्देश्य प्रतीत होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अध्यात्मरामायण तथा मानस की रामगीताओं में समानता तो निश्चित है पर उनके विषय सर्वथा भिन्न हैं।

अध्यात्मरामायण (७, ५) में राम वेदांत के मोक्षविषयक सिद्धांत की विवेचना करते हैं—अहम् की पवित्रता के लिये भक्ति भावना से पार्थिव कर्तव्य का निर्वाह; अनुभवी गुरू के निर्देशन में "तत्त्वमसि" के महान् वेदान्तिक मंत्र का अध्ययन; निरन्तर ध्यान की सहायता से इस मंत्र के अर्थ का अनुभव; इन्द्रियों तथा मन को विरक्त करने के पश्चात् आत्मा में उनकी तल्लीनता जिससे मायावी जगत् का लोप हो जाय; तथा, अन्त में, जीवात्मा का परमात्मा अर्थात् राम में समावेश,—ये सब मोक्षमार्ग के विभिन्न चरण हैं।

सगुण देव की भक्ति, जीव तथा ब्रह्म के तादात्म्य के ज्ञान प्राप्त करने का साधनमात्र है'। अधिक से अधिक, यह स्वयं भी अनावश्यक हो सकती है क्योंकि केवल ज्ञान से भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

वेदांत के सिद्धांत की विवेचना न होकर मानस की रामगीता सर्वोत्तम मार्ग, भक्तिमार्ग के पक्ष की प्रतिपादक है। यहाँ भक्ति के समक्ष ज्ञान गौण है, क्योंकि ज्ञान तो भक्ति प्राप्त करने का साधनमात्र है। भक्ति से ज्ञान का लोप नहीं होता पर उसकी आवश्यकता नहीं रहती। और भक्ति

---

[1] रा. च. मा, ७, ४५ दोहा।

[2] वही ७, ४६, १-२।

[3] वही ७, ४६ दोहा।

वास्तव में प्रभु का एक दान है जिस को प्राप्त करने के लिये सुकर्म करने चाहिए और इस के लिये संतों की संगति तथा शिव का ध्यान करने से सहायता मिलती है। पुनर्जन्म के निरन्तर चक्र में बंधा हुआ व्यक्ति प्रभु राम की कृपा से मुक्त हो जाता है और वे ही उसे सचेत करते और सुरक्षित रखते हैं—प्रभु का सहयोग आवश्यक है। मानव जन्म, जीव का ऐसा वैसा ‘अवतार’ नहीं, वह वास्तव में मोक्ष का पहला चरण है—सम्पूर्ण दिव्यदानों में से सब से अधिक अमूल्य। इस प्रकार नैतिक गुण, भक्ति के लिये आवश्यक भी हैं और उसका फलभी हैं। इस भक्ति का प्राण प्रभु राम पर सम्पूर्ण विश्वास रखना हैं। यहाँ पर शिव के सहयोग का प्रसंग ठीक नहीं बैठता—कदाचित् इसी लिये तुलसी ने इसे “गुप्त” रहस्य कहा है।

इस प्रकार सगुण का प्रतिपादन करके, तुलसीदास मर्यादा से दूर नहीं होते। इस व्याख्यान में उन्हों ने श्रुतियों को कई बार प्रमाण माना है। ब्राह्मणों की पूजा के आदेश से कवि का ‘धर्म’ के प्रति आदर भाव सुव्यक्त है क्योंकि ब्राह्मणों की सेवा को “सब से महान् पुण्य” कहा गया है।

और सब से अधिक आदरणीय ब्राह्मण ऋषि वशिष्ठ ही राम के भक्ति मार्ग के उपदेश को पूरा करते हैं। सर्वप्रथम वे रघुकुल के पुरोहित होने की क्षमा मांगते हैं—

उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा।।
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगें सुत तोही।।
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा।।[1]

और राम के गुरु के विचार में योग, यज्ञ, औ व्रत तथा ज्ञान और यहाँ तक कि ब्राह्मणोचित वेदों का, अध्ययन भी, राम की भक्तिरूपी परमसुख के साधनमात्र हैं। इस प्रकार की भाषा और वह भी ऐसे ऋषि के मुख से उच्चरित कुछ विचित्र सी लगती है, पर उनकी प्रार्थना तो इससे भी अधिक विचित्र है—

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु।।[2]

अत: हम देखते हैं कि वशिष्ठ जीवन्मुक्त नहीं हैं और न उन्हें मुक्ति की चिंता है। यदि राम का प्रेम बना रहे तो पुनर्जन्म भी उनके लिये बराबर है। यहाँ ज्ञान के स्थान पर भक्ति को अधिक अच्छा ही नहीं समझा गया परन्तु उसे एक अंतिम सुख बताया है—एक ऐसा सुख जिसकी इच्छा सब प्राणियों और ऋषियों—जिन में से वसिष्ठ भी हैं—को करनी चाहिए।

वशिष्ठ के इस भाषण के पश्चात् नारद राम की कीर्ति गाते हैं। इस ‘नारद स्तुति’ की अंतिम अर्धाली में तुलसीदास का नाम भी आया है—

---

[1] रा. च. मा. ७, ४८, ३-४।

[2] वही ७, ४९ दोहा।

कलि मल मथन नाम ममताहन । तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत ज्ञान ।।[1]

यहाँ शिव उमा से कहते हैं कि उनकी कथा समाप्त हुई । तत्पश्चात् वे इस कथा के गुणों का बखान करते हैं—

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा । मैं सब कही मोरि मति जथा ।।
राम चरित सत कोटि अपारा । श्रुति सारदा न बरनै पारा ।।
राम अनंत अनंत गुनानी । जन्म कर्म अनंत नामानी ।।
जल सीकर महि रज गनि जाहीं । रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ।।
बिमल कथा हरि पद दायनी । भगति होइ सुनि अनपायनी ।।[2]

उत्तरकाण्ड के ५२ वें पद्य में शिव का यह उपसंहार उन्हीं शिव के बालकाण्ड के १२० वें पद्य के तीसरे सोरठे में दिये वचनों से संपूर्णतया सम्बन्धित है—

हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित ।
मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु ।।

इन दोनों स्थलों का सम्बन्ध निश्चित है—बालकाण्ड के १२० वें पद्य के पहले सोरठे में शिव ने पहली बार रामचरितमानस के पूर्ववर्ती प्रस्तुतकर्ता भुशुण्डिकी ओर संकेत किया है—

सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल ।
कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़ ।।

इसी प्रकार, मानस के उत्तरकाण्ड (७, ५२, ३) में शिव पार्वती से कहते हैं—

उमा कहिउँ सब कथा सुहाई । जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई ।।

बालकाण्ड के १२० वें पद्य के दूसरे सोरठे में शिव ने पार्वती को वचन दिया था कि "यह काक भुशुण्डि-गरुड़ का संवाद जिस प्रकार हुआ उसको मैं आगे कहूँगा ।"

इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के ५३ वें पद्य में पार्वती शिव से काक भुशुण्डि के विषय में पूछती हैं कि वह कौन है, और कैसी परिस्थितिमें उसने गरुड़ से संवाद किया । इस प्रकार वे शिव द्वारा कथित भुशुण्डिकथा की स्थापना करती हैं ।

पर जैसा कि हमने बताने का ऊपर[3] प्रयत्न किया है, ये तीनों सोरठे बालकाण्ड के १२० वें पद्य में बाद में जोड़े गये और जोड़ने की आवश्यकता इसलिये हुई कि उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध की या तो भूमिका बांधनी थी या उसको युक्तिसंगत बताना था क्योंकि उत्तरकाण्ड के इस भाग में भुशुण्डि ही रामचरितमानस के प्रस्तुतकर्ता के रूप में उपस्थित होता है ।

---

[1] रा. च. मा. ७, ५१, ५ ।

[2] वही ७, ५२, १-३ ।

[3] दे० अध्याय ३, पृ० ५८-५९ ।

अध्याय—१३

रामचरितमानस का उत्तरकाण्ड—उत्तरार्द्ध

(७, ५३–१३०)

बालकाण्ड के प्रथम भाग (१, १-१८४) के समान, रामचरितमानस वे उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध में भी वाल्मीकी के तथा अध्यात्मरामायण का कोई प्रभाव नहीं है। इस का मुख्य रामकथा से भी कोई सम्बन्ध नहीं। इस भाग का नायक भक्त काग भुशुण्डि है। शिव अप्रत्यक्ष प्रस्तुतकर्ता हैं, वे पार्वती के लिये भुशुण्डि-गरुड़ का संवाद प्रस्तुतकरते हैं ; इस संवाद के अंतर्गत एक नई ' रामायण ' की कथा बताई गई है। केवल बिल्कुल अंत के पद्यों (७, १२६-१३०) में ही शिव के वचनों द्वारा रामचरितमानस की समाप्ति होती है।

कविता के इस अंतिम भाग में, पद्यव्यवस्था अत्यधिक अनियमित है। पद्यों में चौपाइयों, दोहों तथा सोरठों की संख्या विषम है और सब ही पद्यों में अर्धालियों की संख्या दस से प्राय: सदा ही अधिक है। "भुशुण्डिचरित" (७, १०६-१२५) में कई पद्यों में २४ और उससे भी अधिक अर्धालियाँ हैं, १२१ वें पद्य में ४१ अर्धालियाँ हैं। इस के विपरीत, कविता के उपसंहार के अंतिम पद्य (१२६-१३०) नियमित हैं।

उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध का सारांश

शिव को बताई कथा को सुनकर उमा सुखी होती हैं; वे यह जानना चाहती हैं कि एक काग राम का परम भक्त कैसे हो गया ; उसने यह कथा कहाँ सुनी; और शिव ने उसे कैसे सुना; इस काग की कथा सुनने के लिये गरुड़ ने संतों की संगति को कैसे छोड़ा; और उनके संवाद का विषय क्या था। इन सब प्रश्नों को सुनकर शिव बहुत हर्षित होते हैं और पार्वती को इन प्रश्नों का उत्तर देने का वचन देते हैं (५३-५५)।

शिव पार्वती को बताते हैं कि उन्हों वे भुशुण्डि-गरुड़ संवाद को कैसे सुनी—अपनी पत्नी सती (भावी पार्वती) की मृत्यु के पश्चात् वे सन्यासी हो कर घूमते फिरते थे। एक दिन वे हिमालय की एक चोटी पर पहुंचे, जहाँ हरि के भक्त काग का निवासस्थान था, वहाँ पक्षियों के झुंड उससे हरि की कथा सुनने को आये हुए थे। तब शिव ने हंस का रूप धारण किया, वे उन में मिल गये और हरि के गुणों को सुनकर वे कैलाश को लौट आये (५६-५७)।

इसके बाद शिव बताते हैं कि भुशुण्डि के पास गरुड़ किस प्रकार पहुंचा—लंका के युद्ध क्षेत्र में, नारद द्वारा भेजे गये गरुड़ ने इन साँपों को खाना आरम्भ कर दिया जो राम को बांधे हुए थे (इस

समय राम मेघनाद के वश में हो गए थे)। इस प्रकार गरुड़ ने राम को मुक्त तो किया, पर यह देख कर कि मेघनाद ने राम को इतना बलहीन करदिया, उसे चिंता हुई और राम की दिव्यता में सन्देह होने लगा। इस विषय में उसने नारद से बात की, पर उन्हों ने शीघ्र समझ लिया कि गरुड़ राम की माया के वश में है और उसे शिव के पास भेजा। शिव ने उसे राम की कथा सुनने का उपदेश दिया और ऐसा करने के लिये उससे भुशुण्डि के पास जाने को कहा (५६-६२)।

तब गरुड़ भुशुण्डि के निवासस्थान पर पहुँचा। इस स्थान के दर्शन मात्र से उसके सब सन्देह दूर हो गए। भुशुण्डि के उससे वहाँ आनेके कारण पूछने पर गरुड़ उसे उत्तर देता है कि वह रामकथा सुनना चाहता है (६३-६४)।

भुशुण्डि गरुड़ की रामकथा सुनाता है। रामचरितमानस की प्रमुख घटनाओं की गणना (६५-६८)।

भुशुण्डि के कथा समाप्त करने पर गरुड़ बताता है कि उसके सन्देह दूर होगये। वह भुशुण्डि को बधाई देता है। भुशुण्डि समझाता है कि गरुड़ के सन्देह वास्तविक नहीं थे—वस्तुतः सभी महामुनि इस माया के वश में हो चुके हैं और सभीने कोई न कोई अपराध किया है। तब भुशुण्डि दिव्य माया की विवेचना करता है—इस माया की शक्ति सारे संसार में व्याप्त है पर वह स्वयं राम के अधीन है। राम ही परमब्रह्म है और "लीला" से उन्हों ने अपने भक्तों के कल्याण के लिये अवतार लिया है, वे स्वभाव परिवर्तित किये बिना ही मानवरूप धारण करते हैं। इन तथ्यों का विशदीकरण करने के लिये भुशुण्डि गरुड़ को आत्मकथा बताता हैं कि राम ने उसके सन्देहों को किस प्रकार नष्ट किया (६९-७४)।

भुशुण्डि बाल-राम की भक्त है। प्रत्येक राम अवतार के समय वह प्रभु की बाल-लीला का दर्शन करने अयोध्या जाता है और अपने कौए के रूप में स्वयं भी इस लीला में भाग लेता है। बाल-राम के सौन्दर्य का वर्णन (७५-७७)।

एक दिन जब वह राम के साथ खेल रहा था तो राम को साधारण शिशु के समान व्यवहार करते हुए देख उसके मन में सन्देह उत्पन्न हुआ। राम का भक्त होने पर भी वह माया के वश में होगया—पर केवल राम ही चराचर की रक्षा कर सकते हैं (७७-७८)।

भुशुण्डि के मोह पर राम मुस्कराए और उसके मोह को दूर करने के लिये स्वयं ही तत्पर हो गये। जब भुशुण्डि उड़ने लगा तो बाल राम की एक भुजा उसका पीछा करती रही। काग ब्रह्मलोक तक उड़ गया पर राम की भुजा उसके पीछे पीछे ही चलती रही। इस पर भयभीत होकर उसने आंखें बंद की तो अपने को अयोध्या में पहुंची व बाल राम को खिल खिलाकर हँसते पाया। वह स्वयं उनके मुख में प्रवेश कर गया और पेट तक उतर गया जहाँ उसने अनेकों लोकों का दर्शन किया। वहाँ पर वह सौ वर्ष तक रहा और असंख्य विश्वों की यात्रा की। सर्वत्र राम ही दिखाई दिये। भुशुण्डि के आश्चर्य से राम को फिर हंसी छूटी और काग उनके मुख से बाहर आगया। उसने पुनः राम के साथ खेलना आरम्भ कर दिया (७८-८२)।

इस दर्शन से व्याकुल होकर, भुशुण्डि राम के सम्मुख नतमस्तक हो गया। राम न उसके मोह को नष्ट कर दिया और उसे एक वर देने को कहा। भुशुण्डि ने भक्ति की याचना की और राम ने उसकी यह याचना पूर्ण कर दी तथा माया से उद्भूत भ्रमों से मुक्त कर दिया (८३-८५)।

तब राम ने भुशुण्डि को प्रिय वस्तुओं का रहस्य उद्घाटित किया—वे सब प्राणियों को प्रेम करते हैं, पर मनुष्यों को सब से अधिक, और उतनें भी भक्तजन उन्हें सर्वाधिक प्रिय हैं क्योंकि भक्ति का ही सब से अधिक मूल्य है (८६-८७)।

रामने अपनी बाललीला पुन: आरम्भ की। भुशुण्डि कुछ दिन तक अयोध्या में रहा और फिर अपने आश्रम में लौट आया। भुशुण्डि की इस कथा ने गरुड़ को सचेत कर दिया—राम की कृपासे ही भक्ति होती है और उसी से सब कुछ प्राप्त होता है। तब भुशुण्डि गरुड़ से राम के सौन्दर्य, प्रताप तथा शक्ति का वर्णन करता है। और राम की निरन्तर भक्ति करने के लिये उपदेश देकर यह कथा समाप्त करता हैं (८८-९२)।

भुशुण्डि के सम्मुख गरुड़ नतमस्तक होता है और उसकी महिमा गाने लगता है। तत्पश्चात् वह भुशुण्डि से कई प्रश्न करता है—एक महासंत होने पर भी उसने काग का अपवित्र शरीर क्यों पाया? उसने राम की कथा कहाँ सुनी? प्रत्येक कल्प के अंत में विश्वप्रलय होने पर वह कैसे बच जाता है? भुशुण्डि के आश्रम के पास आते ही गरुड़ के सन्देह नष्ट क्यों होने लगे? (९३-९४)।

इस के उत्तर में भुशुण्डि कहता है कि राम की भक्ति सर्वोत्तम सम्पत्ति है। यह सुख उसे कौए के रूप में ही प्राप्त हुआ, इसी लिये उसे यह रूप अधिक प्रिय है। वह जब चाहे मर सकता है पर बिना शरीर के वह प्रभु की प्रार्थना नहीं कर सकता। जन्म जन्मांतरों में उसने मुक्ति का विभिन्न पथों को आज़माया, परन्तु वह कभी इतना सुखी नहीं रहा जितना कि इस कागशरीर में। तदुपरांत काग भुशुण्डि गरुड़ को अपने एक पूर्वजन्म की कथा बताता है (९५-९६)।

यह कथा एक कल्प में कलियुग की है—भुशुण्डि शूद्र घर में उत्पन्न हुआ, वह शिव का भक्त था और अन्य सब देवताओं की अवहेलना करता था, स्वयं वह गर्व युक्त था। इस कलियुग के दुराचार का विस्तृत वर्णन। इस युग में मोक्ष की एक मात्र साधन राम का नाम ही है (९६-१०४)।

शूद्र भुशुण्डि उज्जैन गया और उसने राम की पूजा करने का संकल्प किया। उसका गुरु एक शिवभक्त पर विष्णु का आदर करनेवाला वैदिक ब्राह्मण था। भुशुण्डि कट्टर शैव था और गुरु के उपदेश देने पर भी वह वैष्णवों का बहिष्कार करता था। एक दिन वह अपने गुरु तक का निरादर कर बैठा, तब उस अपराधी को दण्ड देने के लिये स्वयं-शिव प्रकट हुए और उसे सर्प बना दिया। गुरु के बीच में पड़ने पर शिव ने कहा कि यह दण्ड आजन्म नहीं रहेगा और भुशुण्डि राम का भक्त होगा (१०५-१०९)।

शिव का कथन घटित हुआ। भुशुण्डि सर्प में परिवर्तित होगया और कई जन्म लेता रहा। पर हर जन्म में वह हरि में मग्न रहता। तब अन्त में वह एक ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न हुआ और बाल्यकाल से ही हरि पर मुग्ध रहने लगा। वन में रहता और प्रभुके पद के विषय में ऋषियों से पूछता—वे लोग यही उत्तर देते कि वे सर्वव्यापक हैं। पर इस उत्तर से भुशुण्डि को संतोष नहीं हुआ (११०)।

मेरुपर्वत की एक चोटी पर भुशुण्डि ने लोमश ऋषि से भेंट की और उनसे “सगुण” ब्रह्मा की पूजा की विधि पूछी। उत्तर में लोमश ने “निर्गुण” की विवेचना की और अवतारों के सिद्धांत का खण्डन किया। भुशुण्डि ने उन से वादविवाद किया और अपने दृष्टिकोण का सबल मण्डन किया, जिससे ऋषि क्रुद्ध होगये और उन्होंने उसे काग में परिवर्तित कर दिया। इस शरीर परिवर्तन से भुशुण्डि हताश नहीं हुआ और बड़े आनन्द से उड़ गया। तब राम ने लोमश के मोह का

नाश कर दिया—तुरंत ऋषि लोमश ने पश्चात्ताप किया और भुशुण्डि को अपने पास बुलाकर उसे रामनाम का मंत्र बताया तथा दिव्य बालक का ध्यान करने की विधि समझाई। उन्हों ने रामचरितमानस की कथा भी बताई और इस कथा को किसी ऐसे व्यक्ति के सम्मुख दोहराने को मना किया जो राम में रत न हो। तब से भुशुण्डि हरि का परम भक्त और महान् संत होगया। विदा लेकर काग ने हिमालयपर्वत पर स्थित एक आश्रम में निवास बनाया (१११-११४)।

भुशुण्डि गरुड़ से कहता है कि उसे इस स्थान पर रहते और राम का भजन करते २७ कल्प बीत गए। प्रत्येक रामावतार के अवसर पर वह अयोध्या जाता है और प्रभु की बाललीला देखकर हर्षित होता है। इस प्रकार भुशुण्डि ने गरुड़ के सभी प्रश्नों का उत्तर दे दिया और कहा कि यदि उसे इस काग शरीर से प्रेम है तो इसलिये कि इसी शरीर में उसे प्रभु के दर्शन का प्रसाद प्राप्त हुआ। वह गरुड़ से भी राम की भक्ति करने का उपदेश करता है (११४-११५)।

भुशुण्डि का धन्यवाद कहकर गरुड़ एक प्रश्न और पूछता है—ज्ञान तथा भक्ति में क्या भेद है? इसके उत्तर में भुशुण्डि कहता है कि भक्ति राम की प्रियतमा है और माया का उससे भय है। माया के वश में होकर जीवात्मा भक्ति के द्वारा ही मुक्त होता है। ज्ञान को प्राप्त करना बहुत कठिन है और ज्ञानमार्ग प्राय: अव्यवहार्य है (११५-११९)।

भक्ति की प्रशंसा (१२०)।

गरुड़ पुन: सात प्रश्न करता है। १—सब से दुर्लभ "शरीर" कौन सा है?, २—सब से बड़ा दु:ख कौन सा है? ३—सब से बड़ा सुख कौन सा है? ४—संतों के सहज गुण क्या हैं? ५—असंतों के लक्षण क्या हैं? ६—सब से महान् पुण्य कौन सा है? ७—सब से महान् भयंकर पाप कौन सा है? इन सब प्रश्नों का उत्तर देकर भुशुण्डि इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि हरि की भक्ति के बिना सुख नहीं है (१२१-१२२)।

भुशुण्डि गरुड़ से राम की सेवा करने को कहता है—उसका निजी जीवन ही प्रभुकी कृपा का उदाहरण है। राम भक्ति के सिद्धांत को जानने के पश्चात् गरुड़ बहुत हर्षित होता है। और भुशुण्डि से विदा लेकर वैकुण्ठ को लौट जाता है (१२३-१२५)।

यहाँ शिव उपस्थित होकर उमा से कहते हैं कि उनकी कथा समाप्त हुई। इस कथा का श्रवण करने से ही रामकी भक्ति का परम लक्ष्य सिद्ध होता है—यह कथा केवल श्रद्धालुओं को ही सुनाना चाहिए। शिव रामकथा की और उससे उपलब्ध आध्यात्मिक पुण्य की महिमा का गान करते हैं। इस पर उमा कहती हैं कि उनके सब भ्रम नष्ट हो गये और राम में उनकी श्रद्धा दृढ़ होगई (४२६-१२९)।

अब तुलसीदास का कथन आरम्भ होता है। सब श्रोताओं से वे यही अनुरोध करते हैं कि पूरे मन से राम में रत होना चाहिए। इस कथा के पाठ अथवा श्रवण से जो आध्यात्मिक पुण्य होता है उसे भी वे रेखांकित करते हैं, और अंत में राम से यही प्रार्थना करते हैं कि उनमें निरन्तर भक्ति रहे (१३०)।

१—भूमिका

शिव-पार्वती संवाद से रामकथा तो समाप्त हो जाती है (७, ५२) पर एक नये भुशुण्डि गरुड़ संवाद का आरम्भ होता है। (रामकी कथा बताने के लिये) पार्वती शिव का धन्यवाद कहती हैं और पहले

(१, १०५ इत्यादि) राम की दिव्यता में उन्हे जो संदेह हुआ था उसका उल्लेख करतें हुए बताती हैं कि उनके सब संदेह दूर होगए—

तुम्हरी कृपाँ कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।[1]

इस कथा को सुनकर पार्वती को अपार सुख हुआ, पर इसके अन्तर्गत काग भुशुण्डि का नाम सुनकर उन्हें चिंता हुई—

हरिचरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमिति सुख पावा॥
तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। कागभुसुंडि गरुड़ प्रति गाई॥
बिरति ग्यान बिग्यान दृढ़ राम चरन अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति मोहि परम संदेह॥[2]

बालकाण्ड के १२० वें पद्य के प्रथम सोरठे के समान यहाँ भी कविता के नाम "मानस" का संबंध प्रस्तुतकर्ता भुशुण्डि से है। इस आदिम प्रस्तुतकर्ता के जड़स्वरूप, या अधिक सचाई से कहना चाहिये, उसके अशुद्ध शरीर से पार्वती को उलझन है और इसलिये वे कई प्रश्न पूछती हैं—

सो हरिभगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई॥
राम परायन ग्यान रत गुनागार मति धीर।
नाथ कहहु केहि कारन पायउ काक सरीर॥
यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा। कहहु कृपाल काग कहँ पावा॥
तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी॥
गरुड़ महाग्यानी गुन रासी। हरिसेवक अति निकट निवासी॥
तेहिं केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई॥
कहहु कवन बिधि भा संबादा। दोउ हरिभगत काग उरगादा॥[3]

पार्वती के इन प्रश्नों से शिव बहुत हर्षित हुए और उन्हों ने उत्तर दिया—

धन्य सती पावन मति तोरी। रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी॥
सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा॥
उपजइ राम चरन बिस्वासा। भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा॥

---

[1] रा. च. मा. ७, ५२ दोहा।
[2] वही ७, ५३, ४, दोहा।
[3] रा. च. मा. ७, ५४, ४ दोहा, ५५, १-३।

ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहउँ सुनहु उमा मन लाइ॥[1]

उत्तरकाण्ड के शिव-पार्वती संवाद में और बालकाण्ड के याज्ञवल्क्य-भारद्वाज संवाद में उल्लेखनीय समानता है। क्योंकि बालकाण्ड में भी राम की दिव्यता के विषय में भारद्वाज को संदेह हुआ था और उसके उत्तर में याज्ञवल्क्य ने शिव-पार्वती के प्रथम संवाद को प्रस्तुत किया था जिसके अंतर्गत ही राम कथा का वर्णन हुआ है—

तात सुनहु सादर मनु लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥[2]

इस प्रकार उत्तरकाण्ड का शिव-पार्वती संवाद और बालकाण्ड का याज्ञवल्क्य-भारद्वाज संवाद सर्वथा समान हैं—उत्तरकाण्ड में शिव ने भुशुण्डि का उल्लेख उसी प्रकार किया है जैसे बालकाण्ड में याज्ञवल्क्य ने शिव का। बालकाण्ड में राम की दिव्यता में पार्वती को संदेह होने पर शिव ने राम की कथा कही; इसी प्रकार उत्तरकाण्ड में भुशुण्डि से रामकथा सुनने के लिये गरुड़ ने उसे अपने संदेहों से अवगत कराया। पर इन दोनों स्थलों में राम की दिव्यता में संदेह होने के कारण भिन्न हैं—दण्डकारण्य में सीता की खोज में विलाप करते राम को देखकर सती (पार्वती) भावाभिभूत हुई थीं; और युद्धक्षेत्रमें इन्द्रजित के नागपाशों से बन्धे राम को निश्चल देख कर गरुड़ को आश्चर्य हुआ—पर दोनों ही स्थलों में पद्धति एक समान है।

फिर भी, उत्तरकाण्ड के शिव-पार्वती संवाद से एक समस्या उत्पन्न होती है—शिव का उत्तर पार्वती के प्रश्नों के अनुकूल नहीं है। क्योंकि उत्तरकाण्ड के ५२ वें से ५६ वें पद्यों में पार्वती ने राम की दिव्यता के विषय में संदेह नहीं किया। इसके विरुद्ध, वे तो यही कहती हैं कि उनका मोह नष्ट होगया (५२-दोहा) और वे शिव से पूछती हैं कि यह कथा भुशुण्डि को कैसे प्राप्त हुई, और वह वास्तव में है कौन; उनके पाँच प्रश्न निम्नवत् हैं—

१—भुशुण्डि ने कैसे और क्यों काग शरीर पाया?
२—उसे रामचरितमानस का कथा कैसे प्राप्त हुई?
३—शिव ने रामचरितमानस का कथा कैसे सुनी?
४—गरुड़ उसको सुनने के लिये क्यों गया?
५—भुशुण्डि-गरुड़ संवाद किन परिस्थितियों में हुआ?

अत: हम देखते हैं कि उत्तरकाण्ड में शिव से किये पार्वती के और भुशुण्डि से किये गरुड़ के प्रश्न एक से नहीं हैं। फिर भी अपने उत्तर में शिव यही कहते हैं कि गरुड़ ने भुशुण्डि से भी ऐसा ही

---

[1] वही, ७, ५५, ४ दोहा।
[2] वही, १, ४७, ३-४ दे० अध्याय २ पृ० २७-२८।

एक प्रश्न (ऐसिअ प्रस्न) किया था। प्रश्नों के पूछ ने पर शिव पार्वती को धन्य कहते हैं और उस अतिपावन "इतिहास" का उल्लेख करते हैं जो वे सुनाने वाले हैं। निश्चय ही बालकाण्ड के समान यहाँ रामकथा का ही संकेत है। पर वस्तुत: उत्तरकाण्ड में घटना ऐसी घटित होती है मानो—पार्वती ने शिव से (दूसरी बार) रामकथा सुनने के लिये और मोह दूर करने को कहा हो।

रामचरितमानस के प्रथम तथा अंतिम काण्ड में समानता अधिक घनी है यद्यपि आरम्भ में ऐसा नहीं लगता। उत्तरकाण्ड के शिव-पार्वती संवाद में रामकथा को समाप्त करके गरुड़ तथा भुशुण्डि की कथा आरम्भ होती लगती है; पर वस्तुत: यहाँ दूसरे ही रामायण का आरम्भ है जिसे भुशुण्डि ने गरुड़ को बताया और यह भी पहली राम-कथा के समान "रामचरितमानस" ही कहलाती है। पिछले काण्डों में शिव ही कथा के प्रत्यक्ष प्रस्तुतकर्ता थे, पर भुशुण्डि के सम्मुख उनका यह स्थान गौण हो जाता है। अरण्यकाण्ड और लंकाकाण्ड में सहावस्थित शिव-पार्वती तथा भुशुण्डि-गरुड़ संवाद यहाँ एक दूसरे में सम्मिश्रित हो जाते हैं, पर भुशुण्डि की प्राथमिकता रहती है। निष्कर्ष यह हुआ एक उत्तरकाण्ड के ५३ वें पद्य से एक नई रामायण आरम्भ होती है जिसके, मूल आधार की चिंता किये बिना, उसे "भुशुण्डिरामायण" का नाम दिया जा सकता है।

२—गरुड़ मोह

शिव से किये पार्वती के पहले दो प्रश्नों का उत्तर 'भुशुण्डिचरित' से मिलता है। तीसरे प्रश्न का पहले उत्तर देते हुए शिव यह बताते हैं कि उन्हें भुशुण्डि-गरुड़ संवाद का कैसे पता चला।

शिव की कथा ठीक उसी स्थान से आरम्भ होती है जहाँ से याज्ञवल्क्य की बालकाण्ड में याज्ञवल्क्य भारद्वाज को सतीमोह व दक्ष के यज्ञ की कथा बताते हैं पर वह इस अंतिम कथा को संक्षिप्त करके कहते है क्योंकि "सारा संसार उसे जानता है"[1], इसी प्रकार उत्तरकाण्ड में भी, शिव उस समय का उल्लेख करते हैं जब वे दक्षपुत्री सती के साथ रहते थे, और तब तक उन्हों ने पार्वती के रूप में पुन: जन्म नहीं लिया था—

> प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा॥
> दच्छ जग्य तव भा अपमाना। तुम्ह अति क्रोध तजे तव प्राना॥
> मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा॥[2]

बालकाण्ड के ७५ वें पद्य में, याज्ञवल्क्य कहते हैं कि सती की मृत्यु के पश्चात् शिव सन्यासी बने घूमते रहे। इसी प्रकार उत्तरकाण्ड में शिव उस समय का स्मरण करते हैं जब सती के वियोग में वे घूमते फिरे—

---

[1] रा, च. मा. १, ६५, २—यह इतिहास सकल जग जानी।
[2] वहीं ७, ५६, १-२।

दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरें ।।
सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा । कौतुक देखत फिरउँ बेरागा ।। [१]

इस प्रकार घूमते समय, अन्य पंखवाले श्रोताओं में घुलमिलकर शिवने भुशुण्डि से रामायण सुनी (७-५७) ।

पार्वती के चौथे प्रश्न का उत्तर देते हुए शिव पक्षिराज गरुड़ के भुशुण्डि के पास भेंट करने की परिस्थिति बताते हैं और एतदर्थ गरुड़मोह की कथा का वर्णन करते हैं—

खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई । भयउ मोहबस तुम्हरिहिं नाई ।। [२]

नारद के आदेश पर गरुड़ ब्रह्मा के पास जाता है क्योंकि वे हरि की " सर्वशक्तिशाली माया " का प्रभाव जानते हैं—

माया बस कबि कोबिद ग्याता ।।
हरि माया कर अमिति प्रभावा । बिपुलबार जेहिं मोहि नचावा ।।
अग जगमय जग मम उपराजा । नहिं आचरज मोह खगराजा ।। [३]

ब्रह्मा गरुड़ से शिव के पास जाने को कहते हैं क्योंकि उन्हें " राम के प्रताप का ज्ञान " है । अत: पक्षिराज गरुड़ शिव के पास जाता है, पर वे इस समय यात्रा में थे (इस से स्पष्ट हो जाता है कि पार्वती को गरुड़ के आने का बोध नहीं था) और शिव उसे भुशुण्डि के पास भेज देते हैं ।

यहाँ द्रष्टव्य यह है कि ब्रह्मा और शिव दोनों ही गरुड़ के मोह का नाश करने में असमर्थ थे—उनका व्यवहार देखते हुए ऐसा विश्वास करने की कम से कम कल्पना तो ही की जा सकती है । नहीं तो उन्हों ने स्वयं ही रामकथा सुनाकर गरुड़ के मोह को नष्ट क्यों नहीं कर दिया? साथ ही, तुलसी शिव के व्यवहार का स्पष्टीकरण देने का भरसक प्रयत्न करते हैं—गरुड़ की सहायता न करने का प्रथम कारण स्वयं शिव यह देते हैं कि वह स्थान अनुचित था और संतों की संगति आवश्यक थी—

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही । कवन भाँति समुझावौं तोही ।।
तबहिं होइ सब संसय भंगा । ज बहु काल करिअ सत संगा ।। [४]

पर यह तर्क संतोषजनक नहीं । और तुलसी को इसका आभास रहा होगा क्योंकि शिव के द्वारा उन्हों ने अन्य तर्क भी प्रस्तुत कराये हैं—

---

[१] वही ७, ५६, ३ ।

[२] वही ७, ५९, १ ।

[३] वही ७, ६०, २-३ ।

[४] वही ७, ६१, २ ।

ताते उमा न मैं समुझावा । रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा ।।
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना । सो खोवै चह कृपानिधाना ।।
कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा । समुझइ खग खगही कै भाषा ।।
प्रभु माया बलवंत भवानी । जाहि न मोह कवन अस ग्यानी ।। [1]

इन "कारणों" की बहुलता और असम्बद्धता से "गरुड़मोह" में शिव के व्यवहार का विशदीकरण देने में कवि को जो कठिनाई हुई वह सुव्यक्त है। विशेषकर इसलिये कि सम्पूर्ण मानस में शिव ही को कथा का प्रमुख प्रस्तुतकर्ता और "प्रणेता" का स्थान प्राप्त हुआ है।

उत्तरकाण्ड में गरुड़ की कथा में और अरण्यकाण्ड[2] में जयंत के प्रसंग में कुछ समानताएँ हैं—जयंत के समान गरुड़ भी, हरि की माया के वशीभूत हुआ और पहले नारद के ही पास जाता है; पर इन दोनों का उद्धार राम के ही हाथों हो सकता है या रामकी कथा के श्रवण से हो सकता है—और बात एक ही है। दोनों ही कथाएँ राम की कृपा का दृष्टांत हैं—राम अपने सेवकों को भ्रम में डालने और उनका उद्धार करने के लिये ही अपनी माया का प्रयोग करते हैं। यत्र तत्र इस माया की अजेय प्रकृति को भी प्रदर्शित किया गया हैं क्योंकि राम की इच्छा और माया एक ही चीज़ है। ब्रह्मा तथा शिव भी इसके वश में हैं—

सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन । [3]

ग्रन्थ में अन्यत्र शिव को परमोत्तम 'गुरु' माना गया है और वे माया से अप्रभावित भक्ति में दक्ष हैं। पर इसके विपरीत, भुशुण्डि शिव को कोई विशेष अधिकार प्रदान नहीं करता।

इस अंश में, जो बात सुव्यक्त है वह माया की द्वयर्थकता है—वह केवल भ्रामक ही नहीं है पर मोक्ष का साधन भी है—वह प्रभु हरि की कृपा का साधन है और उनके सर्वथा अधीन है। माया की द्वयर्थकता का परिचय बालकाण्ड के नारदमोह में ही उपलब्ध है—यदि हरि अपने सेवक को भ्रम में डालते हैं तो उसके अहितकारी गर्व को दूर करने के लिये[4]। इसी भाव को लेकर अरण्यकाण्ड[5] के राम-नारद संवाद में विस्तार दिया गया है। इसी प्रकार यहाँ भी गरुड़ के आपातत: अजेय मोह में, शिव रघुपति की कृपा के रहस्य को पाते हैं।

३—भुशुण्डि द्वारा कथित रामायण

शिव द्वारा पार्वती को बताई 'गरुड़ मोह' की कथा, भुशुण्डि-गरुड़ संवाद की भूमिका है। भुशुण्डि को सम्बोधित कर पक्षिराज गरुड़ उससे रामकथा सुनाने की प्रार्थना करता है—

---

[1] वही ७, ६२, ४-५ ।
[2] दे० अध्याय ८ पृ० १७८-१७९ ।
[3] वही ७, ६२, दोहा २ ।
[4] दे० अध्याय ४ पृ० ६७-६९ ।
[5] दे० अध्याय ८ पृ० २०० ।

अब श्रीराम कथा अति पावनि । सदा सुखद दुख पुंज नसावनि ॥
सादर तात सुनावहु मोही । बार बार बिनकउँ प्रभु तोही ॥
सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता । सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता ॥
भयउ तासु मन परम उछाहा । लाग कहै रघुपति गुन गाहा ॥
प्रथमहिं अति अनुराग भवानी । रामचरित सर कहेसि बखानी ॥[1]

यहाँ प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष शैली का ओर संक्रमण द्रष्टव्य है—कहना चाहिये शिव स्वयं ही भुशुण्डि द्वारा गरुड़ को बताई कथा कहने लगते हैं। क्योंकि वस्तुत: कवि के विचार में भुशुण्डि द्वारा बताई रामायण और पार्वती को शिव द्वारा सम्पूर्णतया बताया 'रामचरित मानस' एक ही है। अत: "भुशुण्डि रामायण" पहले बताई रामायण का सार मात्र लगता है और यह स्वाभाविक ही है कि शिव ही उसके भी प्रस्तुतकर्ता हों। परन्तु हमें देखना यह है कि क्या ये दोनों कथाए वस्तुत: एक ही हैं और क्या उत्तरकाण्ड में भुशुण्डि द्वारा कही रामायण, रामचरितमानस के सार से भिन्न तो नहीं है।

रामचरितमानस का रूपक भुशुण्डि की कथा की प्रस्तावना है—

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी । रामचरित सर कहेसि बखानी ॥
पुनि नारद कर मोह अपारा । कहेसि बहुरि रावन अवतारा ॥
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई । तब सिसु चरित कहेसि मन लाई ॥

बालचरित कहि बिबिधि बिधि मन महँ परम उछाह ।
रिषि आगवन कहेसि पुनि श्री रघुबीर बिबाह ॥[2]

इस प्रकार शिव के अनुसार, भुशुण्डि ने राम की कथा की तुलना एक सरोवर से कर के गरुड़ को कथा बतानी आरम्भ की—वस्तुत: यह रूपक बालकाण्ड के आमुख के उत्तरार्द्ध में भी मिलता है (१, ३६-४३),[3] और वहाँ भुशुण्डि का कोई उल्लेख नहीं, कवि ही स्वयं प्रस्तुतकर्ता है।

मानस के बालकाण्ड में "शिवचरित" ५५ पद्यों में है, अर्थात् काण्ड का पाँचवां भाग इस ने ले लिया है, पर उत्तरकाण्ड की इस "भुशुण्डिरामायण" में "शिवचरित" का नाम तक नहीं है। इसके विरुद्ध यहाँ शिव के कथनानुसार, भुशुण्डि ने राम की "बाललीलाओं" का विस्तार से वर्णन किया, यद्यपि बालकाण्ड में यह वर्णन केवल पाँच पद्यों में है। अयोध्या में विश्वामित्र के आगमन से लेकर, सीता के साथ विवाह करके राम के अपनी मातृभूमि में लौटने तक का विवरण बालकाण्ड में १५५ पद्यों में है—पर यहाँ शिव यह नहीं कहते कि भुशुण्डि ने इस विषय का विस्तार से वर्णन किया।

अन्य काण्डों की परिस्थिति भी बालकाण्ड के समान है,—उत्तरकाण्ड की "भुशुण्डिरामायण" की सम्यक् समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि भुशुण्डि ने जो जो घटनाएँ गरुड़ को सुनाईं वे सब की

---

[1] रा. च. मा. ७, ६४, २-४।
[2] रा. च. मा. ७, ६४, ४ दोहा।
[3] दे० अध्याय १ पृ० २२ इत्यादि।

सब शिव द्वारा कथित रामायाण में हैं, यहाँ तक कि इसमें, बालकाण्ड के " नारदमोह " व " रावण अवतार "—और अरण्यकाण्ड के राम-अत्रि संवाद तथा राम-नारद संवाद जैसे कई ऐसे प्रसंग भी हैं जो वाल्मीकिरामायण तथा अध्यात्मरामायण दोनों में ही नहीं हैं। परन्तु रामचरितमानस के सभी प्रसंगों को भुशुण्डिरामायण में सम्मिलित नहीं किया गया। कदाचित् कुछ प्रसंगों के, अभाव का कारण यह हो सकता है कि जिस कथा को पहले कहा जा चुकी है उसका सार देते समय उन्हें पुन: देना आवश्यक न था। पर तथ्य यह है कि भुशुण्डिरामायण में घटनाओं के अपेक्षाकृत महत्व की ओर ध्यान नहीं दिया गया जैसा कि हम अभी कह आये हैं, शिवचरित का उल्लेख तक नहीं है यद्यपि वह काफ़ी लम्बा है। इसके विरुद्ध भुशुण्डिने कई ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है जिनका कोई विशेष महत्व नहीं जैसे विराध की तथा शरभंग की कथा—रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में इन्हें क्रमश: दो और तेरह अर्धालियों में दिया गया है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि भुशुण्डि ने केवल आवश्यक घटनाओं तक ही अपने को सीमित रखा है। प्रतीत यह होता है कि अरण्यकाण्ड के राम-अत्रि संवाद जैसे कुछ उदात्त वार्तालापों को ही उसने विशेष महत्व दिया है; तथा खर की मृत्यु की पश्चात् रावण के मनोभावों का और रावण तथा मारीच के वार्तालाप का भी उसने संकेत किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तरकाण्ड की इस भुशुण्डिरामायण और रामचरितमानस अथवा ' शिवरामायण ' का विषय सर्वथा समान नहीं है—यदि यहाँ कवि को रामचरितमानस का केवल सार ही देना अभीष्ट था तो वे ऐसा किसी अन्य प्रकार से करते। इसके अतिरिक्त, यह भी समझ में नहीं आता कि इस स्थान पर इस प्रकार के सारांश की और वह भी प्राय: सम्पूर्ण कविता में अनिर्देशित प्रस्तुतकर्ता के द्वारा कराने की, आवश्यकता क्या हो सकती थी। या तो उत्तरकाण्ड की ' भुशुण्डिरामायण ' किसी साम्प्रदायिक मूलाधार से ली गई है या यह रामचरित मानस के अतिरिक्त, पर कई बातों में उससे मिलते जुलते किसी अन्य ग्रन्थ का सार है। जो भी हो, इसमें संदेह नहीं कि लेखक के विचार में, दोनों कथाओं का विषय नितांत एक है। उत्तरकाण्ड के ६८वें पद्य की चौथी चौपाई में शिव इस एकता को रेखांकित करते हैं—

कथा समस्त भुसुंड बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी॥

शिव की यह घोषणा एक बात का प्रमाण अवश्य है—वह यह कि कवि दोनों कथाओं को एक में मिला देना चाहता था, उसके अनुसार एक ही कथा को कई पात्र सुनाते हैं। समन्वय की यही चिंता बालकाण्ड के तीसवें पद्य में दृष्टिगोचर होती है परन्तु प्रस्तुत कर्ताओं में अन्त: परिवर्तन हो जाता है, यहाँ भुशुण्डि को शिव से कथा सुनते बताया है, शिव को भुशुण्डि से नहीं।[१] इन दोनों स्थलों के विरोध से ही स्पष्ट हो जाता है कि दोनों कथाओं को एक करने का विचार कविको बाद में आया। बालकाण्ड के तीसवें पद्य के अनुसार, याज्ञवल्क्य को यह कथा भुशुण्डि से प्राप्त हुई और तब उन्होंने उसे भारद्वाज को सुनाया। पर भुशुण्डि व याज्ञवल्क्य दोनों प्रस्तुतकर्ताओं में जो

---

[१] दे० अध्याय १ पृ० २४।

सम्बंध इस प्रकार स्थापित होता है वह भी अवैध है—वस्तुतः उत्तरकाण्ड में, भुशुण्डि के श्रोताओं में याज्ञवल्क्य की गणना नहीं हुई, क्योंकि श्रोतागण सब के सब पक्षी ही हैं।

अप्रत्यक्ष शैली रामकथा तक ही सीमित है। उसके तुरन्त पश्चात् भुशुण्डि-गरुड़ के संवाद को शिव पुनः प्रस्तुत करते हैं। पक्षिराज गरुड़ के सब संदेह दूर होजाने पर वह भुशुण्डि को धन्यवाद कहता है, पर बालकाण्ड में पार्वती के सन्देहों के समान, गरुड़ के संदेह भी पावन छल था जिससे एक बार पुनः रामकथा का पाठ हो सके। भुशुण्डि भी उसे कम उपदेश नहीं देता। इन दो पक्षियों के संवाद का विषय प्रभु-राम की 'माया' और 'कृपा' का रहस्य है—ये ही दो गम्भीर रहस्य हैं और केवल राम भक्त ही इनको जानने के अधिकारी हैं—

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास॥[1]

यहाँ से लेकर दोनों पक्षियों के सामने शिव का लोप हो जाता है, इन दोनों के संवाद को ही तो वे पार्वती को सुनायेंगे। तथा प्रस्तुतकर्ता के रूप में वे कविता के अंत में, १२६ वें पद्य में पुनः उपस्थित होंगे।

४—भुशुण्डि-गरुड़ संवाद—भुशुण्डि मोह

इस नवीन संवाद का विषय प्रभु की माया और उनकी कृपा से प्राप्त मुक्ति है। अप्रत्यक्षतया इस विषय पर रामचरितमानस के कुछ भागों में, विशेषकर बालकाण्ड के नारदमोह में, अरण्यकाण्ड के राम-नारद संवाद में और उत्तरकाण्ड के गरुड़मोह में, पहले भी विचार हुआ था। पर यहाँ से इस विषय पर प्रत्यक्ष विचार होता है। गरुड़ के सम्मुख भुशुण्डि के अपने व्यक्तिगत अनुभवों तथा क्षणिक मोह की कथा केवल उसके सिद्धांतों का स्पष्टीकरण करने के लिये दृष्टांत मात्र हैं। वैष्णव भक्ति के विभिन्न सम्प्रदायो के धार्मिक मतभेदों की प्रतिध्वनि यहाँ सुव्यक्त है—निर्गुण व सगुण और कृपा तथा मुक्ति के विवादग्रस्त प्रश्नों पर भुशुण्डि का निजी पक्ष है और वह अपने सिद्धांत को स्पष्टतया तथा बलपूर्वक गरुड़ को बताता है और साथ ही उपयुक्त दृष्टांत भी देता है।

सर्वप्रथम भुशुण्डि माया की सार्वभौम शक्ति का वर्णन करता है और कहता है कि कोई भी देवता या ऋषि, यही तक कि शिव भी, इससे नहीं बच सकते। चाहे यह कितनी भी भयानक हो, पर है वह प्रभु की विनम्र सेविका ही—

सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि॥
जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥[2]

---

[1] रा. च. मा. ७, ६९ दोहा।

[2] वही ७, ७१ दोहा २; ७२, १।

अपने भक्तों के प्रेम के कारण परब्रह्मस्वरूप राम ने मानव देह धारण किया—कृपा के कारण ग्रहण किया यह शरीर एक रूपांतर हैं और उनके मानवचरित मायावी लीला हैं जो भक्तों को हर्षित करते हैं पर मूर्खों को भ्रांत करते हैं—अपने राग के गर्व में अंधे हुए ये लोग, इस मोह के कारण प्रभु के इस मानव स्वरूप को नहीं पहचानते। इस प्रकार परमप्रभुको उनके मानव रूप में पहचानलेना ही गुण (अथवा भक्ति) का मापदण्ड है, इसी में सारी कठिनाई है और इसी से सब पुण्य प्राप्त होता है—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम आगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ ।।[1]

परन्तु सब प्राणियों को भ्रम में डालने वाली यही माया प्रभु की कृपा की साधन भी है। और भक्तों के अहंकार का उपचार करने के लिये राम इस का प्रयोग करते हैं—

संसृत मूल सूलप्रद नाना । सकल सोक दायक अभिमाना ।।
ताते करहिं कृपानिधि दूरी । सेवक पर ममता अति भूरी ।।
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं । मातु चिराव कठिन की नाईं ।।

जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी गनति नसो सिसु पीर ।।
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि ।।[2]

इस सिद्धांत को सुस्पष्ट करने के लिये भुशुण्डि अपने पतन की कथा गरुड़ को सुनाता है। यह भुशुण्डि-मोह बालकाण्ड के नारद-मोह के समान एक प्रकार का सिद्धांत भाष्य है।

बाल राम के प्रति भुशुण्डि का अत्यधिक भक्ति है और वे ही उसके इष्टदेव हैं। त्रेतायुग में, प्रत्येक रामावतार पर भुशुण्डि अयोध्या जाता है जिससे वह बाल राम की लीला कर दर्शन कर सके और उसमें स्वयं भाग ले सके।[3]

भुशुण्डिमोह का कारण राम की बाल लीला थी। इस कथा का आरम्भ बालक के सौन्दर्य के, एक प्रकार के नख-सिख, वर्णन से होता है। यह वर्णन बालकाण्ड के १२९ वें पद्य में दिये वर्णन से मिलता जुलता है। इसमें बाल राम का वर्णन, भागवतपुराण में बाल कृष्ण के आदर्श पर हुआ है। जब भुशुण्डि राम के साथ खेलता है तो वह उनकी माया के बश में हो जाता है और उनकी दिव्यता के विषय में संदेह करने लगता है। भुशुण्डि यहाँ समझाता है कि इस दुर्घटना में कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि यह अनिवार्य था—

---

[1] रा. च. मा. ७, ७३ दोहा २।

[2] वही ७, ७४, ३, दोहा २।

[3] वही १, १९६, २-३ में शिव ने पार्वती से कहा कि वे और भुशुण्डि मानवरूप में राम के जन्म के अवसर पर अयोध्या गये और उन्हें किसी ने नहीं पहचाना। दे० अध्याय ५, पृ० ९०।

जौं सब कें रह ग्यान एकरस । ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस ।।
माया बस्य जीव अभिमानी । ईस बस्य माया गुन खानी ।।
परबस जीव स्वबस भगवंता । जीव अनेक एक श्रीकंता ।।
मुधा भेद जद्यपि कृत माया । बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ।।[1]

अपने सेवक को इस मोह से मुक्त करने के लिये भी राम इसी माया का प्रयोग करते हैं जब भुशुण्डि पंखों की तेज़ी से उड़कर भाग निकला तो बाल राम की भुजा उसका तब तक पीछा करती रही जब तक कि उसने आंखे मूँद कर अपने को अयोध्या में न पाया । यहाँ की भुशुण्डि के व अरण्यकाण्ड में एक स्थान पर दूसरे काग, जयंत के साथ हुई दुर्घटना एक समान हैं—वहाँ यह भुशुण्डि ही प्रस्तुतकर्ता के रूप में प्रकट होता है ।

राम के कण्ठ में से जाकर भुशुण्डि राम के पेट में उतर गया और अंदर प्रवेश कर उसने सारे लोकों का दर्शन किया—

अति बिचित्र तहँ लोक अनेका । रचना अधिक एक ते एका ।।
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा । अगनित उडगन रबि रजनीसा ।।
अगनित लोकपाल जम काला । अगनित भूधर भूमि बिसाला ।।[2]

इस प्रकार बाल राम ने भुशुण्डि को अपने विराट् रूप को देखने का अवसर उसी प्रकार प्रदान किया जैसा कि उन्हों ने अपनी माता कौशल्या को भाया था[3]—बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में यह लोकदर्शन लगभग एक सा है । उत्तरकाण्ड के भुशुण्डि-मोह और बालकाण्ड के १९९ से २०२ वें पद्य का संबन्ध निश्चित है जिससे इन दोनों के एक ही मूल आधार का संकेत होता है ।

इस दर्शन से व्याकुल होकर, भुशुण्डि राम के चरणों पर गिर जाता है, राम उसके सिर पर हाथ रख कर उसका मोह नष्ट कर देते हैं और उसे ऋद्धि, सिद्धि, मोक्ष, ज्ञान अथवा विवेक का वर मांगने को कहते हैं, पर भुशुण्डि कुछ नहीं चाहता—

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे । लवन बिना बहु बिंजन जैसे ।।
भजन हीन सुख कवने काजा ।[4]

इस प्रकार, भुशुण्डि परमोत्तम वर, भक्ति की प्रार्थना करता है और राम इस वर की याचना पर उसे धन्य बताते हैं । इसके अतिरिक्त, राम और भी सब कल्याणप्रद वर,—विवेक, ज्ञान, ध्यान और अपने कार्यों को समझने का वर, उसे प्रदान करते हैं; अब से माया भी उसको अपने वश में न कर सकेगी । इस प्रकार भुशुण्डि भक्ति में 'निष्ठ' हो जाता है और परमभक्तों के स्थान को पाता है ।

---

[1] रा. च. मा. ७, ७८, ३-४ ।
[2] रा. च. मा. ७, ८०, २-३ ।
[3] दे० अध्याय ५, पृ० ९२-९३ ।
[4] रा. च. मा. ७, ८४, ३ ।

तब राम भुशुण्डि को अपने प्रेम का रहस्य प्रकट करते हैं और यही उनका "निज सिद्धांत" है—

> मम माया संभव संसारा । जीव चराचर बिबिधि प्रकारा ।।
> सब मम प्रिय सब मम उपजाए । सब ते अधिक मनुज मोहि भाए ।।
> तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुति धारी । तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी ।।
> तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी । ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी ।।
> तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा । जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ।।
> पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं । मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ।।
> भगति हीन बिरंचि किन होई । सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ।।
> भगतिवंत अति नीचउ प्रानी । मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ।।[1]

यह कैसे सम्भव है कि इतने कृपालु प्रभु अपने भक्तों पर प्रेम न करें? इस बात को समझाने के लिये राम ने एक दृष्टांत दिया है—

> एक पिता के बिपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ।।
> कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता । कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ।।
> कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई । सब पर पितहि प्रीति सम होई ।।
> कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा । सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा ।।
> सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना । जद्यपि सो सब भाँति अयाना ।।
> एहि बिधि जीव चराचर जेते । त्रिजग देव नर असुर समेते ।।
> अखिल बिस्व यह मोर उपाया । सब पर मोहि बराबरि दाया ।।
> तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया । भजै मोहि मन बच अरु काया ।।
>
> पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
> सर्बभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ।।[2]

इसके साथ ही, बाल राम अपनी लीला में फिर रत हो जाते हैं और भुशुण्डि आनन्दविमोहित उनका दर्शन प्राप्त करता है। तदुपरांत भक्त काग अपने आश्रम को लौट जाता है। अन्त में, भुशुण्डि गरुड़ से हरि की पूजा करने का अनुरोध करता है (७, ८९, ३-४)।

और अब भुशुण्डि एक नया विषय आरम्भ करता है जिस में वह प्रकृति के पांच तत्वों की भक्ति के तत्वों से तुलना करता है। इस भाषण के अंत में, वह राम के प्रताप की स्तुति करता है और राम की कथा को अनंत बताता है—

---

[1] रा. च. मा. ७, ८६, २-५ ।

[2] रा. च. मा. ७, ८७, १-४, दोहा २ ।

महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा॥
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं। निगम सेष सिव पार न पावहिं॥...
 रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।
 संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ॥[1]

भुशुण्डिने अपनी कथा समाप्त कर दी, परन्तु उन दोनों पक्षियों का संवाद चलता रहता है। गरुड़ भुशुण्डि को धन्यवाद कहता है और अपने संदेहों पर पश्चात्ताप करता है। परन्तु फिर भी उसे कई प्रश्न करने रह जाते हैं—और ये प्रश्न ही भुशुण्डि चरित की प्रस्तावना हैं।

५—भुशुण्डि चरित

भुशुण्डि के काग शरीर में इतना ज्ञान तथा भक्ति को देखकर गरुड़ को आश्चर्य होता है—

कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई॥
राम चरित सर सुंदर स्वामी। पायहु कहाँ कहहु नभगामी॥
नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं॥
मुधा बचन नहिं ईस्वर कहई। सोउ मोरें मन संसय अहई॥
अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा॥
अंड कटाह अमित लय कारी। कालु सदा दुरतिक्रम भारी॥
 तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।
 मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल॥
 प्रभु तव आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग।
 कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग॥[2]

गरुड़ के प्रथम व द्वितीय प्रश्न वे ही हैं जो पार्वती ने शिव से किये थे और जिनका उत्तर शिव ने नहीं दिया था[3]। उसके तीसरे प्रश्न में 'गरुड़ मोह' के अन्तर्गत शिव तथा गरुड़ के संवाद का संकेत है, पर वहाँ शिव ने गरुड़ से कहा कि भुशुण्डि "बहुकालीना" है (७, ७८, २) और यह नहीं कहा कि प्रलय में भी उसका नाश नहीं होता। इसके विरुद्ध, यह बात उससे कुछ पहले (७, ५७, १) उन्हों ने पार्वती से अवश्य कही थी। जब वे भुशुण्डि से रामचरितमानस सुनने की परिस्थितियों को समझा रहे थे तो उन्होंने पार्वती को यह बताया था और इससे गरुड़ को आश्चर्य होता है। उत्तरकाण्ड के ये दोनों संवाद इतने अधिक संश्लिष्ट हैं कि उन में एकता प्रतीत होने लगती है।

---

[1] वही ७, ९१, २; ९२, दोहा १।
[2] रा. च. मा. ७, ९४, २ दोहा दो।
[3] ऊपर दे० पृ० २८३।

शिव ने पार्वती से यह भी कहा कि पाप व संदेह उस पर्वत के पास तक नहीं पहुंचते जहाँ भुशुण्डि निवास करता है (५७, १-२)—और गरुड़ ने इस बात का अनुभव किया है (७, ६३, १)। इसी कारण उसने अंतिम प्रश्न पूछा।

गरुड़ के प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर देने के लिये, भुशुण्डि अपने पूर्वजन्मों की कथा का वर्णन करता है और एक प्रकार से अपनी आत्मकथा ही सुना देता है। उत्तरकाण्ड का यह भुशुण्डिचरित लगभग २० पद्यों (९३-११५) में है। यह कथा विशेष उदात्त है क्योंकि इसका विषय रामभक्ति की ओर "आकर्षित करना" है—

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। यन क्रम बचन राम पद नेहा॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥
राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही॥
राय भगति एहिं तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी॥
तजउँ न तन निज इच्छ मरना। तन बिनु बेद भजन नहिं बरना॥[1]

इसके उपरांत, भुशुण्डि अपने भिन्नजन्मों की कथा कहता है। राम के शत्रु होने के कारण इसे कभी शांति प्राप्त नहीं हुई और उसने विभिन्न जन्म पाये। व्यर्थ ही उसने योग, जप, तप और दानादि कर्म किये। व्यर्थ ही, शिव की कृपा से, जब वह शिवभक्त था, उसकी बुद्धि मोह के वश में नहीं हुई।

पर कलियुग में, शैव भुशुण्डि ने अयोध्या में शूद्रशरीर में जन्म लिया। इस 'जन्म' का ही फिर वह गरुड़ को पूरा वर्णन सुनाता है। इस कथा के आरम्भ में कलियुग का विस्तृत वर्णन है (७, ९७-१०२)। यह विषय पौराणिक साहित्य को प्रिय है और इसका वर्णन आमुख (१, १२) में हो चुका था। तुलसीदास ने इस दुर्व्यवस्था के नैतिक तथा अध्यात्मिक पक्ष पर ज़ोर दिया है—

क्योंकि यह युग दंभ तथा प्राणियों के मन में भ्रम का उत्पादक हुआ है—

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥ . . .
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥ . . .

तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं॥
जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ॥[2]

---

[1] रा. च. मा. ७, ९६, १-३।

[2] वही ७, ९८, १ दोहा १।

मिथ्यावाद का बोलबाला होता है, लोग या तो वेदों की परवाह नहीं करते या निंदा करते हैं। यह उच्छृङ्खल विचारों और वर्णसंकर का युग है—

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ॥[1]

इस के अतिरिक्त कलियुग के दोषों का अधिक विस्तार, आगे दो पद्यों में (१०१-१०२) हुआ हैं। इन पद्यों में चौपाइयों के स्थान पर "तोमार" छन्दों का प्रयोग किया गया है। साथ में भुशुण्डि यह भी कहता है कि अन्य युगों की तुलना में कलियुग का एक लाभ भी है—इस में मोक्ष सरलतया मिल जाता है क्योंकि वह केवल हरिनाम अर्थात् राम की कथा के पाठ तथा हरि की कीर्ति के गान से ही प्राप्त हो जाता है—

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि॥
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥[2]

राम के नाम के विषय में पहले ही व्यक्त (१, २७, २-३) विचारों की यह पुनरावृत्ति है। पर यहाँ भुशुण्डि एक व्याख्या भी जोड़ देता है—

नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापइ माया॥

हरिमाया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥[3]

अयोध्या में उत्पन्न, शूद्र भुशुण्डि उज्जैन जाता है। यह बात कि वहाँ उसका गुरु कोई वैदिक ब्राह्मण था आश्चर्य जनक है। वहाँ भुशुण्डि शिव का भक्त हो जाता है और उनके ही मंत्र को बार बार जपता है, तथा हरि के भक्तों का बहिष्कार करता है। उसका गुरु उसे उपदेश करता है कि शिव की भक्ति के द्वारा ही व्यक्ति राम को पहुँच पाता है—

सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई॥
रामहि भजहिं तात सिव धाता। नर पावँर कै केतिक बाता॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी॥[4]

---

[1] रा. म. च. ७, १००, दोहा २।

[2] वही ७, १०३, ३-४।

[3] वही ७, १०४, ४, दोहा १।

[4] वही ७, १०६, १-२।

इस उपदेश से कट्टर भुशुण्डि क्रोध में जल उठता है—अपने गुरु का निरादर करता है, जिसके लिये शिव से दण्ड प्राप्त करता है और वे इसे सर्प में परिणत करदेते हैं। यह सब घटना १०६ वे पद्य में है और यहाँ से लेकर पद्यव्यवस्था बदल जाती है—पद्यों की लम्बाई दुगनी हो जाती है और इन में चार या पाँच के स्थान पर आठ चौपाइयाँ तथा दो के स्थान पर चार दोहे हैं।

उसका कृपालु गुरु बीच में पड़कर शिव से अपने अपराधी शिष्य के लिये दया की प्रार्थना करता है—यह स्तुति संस्कृत भाषा व 'भुजंगप्रयात'[१] छंद में है जो छंद मानस में अन्यत्र प्रयुक्त नहीं हुआ जहाँ तक भाषा—शिथिल तथा अशुद्ध संस्कृत का संबन्ध है, यह स्तुति अरण्यकाण्ड (४) की राम के प्रति अत्रि-स्तुति और उत्तरकाण्ड (१३-१४) के पूर्वार्द्ध में राम के प्रति शिव की स्तुति से मिलती है। इस स्तुति में शिव को परब्रह्म सर्वव्यापक, निर्गुण, निर्विकल्प, व निरीह कहा गया है। (अत्रिस्तुति के समान) इस स्तुति के अंत में संक्षिप्त "फलस्तुति" है—

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शंभुः प्रसीदति

यहाँ पर शिव को वह परमस्थान ही प्राप्त नहीं जो रामचरितमानस के राम को प्राप्त है, अपि तु उन्हें सगुण व भक्ति का पात्र मान कर पूजा गया है। वस्तुतः भुशुण्डि के गुरु ने कहा है—

न जानामि योगं जपं नैव पूजाम्। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यम्॥[३]

क्योंकि यह स्तुति एक ऐसे पात्र ने की है जिसे (सिद्ध) शिवभक्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है, यह अनुमान किया जा सकता है कि रामभक्त तुलसीदास उसके कथन का पूर्ण उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करते। यह भी स्पष्ट है कि ये 'स्तुति' तथा 'फलस्तुति' कविता के रामपक्ष के संदर्भ में अप्रासंगिक है। संस्कृत में लिखी होने के कारण इसका यह लक्षण और भी अधिक उल्लेखनीय हो जाता है। सम्भव है कि तुलसी ने यह जैसी का तैसी उसी मूलाधार से ली जिसका प्रयोग उन्होंने इस भुशुण्डि-चरित की रचना में किया।

अपने गुरु के बीच में पड़ने से, भुशुण्डि स्वयं भी हरि का भक्त हो गया और कई जन्मों के पश्चात् एक दिन ब्राह्मण का शरीर धारण करके, अर्थात् प्राणियों के सर्वोत्तम वर्ण में, उत्पन्न हुआ। बाल्यकाल से ही उसने अपूर्व धर्मप्रियता का परिचय दिया—

खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला॥
प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा॥
मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी॥[४]

---

[१] इसमें चार पाद होते हैं और प्रत्येक पाद में चार यगण (⏑ - -)।

[२] रा. च. मा. ७, १०८, ९।

[३] वही ७, १०८, ८।

[४] वही ७, ११०, २-३।

माता पिता की मृत्यु के पश्चात् भुशुण्डि वन में चला गया। और प्रभु का ध्यान करने के साधनों के विषय में ऋषियों से पूछने लगा। पर उन लोगों के उत्तरों से उसे संतोष नहीं हुआ—

जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्ब भूतमय अहई॥
निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई॥[1]

मेरु पर्वत के शिखर पर, युवक ब्राह्मण भुशुण्डि को ऋषि लोमश का दर्शन हुआ। उसने उनसे सगुण ब्रह्म की पूजाविधि का उपदेश प्राप्त करने का प्रार्थना की। पर वे ऋषि उस का इच्छा पूर्ति को तय्यार न हुए—

तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा॥
ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी। मोहि परम अधिकारी जानी॥
लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा॥
मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुख रासी॥
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥[2]

परन्तु इस उपदेश से शिष्य तटस्थ रहा और उसने पुनः पुश्न किया—

पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा॥
राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना॥
सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया॥[3]

ऋषि अपने सिद्धांत पर डटे रहे और भुशुण्डि अपनी हट पर जमा रहा—

मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुन मत अगुन निरूपा॥
तब मैं निर्गुन मत कर दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी॥
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा॥[4]

अंत में, क्रुद्ध होकर लोमश ने भुशुण्डि को शाप दे दिया और कहा—

सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही॥

---

[1] रा. च. मा. ७, ११०, ८।
[2] वही ७, १११, १-३।
[3] वही ७, १११, ४-५।
[4] वही ७, १११, ६-७।

सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला॥[१]

भुशुण्डि इस शाप को प्राप्त कर के दु:खी नहीं हुआ और कौए में परिवर्तित होने के पश्चात् प्रसन्नता से उड़ने लगा। तब प्रभु राम ने लोमश के मोह का नाश किया और उन्होंने पश्चात्ताप किया। तब भुशुण्डि को बुलाकर उन ऋषि ने उसकी प्रार्थना को पूर्ण किया—

हरषित राममंत्र तब दीन्हा॥
बालकरूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना॥[२]

लोमश ने कुछ काल तक भुशुण्डि को, अपने पास ही रखा और उसे 'रामचरितमानस' का पाठ करके सुनाय; और इसे गुप्त रखने का आदेश दिया—

रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा॥
तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी॥
राम भगति जिन्ह कें उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं॥[३]

भुशुण्डि को आशीर्वाद देकर लोमश ने कथा समाप्त की—

सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान॥
जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत॥

काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ॥[४]

इस प्रकार भुशुण्डि ने आत्मकथा समाप्त की और गरुड़ के सब प्रश्नों का उत्तर भी देदिया—उसने समझाया कि वह कौए में कसे परिणत हुआ, तथा प्रलय के बाद भी जीवित रहने का प्रसाद उसे कैसे मिला। कौए का यह अपवित्र शरीर उसे प्रिय है क्योंकि इस शरीर की सहायता से ही उसे बाल राम का दर्शन और उनके साथ लीला करने का अवसर प्राप्त हुआ। लोमश ऋषि के शाप से उसे बहुत लाभ पहुचा और इसके लिये वह राम की कृपा का कृतज्ञ है। इस कथा से निर्गुण की अपेक्षा सगुण की प्राथमिकता, भक्ति की उत्तमता और मोक्ष के अन्य मार्गों की, विशेष कर, ज्ञानकी निरर्थकता सुस्पष्ट हो जाती है—

जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं॥

---

[१] रा. च. मा. ७, ११२, ७-८।

[२] वही ७, ११३, ३-४।

[३] वही ७, ११३, ६-७।

[४] वही ७, ११३, दोहा १-२, ११४-१।

ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी । खोजत आकु फिरहिं पय लागी ।।[1]

६—भुशुण्डिचरित का धार्मिक परिशेष

भुशुण्डि गरुड़ संवाद का अंतिम भाग नितांत उपदेशात्मक है—भक्ति तथा ज्ञान का मार्ग तथा मुक्ति की प्राप्ति में इन मार्गों के महत्व पर विमर्श, इसका विषय है । गरुड़ ज्ञान तथा भक्ति के भेद को जानने की इच्छा प्रकट करता है और भुशुण्डि उसे उत्तर देता है—

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव संभव खेदा ।।
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर । सावधान सोउ सुनु बिहंगबर ।।[2]

तदुपरांत, भुशुण्ड, पुरुष तथा स्त्री योनियों के परस्पर विरोध तथा आकर्षण पर आश्रित मुक्ति का सिद्धांत गरुड़ को बताता है—ज्ञान, वैराग्य, योग और विज्ञान—ये सब "पुरुष" हैं, अतः प्रबल हैं। परन्तु पुरुष होने के कारण वे नारी की, तथा माया की शक्ति—"स्त्री शक्ति" पर प्रभुता नहीं पा सकते। इस के विपरीत एक अन्य स्त्रीशक्ति—भक्ति—को माया से कोई भय नहीं। फिर भक्ति तो राम की प्रिया है और माया बेचारी तो नटिनी मात्र है। माया को भक्ति से भय है और उसकी उपास्यता में वह निश्चल हो जाती है अत एव महर्षिगण मुक्ति के लिये समर्थ, भक्ति को ही, ज्ञान से अधिक अमूल्य समझते हैं।

इस विचित्र व्याख्या को "ऋषियों वेदों तथा पुराणों का सिद्धांत" तथा एक "रहस्य" कहा गया है। यह भाष्य ज्ञान के द्वारा मुक्ति की सिद्धि के विषय पर भुशुण्डि के एक लम्बे उपदेश का[3] आमुख है। यह उपदेश तीन पद्यों (११७-११९) से कम में नहीं और इन में क्रमशः २४, २०, तथा १४ अर्धालियाँ हैं।

भुशुण्डि कहता है कि जीव ईश्वर का अंश है, अत एव वह अविनाशी, निर्मल और सुख की राशि है। परन्तु वह माया के जाल में फंस जाता है, जिस से मुक्ति पाने के लिये पुण्य, तप तथा ध्यान आवश्यक हैं। अंत में, जीव ज्ञानदीप को प्रज्वलित करने में सफल होता है और इस दीप की ज्वाला ही "सोऽहमस्मि" है। इसके प्रकाश से बुद्धि उस ग्रंथ को खोल सकती है जो मायावी संसार में जीव को बंदी किये है। यदि इस कार्य में बुद्धि सफल हो जाय तो जीव की मुक्ति हो जाती है। परन्तु उसकी मुक्ति होते देखकर माया प्रत्येक प्रकार से इसका विरोध करती है और भरसक प्रयास करती है कि जीव की मुक्ति न हो। यदि जीव इसका विरोध करे तो देवता बीच भेछा जाते हैं।

इंद्री द्वार झरोखा नाना । तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ।।
आवत देखहिं बिषय बयारी । ते हठि देहिं कपाट उघारी ।।
जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई । तबहिं दीप बिग्यान बुझाई ।।

---

[1] रा. च. मा. ७, ११५, १ ।
[2] वही ७, ११५, ७ ।
[3] वही ७, ११६, दोहा १ ।

ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा।।
इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई।।[1]

तब जीव अनेकों प्रकार से जन्ममरण के वे क्लेश पाता है जिन से वह बच निकला था। पर इसका सारा प्रयास निरर्थक हो जाता है—

हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस।।
कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक।।
ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा।।
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई।।
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद।।[2]

इन सब दुःखदायी प्रयत्नों के विरोध में, जिनका या तो कोई फल ही नहीं होता या बहुत कम होता है, भुशुण्डि भक्ति के सुखों की गणना करता है—क्योंकि ज्ञान के विपरीत भक्ति स्वयं ही आनन्द की एक अवस्था है और इससे मुक्ति अवश्यंभावी है। फिर अन्य सब कार्यों को व अपनी मुक्ति के विचार तक को छोड़कर ऋषिगण भक्ति के मार्ग को ही अपनाते हैं। भुशुण्डि के लिये, प्रभु राम का भजन ही, सर्वोत्तम सिद्धांत है।[3]

ज्ञान के सिद्धांत की इस प्रकार व्याख्या करने के पश्चात्, काग भुशुण्डि भक्ति-मणि की प्रशंसा करता है—वह सुन्दर चिंतामणि है, ऐसा दीपक है जिसे घी अथवा बती किसी की अपेक्षा नहीं और दुःखों तक में सुखप्रदान करनेवाली है। मानव के सब प्रयत्न इस मणि की खोज के ध्येय से होने चाहिये—यह सब के लिये सुलभ है यद्यपि गुप्त भी है—

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई।।[4]

संतों की संगति को भी भुशुण्डि ने बहुत महत्व दिया है—

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा।।
राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा।।
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई।।
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा।।[5]

---

[1] रा. च. मा. ७, ११८, ६-८।

[2] वही ७, ११८, दोहा १-२, ११९, १-२।

[3] वही ७, ११९, दोहा १—"भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि"।

[4] वही ७, १२०, ६।

[5] वही ७, १२०, ८-९।

गरुड़ के कई प्रश्नों का उत्तर देते हुए भुशुण्डि ने यह सिद्ध करदिया कि मानवशरीर सर्वोत्तम है। दयाभाव सब से बड़ा गुण है। पाप ही आत्मा के रोग हैं और इसका एक मात्र उपचार भक्ति है जो राम की कृपा से प्राप्त होती है। अन्त में वह स्पष्ट बताता है कि मोक्ष प्राप्त करने के एक मात्र साधनस्वरूप भक्ति में ही अपनी श्रद्धा होनी चाहिये। काग भुशुण्डि के लिये यही सिद्धांत है,[1] यही अमर सत्य है। अंतिम श्लोक में हरि के भजन का उपदेश है।

यहाँ पर दोनों पक्षियों का आध्यात्मिक संवाद समाप्त हो जाता है। गरुड़ भुशुण्डि को हार्दिक धन्यवाद कहता है और वह वैकुण्ठ को लौट जाता है।

७—रामचरितमानस का उपसंहार

मानस के उत्तरकाण्ड के १२६ वें पद्य में शिव पुनः उपस्थित होते हैं, और पार्वती से कहते हैं कि यह "इतिहास" समाप्त हुआ—

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा।।[2]

शिव द्वारा कथित यह 'इतिहास' राम की कथा है, भुशुण्डि की कथा नहीं जैसा कि अगले संदर्भ से भी व्यक्त है—

मति अनुरूप कथा मैं भाषी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी।।
तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई।।
यह न कहिअ सठही हठसीलहि। जो मन भजइ सचराचर स्वामिहि।।
द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ।।
राम कथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह कें सत संगति अति प्यारी।।
गुर पद प्रीति नीति रत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई।।
ता कहँ यह बिसेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई।।[3]

उत्तरकाण्ड के ५२ वें पद्य के समान यहाँ भी, शिव राम कथा की तथा उसके आध्यात्मिक गुणों की[4] प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार पार्वती उनकी कथा सुनकर हर्षित होती हैं और कहती हैं कि उनके संदेह मिट गये[5]—अतः रामचरितमानस के दो उपसंहार हैं। एक भुशुण्डि गरुड़ के संवाद से पहले है और दूसरा उसके बाद।

---

[1] रा. च. मा. ७, १२२, दोहा १—'यह सिद्धांत अपेल'।

[2] वही ७, १२६, १।

[3] वही ७, १२८, १-४।

[4] दे० अध्याय १२ पृ० २७८।

[5] दे० अध्याय १३, पृ० २८२।

इस दूसरे उपसंहार में जिससे मानस की समाप्ति होता है शिव बताते हैं कि राम की कथा के सात सुन्दर सोपान हैं और वे राम की भक्ति[1] को प्राप्त करने के लिये उतने ही मार्ग हैं। यह बात बालकाण्ड के आमुख को द्वितीय भाग के कथन (१, ३७) के तथा सातों काण्डों की पुष्पिकाओं के अनुरूप है।

इन दोनों उपसंहारों (७, ५२ व १२८) की समानता से दोनों कथाओं का एकीभाव व्यक्त होता है। स्पष्ट है कि तुलसीदास के लिये जो रामचरितमानस भुशुण्डि ने गरुड़ को सुनाया तथा पार्वती के संदेहों को दूर करने के लिये शिव ने जो रामकथा उन्हें सुनाई, वे दोनों एक ही हैं। यदि वस्तुतः नहीं तो सिद्धांततः दोनों कथाएँ संश्लिष्ट हैं। इस रामचरितमानस के गोपनीय लक्षण के विषय में पार्वती को शिव की घोषण व उसे राम के भक्तोंको ही बताने का अनिवार्यता "भुशुण्डिचरित" (७, ११३, ६-७) में भुशुण्डि को बताये लोमश ऋषि के उपदेश की प्रतिध्वनि है।

अंतिम पद्य (१३०) में, तुलसी स्वयं बोलते हैं और उत्तम पुरुष का प्रयोग कर कविता की समाप्ति करते हैं—

यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा।।
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा।।
राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं।।
रघुपति कृपाँ जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा।।[2]

अतः कवि के विचार में, भुशुण्डि की अपेक्षा शिव की प्राथमिकता है और अध्यात्मरामायण के समान, रामचरितमानस का स्रोत शिव पार्वती के संवाद से प्रवाहित होता है। यदि इस अंतिम भाषण में भुशुण्डि और याज्ञवल्क्य का उल्लेख नहीं है तो इसका कारण यह है कि उनको साधारण बिचौला माना गया है। अतः उत्तरकाण्ड के १३० वें पद्य की पहली व दूसरी चौपाई, बालकाण्ड के ३० वें पद्य के अनुरूप है और बालकाण्ड के ११० वें पद्य के प्रथम सोरठे का खण्डन करती है।[3]

राम का भजन करने के अनुरोध से कविता समाप्त होती है—

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।
जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना।।
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई।।[4]

---

[1] रा. च. मा. ७, १२९, २।

[2] वही ७, १३०, १-२।

[3] दे० अध्याय १, पृ० १७ व अध्याय ३, पृ० ५८।

[4] रा. च. मा. ७, १३०, ३-४।

अंतिम पद्य में तीन हरिगीतिका छंद हैं। पहले में तुलसीदास उन अपवित्र व्यक्तियों की गणना करते हैं, कृपालु राम ने जिनका उद्धार किया—

गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना।।
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं

यहाँ उल्लिखित पाँच पात्रों में से केवल जटायु ही रामकथा में एक पात्र के रूप में प्रस्तुत कियागया है। पहले लम्पट, और बाद में, महर्षि वाल्मीकि के हृदयपरिवर्तन की कथा अध्यात्मरामायण (२, ६, ६४) में बताई गई है। शेष तीन अर्थात् अजामिल, पिंगला, तथा हाथी विष्णु-हरि की रक्षा में हैं—इनकी कथा भागवतपुराण में बताई गई है। कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ इनका नाम आमुख (१, २६, ४) में आचुका है और इनकी मुक्ति का कारण हरि का सकल नाम ही है।[1]

१३० वें पद्य के दूसरे छंद में संक्षिप्त सी फल स्तुति है—

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं।।
सत पंच चौपाईं[2] मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरै।।

इस पद्य का तीसरा छंद भक्त तुलसीदास की अपने इष्टदेव के प्रति विनम्र प्रार्थना है—

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को।।
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

कविता के अंत में दो संस्कृत श्लोक दिये हैं—

“श्रेष्ठ कवि शंकर ने पहले जिस दुर्गम रामायण की राम के चरणकमलों में नित्य निरंतर भक्ति

---

[1] दे० अध्याय १, पृ० १३-१४।

[2] “सत पंच चौपाई”—इन शब्दों का विभिन्न अर्थ लगाया गया है—“सात या पाँच” (ग्राउज़); “पाँच हज़ार एक” (रामदास गौड़); पाँच अच्छी (चौपाइयाँ)। दे० डा० मा. प्र. गुप्त गोस्वामी तुलसीदास पृ० २६६-२६७। डा० माता प्रसाद गुप्त द्वारा प्रस्तुत अर्थ “पाँच सौ” निस्संदेह सर्वोत्तम है। परन्तु इससे वे जो निष्कर्ष निकालते हैं वह विवादास्पद है। दे० अध्याय १४, पृ० ३१९-३२०।

प्राप्त होने के लिये, रचना की थी, उस रामायण को रघुनाथ के नाम में निरत मानकर अपने अन्तःकरण के अन्धकार को मिटाने के लिये तुलसीदास ने मानस के रूप में भाषाबद्ध किया।

यह रामचरितमानस पुण्यरूप, पापों का हरण करने वाला, सदा कल्याणकारी। विज्ञान और भक्ति को देनेवाला, माया, मोह और मल का नाश करनेवाला, परम निर्मल प्रेम रूपी जल से परिपूर्ण तथा मंगलमय है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस मानससरोवर में गोता लगाते हैं, वे संसाररूपी सूर्य की अति प्रचण्ड किरणों से नहीं जलते।"

व्याख्याकारों के अनुसार, शिव द्वारा रचित और यहाँ निर्दिष्ट रामायण से तात्पर्य अध्यात्म-रामायण से है—यह बहुत कुछ सम्भव है। तो क्या इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जिस "रामायण" का आमुख के सातवें श्लोक में निर्देश हुआ है। वह भी अध्यात्मरामायण है और वाल्मीकि रामायण नहीं? बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड के इन दोनों श्लोकों में द्रष्टव्य समानता है—

बालकाण्ड श्लोक ७—

". . . स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति"

उत्तरकाण्ड पद्य १३०, श्लोक १—

". . . . . स्वान्तस्तमःशान्तये।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥"

परन्तु इस समानता से यही विचार होता है कि उत्तरकाण्ड का उपर्युक्त श्लोक, बालकाण्ड के श्लोक के आधार पर, कविता समाप्ति पर रचा गया। हम देख चुके हैं कि आमुख के सातवें श्लोक में निर्दिष्ट 'रामायण' निश्चय ही वाल्मीकि रचित आदिकाव्य है।[1] इसके विपरीत, यह असम्भव नहीं कि उत्तरकाण्ड के अंतिम श्लोक में निर्दिष्ट रामायण "अध्यात्मरामायण" हो। क्योंकि शब्दों की निश्चय ही संबोध समानता होने पर भी रामचरितमानस के आमुख तथा उपसंहार में सर्वथा स्पष्ट संबन्ध नहीं है—आमुख में तुलसी पहले वाल्मीकि और फिर अन्य विभिन्न आधारों की ओर, और उपसंहार में वे केवल शिव की ओर ही संकेत करते हैं। आमुख में कविता को "रामगाथा" नाम दिया गया है; उपसंहार में उसका 'मानस' कह कर निर्देश किया गया है। यदि यह मान लिया जाय कि तुलसी की आरम्भिक इच्छा कुछ थी और वह सम्पन्न किसी और ही प्रकार हुई तो इन भेदों को ठीक समझा जा सकता है—वन्दना में कविता की आदिम योजना की रूप-रेखा है और उपसंहार में उसका अंतिम रूप।

उत्तरकाण्ड की पुष्पिका अन्यकाण्डों की भाँति ही है—

"कलियुग के समस्त पापों का नाश करनेवाले रामचरित मानस का 'अविरल हरि भक्ति सम्पादन' नामक यह सातवाँ सोपान समाप्त हुआ।"

---

[1] दे० अध्याय १ पृ० ३-४, ८-१०।

सोपानों अर्थात् पिछले काण्डों से, (अरण्यकाण्ड से) वैराग्य, (किष्किन्धाकाण्ड से) संतोष, (सुन्दरकाण्ड से) ज्ञान तथा (लंकाकाण्ड से) विज्ञान का मार्ग खुल जाता है। यह अंतिम सोपान सर्वोत्तम है क्योंकि उससे परमसुख अर्थात् राम के चरणों में भक्ति प्राप्त होती है।

८—उत्तरकाण्ड की भुशुण्डि रामायण की गठन

उपर्युक्त विश्लेषण से उत्तरकाण्ड के उतरार्द्ध तथा सम्पूर्ण रामचरितमानस में कुछ विरोध प्रतीत होता है—एक ओर तो इस भुशुण्डिरामायण की गठन बहुत ही विशिष्ट है, और दूसरी ओर वह सम्पूर्ण कविता के साथ कृत्रिमतया जोड़ी गई प्रतीत होती है।

यदि शिव-पार्वती के संक्रामक संवाद (पद्य ५२-५७) को और उत्तरकाण्ड के अंतिम पद्यों (१२६-१३०) में उद्दिष्ट रामचरितमानस के उपसंहार को छोड़ दिया जाय तो ज्ञात होगा कि अवशिष्ट भाग अर्थात् ५८ वें पद्य से १२५ वें पद्य तक एक प्रकार की संक्षिप्त रामायण है जो स्वतः पर्याप्त है और जिसकी सन्धियाँ निम्नवत् हैं—

१—भूमिका—गरुड़-मोह, भुशुण्डि से भेंट के लिये गरुड़ का प्रस्थान।

२—भुशुण्डि द्वारा कथित राम की कथा।

३—माया तथा (राम की कृपा से प्राप्त) मुक्ति के विषय पर भुशुण्डि का गरुड़ को उपदेश; भुशुण्डि मोह द्वारा सिद्धांत का प्रतिपादन।

४—गरुड़ के नवीन प्रश्नों के उत्तर में, भुशुण्डि द्वारा 'सगुण' के विषय में सिद्धांतोपक्षेप; ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की प्रधानता; भुशुण्डिचरित द्वारा उसका दृष्टांत।

५—गरुड़ के नवीन प्रश्नों के उत्तर में, राम भक्ति द्वारा मुक्ति की सिद्धि के विषय पर भुशुण्डि द्वारा व्याख्यान की समाप्ति।

६—उपसंहार—मोह नष्ट होने पर गरुड़ का भुशुण्डि को धन्यवाद तथा वैकुण्ठ को प्रस्थान।

इस प्रकार हम देखते है कि उत्तरकाण्ड की भुशुण्डिरामायण की रचना का आदर्श कोई साम्प्रदायिक रामायण है। यह एक सिद्धांत प्रतिपादक कविता है जिसमें रामकथा उपदेश पूर्ण प्रसंगों का एक मात्र व्याज है। इस कथा के लेखक शिव नहीं बताये गये और यह कथा भुशुण्डि ने ऋषियों से, विशेषकर लोमश ऋषि से सुनी।

उत्तरकाण्ड के इस उत्तरार्द्ध में तुलसीदास ने किस आधार से प्रेरणा ली हमें पता नहीं। निश्चय ही वह भागवतपुराण से प्रभावित कोई रामाश्रयी ग्रंथ होगा जिसका उद्देश्य मुक्ति के अन्य सभी मार्गों की अपेक्षा भक्ति मार्ग को ही उत्तम बताना था। इस भाग में भुशुण्डि के महत्वपूर्ण स्थान को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि वह कदाचित् भुशुण्डिरामायण हो जो अभी तक अनुपलब्ध है। परम्परा के अनुसार इस की गणना रामचरितमानस के मुख्य मूलाधारों में होता है।

तुलसीदास के विचार में राम की कथा अनंत है और रामायणों की संख्या सैंकड़ों करोड़ों[1] में है—यदि ऐसा है तो मानस के लेखक भुशुण्डिरामायण को शिव द्वारा बताई रामायण के साथ साथ

---

[1] रामायण की बहुलता—और अनंत संख्या—का उल्लेख बालकाण्ड (१, ३०, ३३, १०५, १२० सोरठा) में तथा उत्तरकाण्ड (५२, ९१) में कई बार हुआ है। दे० अध्याय १ पृ० १८-१९।

पर अलग रख सकते थे और इस से कोई चकित भी न होता। परन्तु, अपनी कृति की इकाई बनाये रखने के लिये अथवा अन्य किसी कारण से, उन्होंने दोनों कथाओं को एक में मिला दिया—सिद्धांतत: भुशुण्डिरामायण तथा शिवरामायण एक ही चीज़ है।

आपातत: जिस साम्प्रदायिक मूल का यहाँ आधार लिया गया है उस में शिव ने पार्वती को 'गरुड़मोह' की कथा बताते हुए भुशुण्डि-गरुड़ संवाद को प्रस्तुत किया होगा। हम देखते हैं कि उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध में तथा बालकाण्ड के १२० वें पद्य के सोरठे में भी 'भुशुण्डिरामायण' की सूचना देने और उसके औचित्य को बताने के लिये ऐसा ही हुआ है।[1] परन्तु अप्रत्यक्ष प्रस्तुतकर्ता का यह पद जो शिव को यहाँ प्राप्त है, अवशिष्ट कविता में उनके रामकथा के निर्माता के पद से मेल नहीं खाता, क्योंकि, कम से कम अरण्यकाण्ड से लेकर, तुलसीदास सुव्यक्त रूप से शिव को ही प्रमाण मानते हैं। शिव-पार्वती के संवाद की भूमिका में (१, १०५-१११), यद्यपि भक्ति तथा ज्ञान के विषय में पार्वती के अंतिम प्रश्न का उत्तर देते हुए शिव उत्तरकाण्ड की भुशुण्डि-रामायण का पूर्वसंकेत करते हैं,[2] तो भी भुशुण्डि का कदापि उल्लेख नहीं करते। उत्तरकाण्ड के अंतिम पद्यों में बद्ध, कविता के उपसंहार में, भुशुण्डि के विषय में तुलसीदास मौन हैं। आमुख के दूसरे भाग में, जिसकी रचनों सब से अंत में हुई, दोनों प्रस्तुतकर्ताओं का संबन्ध अवैध प्रकार से पलट दिया गया है—बालकाण्ड के ३० वें पद्य के अनुसार भुशुण्डि ने जो कथा गरुड़ को बताई वह उसने शिव से सुनी थी।

भुशुण्डि-गरुड़ संवादके प्रस्तावना स्वरूप, उत्तरकाण्ड के इस शिव-पार्वती संवाद में उपलब्ध विरोधों का कारण यह है कि कथामें संतुलन करना कठिन था। निस्संदेह जिस मूल का तुलसीदास ने आधार लिया है, उसमें भी राम की दिव्यता के विषय में पार्वती ने शिव के समक्ष वही संदेह प्रकट किये होगे जो गरुड़ के संदेहों के सदृश थे। उनके उत्तर में शिव ने भुशुण्डि-गरुड़ संवाद की भूमिकाभूत, पहले 'गरुड़मोह' सुनाया। परन्तु इस भूमिका को रामचरितमानस में जैसा का तैसा नहीं रखा जा सकता था, क्योंकि ग्रंथ के इस स्थान से पहले ही, शिव पार्वती के संदेहों को दूर कर चुके थे। अत: यह आवश्यक था कि तुलसीदास इस संवाद में काटछांट करते और इसका परिणाम यह हुआ कि प्रश्नों और उत्तरों में संबन्ध ठीक नहीं बैठ पाया। उत्तरकाण्ड में शिव स्पष्टरूप से पार्वती के तीसरे प्रश्न का ही उत्तर देते हैं जिसमें शिव से पूछा गया है कि भुशुण्डि से उन्हें रामचरितमानस कैसे प्राप्त हुआ।

उल्लेखनीय यह है कि "भुशुण्डिरामायण" तथा "शिवरामायण" दोनों ही को—यद्यपि उनका विषय एक ही करना अभीष्ट था—रामचरितमानस शीर्षक दिया गया है। फिर भी कविता के अधिकतर भाग में और विशेषकर सर्व प्राचीन भाग में—अर्थात् बालकाण्ड के अंतिम भाग व सम्पूर्ण अयोध्याकाण्ड में, इस शीर्षक का कहीं भी जिकर नहीं है। इसके विरुद्ध, उत्तरकाण्ड में, लोमश ने जो कथा भुशुण्डि को बताई उसे 'रामचरितमानस' कहा गया है। इसी प्रकार बालकाण्ड के १२० वें पद्य के सोरठे में (अर्थात् बालकाण्ड के एक प्रक्षिप्त अंश में जो भुशुण्डिरामायण का समसामयिक होगा), रामचरितमानस का संम्बन्ध प्रस्तुतकर्ता भुशुण्डि से जोड़ा गया है। आमुख के दूसरे भाग में ही

---

[1] दे० अध्याय ३ पृ० ५८-५९।

[2] दे० अध्याय ३ पृ० ५४।

जिसकी रचना उत्तरकाण्ड की समाप्ति के बाद की है—सम्पूर्ण कविता को रामचरितमानस शीर्षक से सम्बोधित किया गया है व उसे शिव की रचना बताया है। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि सब से पहले 'भुशुण्डिरामायण' का नाम 'रामचरितमानस' रहा और बाद में सम्पूर्ण हिन्दी रामायण का। सम्भव है कि अपने ग्रंथ का यह अलंकारिक नाम देने का विचार तुलसीदास को बहुत बाद में आया हो।

कागदर्शन

उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध में भुशुण्डि द्वारा अभिव्यक्त धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों में विशेष सामञ्जस्य है। मैक्फ़ी ने रामायण विषयक अपनी रचना[1] में पूरा एक अध्याय (१०) ही दिया है जिसका शीर्षक उन्हों ने "कागदर्शन" रखा है। उनका अनुमान है कि अपनी कथा समाप्त करने के पश्चात् हिन्दी कवि, माया तथा भक्ति की समस्याओं पर अधिक सम्पूर्णतया विचार करना चाहते थे और इसी उद्देश्य से उन्हों ने दो पक्षियों को संवाद की कल्पना की।

उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध में प्रतिपादित धार्मिक और दार्शनिक सिद्धांतों का विशेष विश्लेषण, प्रस्तुत अध्ययन की सीमा के बाहर होगा। अतएव हम संक्षेप से उन सिद्धांतों की विलक्षणता का उल्लेखमात्र करते हैं—

राम एक साथ निर्गुण तथा सगुण-ब्रह्म हैं—उनमें व विष्णु-हरि में एकाकार है, वे भगवान हैं, ईश, ईश्वर हैं। अपने भक्तों की मुक्ति के उद्देश्य से वे मानव शरीर धारण करते हैं और चरित करते हैं जो वस्तुत: उनकी माया की लीला है। उनके निर्गुण स्वरूप की अपेक्षा सगुण स्वरूप श्रेयस्कर है।

अवतार लेने वाले भगवान की बालशरीर का महत्व। भुशुण्डि बालराम का परम भक्त है, वे ही उसके इष्ट देव हैं। इन दिव्य बालक का नखसिख वर्णन भागवतपुराण के दिव्य बालक कृष्ण के वर्णन के अनुरूप है। कृष्ण के समान राम भी यथावसर अपने विराटरूप को प्रकट करते हैं।

सीता को न माया और न लक्ष्मी ही बताया गया है। राम की शक्ति के रूप में भी उनकी कल्पना नहीं की गई है। यहाँ "शाक्त" विचारों का संकेत नहीं मिलता।

ब्रह्मा, नारद, सनत्कुमार तथा शुकदेव के समान, शिव की गणना राम के महाभक्तों में की गई है। यहाँ उनका अपना कोई विशेषस्थान नहीं और न वे किसी विशेष सम्प्रदाय के आराधन देव है।

जीव प्रभु का अंश है, उनकी माया से ही उसकी सृष्टि हुई। वह माया के वश में है, परन्तु माया प्रभु के वश में और इसे वह नटी के समान नचाते हैं। अपने सन्तों को भ्रम में डालने तथा उनकी रक्षा करने के लिये वह इसका प्रयोग करते हैं।

आध्यात्मिक शक्ति के रूप में, माया का श्लिष्ट लक्षण है। वह भक्ति के विरुद्ध है पर उसकी साधक भी है। माया के वश में होकर जीव राम की कृपा का पात्र होता है और भक्ति के द्वारा इसकी सुरक्षा होती है। "कर्म, काल, गुण, स्वभाव" माया की उपज हैं और उससे अभिन्न हैं।

जीव तथा सगुण ब्रह्म का सबोध तादात्म्य ही मुक्ति है—सगुण ब्रह्म इन दोनों के 'भेद' को नष्ट नहीं करता। केवल भक्ति के द्वारा ही यह तादात्म्य सम्पन्न होता है और यह केवल

---

[1] "दि रामयण ऑफ़ तुलसीदास और दि बाइबल ऑफ़ नौर्दन इण्डिया," एडिनबरा १९३०।

'भेद-भक्ति' ही हो सकती है। भक्ति का लक्ष्य मोक्ष नहीं है। भक्ति ही परमसुख है और वह ही अपना फल है। ज्ञान तो अधिक से अधिक भक्ति प्राप्त करने का (कम प्रभावशाली) साधन है।[1]

भक्ति राम की कृपा का फल है। वह निर्हेतुक है। सृष्टि में मानव ही इस कृपा का पात्र है। अत एव मानव जीवन का महत्व है। इसके लिये आवश्यक है कि प्रभु को आत्मसमर्पण किया जाय। इस प्रकार का समर्पण होने से ही भक्ति सम्पूर्ण है।

शिव की पूजा भी आवश्यक है और सत्संग भी। पर यह सिद्धांत के अननुरूप प्रतीत होता है।

अतः हम देखते हैं कि 'काग-दर्शन' शुद्ध एकदेवतावाद है। इसका आधार वेदान्ती य वैश्वदेवमत है और वह जीव तथा देव में भेद को स्वीकार करता है। परन्तु इस भेद की सत्वविद्या संबंधी कोई वास्तविकता नहीं। यह भेद मायावी है और देव की इच्छा पर आश्रित है। वे ही अपनी कृपा के रहस्य से इसको उत्पन्न करते हैं और अपने में सुरक्षित रखते हैं।

इस धर्मदर्शन तथा भागवतपुराण के धर्मदर्शन में घनी समानता है। रामचरितमानस के इस भाग का प्रत्यक्ष मूलाधार कोई भी हो पर उसमें भागवत के विचारों का निश्चय ही अच्छा समावेश रहा होगा।

मध्यकालीन वैष्णव धर्म के विकास में भागवतपुरण को प्रभाव की अतिशयोक्ति नहीं की जा सकती। इसका प्रभाव सभी सम्प्रदायों पर हुआ, चाहे उन्हें अद्वैत कहा जाय, चाहे विशिष्टाद्वैत अथवा द्वैत। द्वैतवाद के अचार्य माध्व थे; तेरहवीं शताब्दी में इन्होंने शंकर के सिद्धांतों का विरोध किया और बंगाली वैष्णवधर्म को बहुत प्रभावित किया—सोलहवीं शताब्दी में इस बंगाली वैष्णवधर्म के सर्वप्रमुख धार्मिक नेता चैतन्य थे। सुधारक वल्लभ (१४८१-१५३३), जो आन्ध्रदेशीय ब्राह्मण थे, सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में मथुरा में रहे और तुलसीदास से पचासवर्ष पूर्व हुए। मध्वाचार्य के समान वल्लभाचार्य पर भी भागवतपुराण का अधिक प्रभाव पड़ा। इस पुराण पर उन्होंने एक व्याख्या भी लिखी है जिसका नाम 'सुबोधिनी' है। इनकी एक अन्य रचना "तत्वद्वीपनिबन्ध" में भागवतपुराण के उपदेशों पर आश्रित उनके सिद्धांतों का सम है। वल्लभ, मध्वाचर्य के द्वैत के विरोधी हैं और अपने को वेदांत के अनुयायी बताते हैं और शुद्धाद्वैत का उपदेश करते हैं। परन्तु उनका दार्शनिक सिद्धांत भक्ति के सर्वथा अधीन है और उनका मत भास्कर[2] (लगभग ९०० ई०) के मत के समीप है। शंकर के अद्वैतवाद के विरोध में इन भास्कर ने भेदाभेद के मत का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार जीव, एक ही साथ, ब्रह्म भी है और ब्रह्म से भिन्न भी, और ब्रह्म व्यक्ताव्यक्त है। द्रष्टव्य यह है कि वल्लभ के देव केवल कृष्ण हैं। निम्बार्काचार्य के समान राधाकृष्ण

---

[1] ज्ञान से माया का नाश होता है और जीव तथा ब्रह्मा का तादात्म्य होता है, पर वास्तव में वह 'भेद भक्ति' के लिये विघ्न है—इस सिद्धांत के अनुसार यदि ज्ञान का कोई महत्व है तो वह विरोधजनक है।

[2] वल्लभाचार्य के मत की व्याख्या के लिये दे० दासगुप्त—"हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन फ़िलौसोफ़ी" जिल्द ४ पृ० ३१०-३७३।

नहीं। इस प्रकार वल्लभ का मत भागवतपुराण के अधिक निकट प्रतीत होता है और यह वेदांतीय वैश्वदेवमत पर आश्रित है और राधा की उपासना से अनभिज्ञ है।

रामचरितमानस की भुशुण्डिरामायण में, वल्लभ के कुछ सिद्धांतों की—विशेषकर माया विषयक सिद्धांतों की—छाया मिलता है। उत्तरकाण्ड के इस भाग में प्राय: निर्दिष्ट "काल, कर्म, स्वभाव, गुण" की गणना इसी मत[1] से संबंधित है। यह मानना चाहिये कि जिस समय तुलसीदास ने इस भाग की रचना की तो वे वल्लभसम्प्रदाय के सुनिष्ठ अनुयायी थे अथवा यह कि जिस मूलाधार से उन्होंने प्रेरणा ली है उसका रचयिता वल्लभाचार्य का कोई शिष्य था। इस प्रकार ही भुशुण्डिरामायण में कृष्णप्रभावित वातावरण की सत्ता समझ में आती है क्योंकि यहाँ बाल राम का चित्रण बाल कृष्ण के समान हुआ है।

मैक्फ़ी मे अनुसार, उत्तरकाण्ड की भुशुण्डिरामायण में 'कागदर्शन' का प्रसंग स्वयं तुलसीदास के दार्शनिक विचारों का सार है। परन्तु इस मंतव्य का कोई प्रामाणिक आधार नहीं—मैक्फ़ी के तर्क से प्रतीत होता है कि मानों उत्तरकाण्ड का भुशुण्डि-गरुड़ संवाद सम्पूर्णतया तुलसीदास की मौलिक रचना हो और इस की रचना का उद्देश्य उनके व्यक्तिगत विचारों को वैज्ञानिक परिपाटी से प्रस्तुत करता था। पर इस संवाद के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इस भाग की प्रेरणा किसी साम्प्रदायिक ग्रन्थ से प्राप्त हुई। अत: यह नहीं माना जा सकता कि भुशुण्डि ने जो विचार इस 'रामायण' में अभिव्यक्त किये हैं वे तुलसीदास के निजी विचार हैं।

वस्तुत: 'कागदर्शन' का सामंजस्य ही इस परिकल्पना के विरुद्ध है—क्योंकि इस भुशुण्डिरामायण में, वैष्णवधर्म तथा शैवधर्म के, निर्गुण तथा सगुण के, निर्हेतुक कृपा तथा सहेतुक कृपा[2] के पक्षपातियों के वादविवाद की प्रतिध्वनि मिलती है। इन विकट प्रश्नों के विषय में भुशुण्डि की स्थिति स्पष्ट है। उसका तथा उसके विपक्षी लोमश ऋषि का व्यवहार असहनशीलता का है। और यह बात सम्पूर्ण रामचरितमानस के विशाल समन्वय की विलक्षण प्रवृत्ति के नितांत प्रतिकूल है।

इसके अतिरिक्त, मैक्फ़ी ने जो अर्थ लिया है उसका खण्डन रामचरितमानस के अनेकों स्थलों और विशेषकर अध्यात्मरामायण से प्रभावित स्थलों से हो जाता है—क्योंकि अध्यात्मरामायण यद्यपि प्रचुरमात्रा में भागवतपुराण से प्रभावित है, पर वल्लभाचार्य के मत से न प्रभावित है और न ही इन आचार्य द्वारा प्रतिपादित माया के सिद्धांत से परिचित। फिर भी भुशुण्डिरामायण को रामचरितमानस के अंतमें देने का कारण समझमें आसकता है यदि यह मान लिया जाय कि तुलसीदास के व्यक्तिगत विचारों के विकास थी किसी न किसी अवस्था में, उन कि तथा काग भुशुण्डि के विचारों में मतैक्य

---

[1] दे० दासगुप्त—वही पृ० ३३६-३३२ ('कैटेगोरीज़ इन द सिस्टम ऑफ़ वल्लभ")।

[2] (रामानुज के अनुयायी) 'श्रीसम्प्रदाय' की दो शाखाओं में 'कृपा' के स्थान को लेकर ही मतभेद है। उत्तरी सम्प्रदाय (वडगलइ) सहेतुक कृपा के पक्ष में है। दक्षिणी सम्प्रदाय (तेंगलइ) निर्हेतुक कृपा के पक्ष में। इन दोनों सम्प्रदायों के मत भेद के विषय में दे० अ. गोविंदाचार्य—ज, रा. ए. सो. १९१० पृ० ११०३, तथा ज्या-ग्रियर्सन, ज. रा. ए. सो. १९१२ पृ० ७१५।

रहा होगा। वास्तविकता यह है कि बालकाण्ड के प्रथम भाग में तथा अरण्यकाण्ड से लेकर लंकाकाण्ड तक में और सबसे अधिक, उत्तरकाण्ड के पूर्वार्द्ध में, जहाँ शिव ही प्रमुख प्रस्तुतकर्ता हैं, हम ने ऐसे कई स्थल देखें हैं जिनका प्रेरणा भी उसी मूलाधार से मिली प्रतीत होती है जिससे उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध की। अब प्रश्न उठता है कि सम्पूर्ण रामचरितमानस में भुशुण्डि का स्थान क्या है—इस प्रश्न पर हम अंतिम अध्याय में विचार करेंगे।

अध्याय—१४

उपसंहार—रामचरितमानस के मूलाधार व उसकी रचना

१. मूल आधार

अ—वाल्मीकिरामायण तथा रामचरितमानस

क्या मानस व वाल्मीकिरामायण की समानताएँ इतनी संख्या में और इतने महत्व की हैं जिनके कारण वाल्मीकिरामायण को तुलसीदास की कृति का "मुख्य मूलाधार" समझा जाय ? इस प्रश्न को टेसिटोरी ने सर्वप्रथम उठाया था और उसका उत्तर हाँ में दिया था। दोनों ग्रन्थों की अतिसूक्ष्म तुलना करने के पश्चात् उन्हों ने दर्शाया था कि यथार्थकथित रामकथा (अर्थात् बालकाण्ड के प्रथम भाग और लगभग सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड को छोड़कर) की रूपरेखा दोनों काव्यों के एकसी है। तुलसीदास ने वाल्मीकि का अनुकरण किया है और उन्हें प्रमादाक्षम व मान्य समझा है, और जहाँ भी तथ्यों का रूप उनकी निजी धार्मिक व नैतिक धारणाओं के विरुद्ध नहीं बैठता वहाँ उन्होंने कोई परिवर्तन नहीं किया। टेसिटोरी ने यह भी निश्चित करने का प्रयास किया था कि तुलसीदास ने अपने काव्य के विभिन्न भागों में वाल्मीकिरामायण के कौन कौन से संस्करणों का प्रयोग किया।

टेसिटोरी के सूक्ष्म अध्ययन के कारण समस्या का स्वरूप तो सुलझ गया पर वे जिन निष्कर्षों पर पहुँचे उन्हें अंतिम नहीं समझा जा सकता प्रत्युत उनको स्वीकार करते समय सावधानी की आवश्यकता है। यह समझाते हुए कि टेसिटोरी ने वाल्मीकि के अतिरिक्त मानस के अन्य आधारों को पर्याप्त महत्व नहीं दिया, ग्रियर्सन ने उनके निष्कर्षों के अस्थायी लक्षण को रेखांकित किया था।[1]

वस्तुत: टेसिटोरी द्वारा समस्या के प्रतिपादन की भाषा ही द्व्यर्थक है क्योंकि "मुख्य मूलाधार" से अभिप्राय क्या है? टेसिटोरी व ग्रियर्सन यह मान लेते हैं कि तुलसीदास ने अध्यात्मरामायण का अन्य कृतियों का जहाँ भी उपयोग किया है उससे केवल मानस व वाल्मीकि के भेदों की ही "व्याख्या" की जा सकती है। इस प्रकार तो यह भी कहा जा सकता है कि मानस का आधार तो अध्यात्मरामायण है पर जहाँ भी उन्हों ने वाल्मीकिरामायण का उपयोग है उससे केवल मानस व अध्यात्मरामायण के भेदों की व्याख्या की जा सकती है। यह तो सुस्पष्ट तथ्य है कि वर्णित कथावस्तु के प्रवाह के लिये हिन्दी कवि, वाल्मीकि के ऋणी हैं और मानस की

---

[1] तुलना कीजिए—भूमिका पृ० १५।

कथावस्तु मोटे तौर से वाल्मीकि की कथावस्तु के समान है—इस दृष्टि से निश्चय ही यह कहा जा सकता है कि वाल्मीकिरामायण, रामचरितमानस का "मुख्य मूलाधार" है, ठीक वैसे ही जैसे उन अधिकतर रामायणों का विशेषकर अध्यात्मरामायण का जिनका तुलसीदास को ज्ञान था और प्रयोग किया; पर प्रश्न तो यह जानने का है कि तुलसी ने क्या **प्रत्यक्षरूप से** वाल्मीकिरामायण का ही प्रयोग किया और यदि हाँ तो कितनी मात्रा में।

अध्यात्मरामायण की कथावस्तु वाल्मीकिरामायण के दक्षिणी संस्करण ('ग') पर आश्रित है जिस से इस गवेषणा में कठिनाई होती है—अध्यात्मरामायण में वाल्मीकिरामायण की कथावस्तु का इतने समीप से अनुकरण हुआ है कि यह कहना प्राय: असम्भव हो जाता है कि तुलसीदास इन दोनों में से किस ग्रन्थ से अधिक प्रत्यक्षरूप से प्रेरित हुए। फिर भी, कुल मिलाकर, रामचरितमानस के गूढ़ विश्लेषण और अध्यात्मरामायण से उसकी तुलना करने से टेसिटोरी के निष्कर्ष सिद्ध नहीं होतें।

मानस में काण्डों की सीमा, वाल्मीकिरामायण के किसी भी संस्करण के समान नहीं, न उसके संस्करण 'ग' पर आश्रित अध्यात्मरामायण के समान ही है। हिन्दीकवि ने सात काण्डों के परम्परागत विभाजन को सुरक्षित तो रखा है तथापि उन में से प्रत्येक काण्ड की सीमा उसने कुछ स्वतंत्रता से निर्धारित भी है।

वस्तुत: रामचरितमानस में ऐसे कई अंश हैं जिन्हें "वाल्मीकिरामायण की प्रतिध्वनि" माना जा सकता है। परन्तु आदिकाव्य से निर्विवादरूपेण परिगृहीत स्थल मानस में इतने नहीं हैं जितने टेसिटोरी ने माने थे। इन विद्वान के मतानुसार ऐसे स्थलों की संख्या ८४ है, पर तीस बत्तीस अर्थात् आधे से भी कम ऐसे हैं जिन्हें निस्सन्देह वाल्मीकि के किसी संस्करण से परिगृहीत बताया जा सके। इनमें से कई तो ऐसे हैं जिन्हें अध्यात्मरामायण से परिगृहीत बताना भी उतनी ही संभाव्य है।

टेसिटोरी द्वारा निर्दिष्ट ऐसे ३२ स्थलों में से जिन्हें वास्तव में वाल्मीकि से परिगृहीत माना जा सकता है बालकाण्ड में केवल दो, अयोध्याकाण्ड में बीस, और बाकी दस उत्तरकाण्ड को छोड़कर, अन्य काण्डों में हैं। स्पष्ट है कि तुलसीदास ने वाल्मीकिरामायण के मूल का प्रयोग विषमतया किया था कहना चाहिये कि यह प्रयोग केवल अयोध्याकाण्ड में ही निर्बाध व विशेषरूप से हुआ है। इस काण्ड के अध्ययन से प्रतीत होता है कि वाल्मीकिरामायण, इस काण्ड का और केवल इसी काण्ड का निर्विवाद "मुख्य मूलाधार" है।

ऐसे सन्देहास्पद स्थल अधिकतर हैं जिनका आधार वाल्मीकि या अध्यात्मरामायण में से किसी एक को नहीं ठैराया जा सकता, क्योंकि उनका आधार ये दोनों ही ग्रन्थ हो सकते हैं। तुलसीदास को इन दोनों ही ग्रन्थों का अच्छा स्मरण है और वे सुपरिचित प्रसंग को इस स्वतंत्रता से कहते हैं कि तथ्यों के सामान्य स्वरूप को प्रवर्तित न करने में तो सावधानी रहे, पर किसी विशिष्ट आधार के प्रति उदासीनता। स्पष्ट ही है कि वाल्मीकिरामायण में वर्णित कोई विशेषता यदि अध्यात्मरामयण के संक्षिप्त वर्णन में भी जैसी की तैसी आगई तो रामचरितमानस में भी उसके सुरक्षित रहने की अधिक संभावना थी, चाहेतो अध्यात्मरामायण में उसको विशेष महत्व प्राप्त होने के कारण, चाहे इस प्रकार तुलसीदास की स्मृति में उसके आसानी से जम जाने के कारण।

इन परिस्थितियों में टेसिटोरी के यह ढूंढने के प्रयत्न कि तुलसीदास ने वाल्मीकिरामायण के कौन से संस्करण का अनुकरण किया, निष्फल प्रतीत होते हैं। रामचरितमानस में, वाल्मीकि के

किसी संस्करण विशेष में और अध्यात्मरामायण में बहुत ही कम संख्या में कथाएँ अथवा विशेषताएँ एक समान हैं। यह निष्कर्ष निकालना स्पष्टतया सम्भव नहीं कि लेखक ने वाल्मीकि के कौन कौन से संस्करण का उपयोग किया। इसके अतिरिक्त, यह अनुमान करना भी तर्कसंगत नहीं, जैसा टेसिटोरी ने किया है, कि तुलसी ने "एक बार में एक ही संस्करण का" प्रयोग किया। इस प्रकार के कथन की पुष्टि एक तो तथ्यों से ही नहीं होती और फिर टेसिटोरी के कथन का यह अभिप्राय भी निकल सकता है कि रामचरितमानस के कवि ने रामकथा का वर्णन अपनी स्मृति केवल पर नहीं किया प्रत्युत वाल्मीकिरामायण के कई "संस्करणों" को बार बार देखकर अपने ग्रन्थ की रचना की। इस प्रकार के अनुमान को ग्रियर्सन ने भी अवास्तविक बताने में संकोच नहीं किया।[1]

तुलसीदास की कृति को वाल्मीकि पर आश्रित बताने में टेसिटोरी अतिशयोक्ति तो करते ही हैं, साथ ही वे इन दोनों ग्रन्थों के परस्पर संबन्ध को ठीक नहीं समझे। उनका अनुमान है कि हिन्दी कवि ने तथ्यों का आदर करने में बहुत सावधानी की है ताकि उसकी कृति में और वाल्मीकिरामायण में अधिक भेद न हो, क्योंकि संस्कृतरामायण का उसके लिये "ऐतिहासिक मूल्य" है। परन्तु मानस के रचयिता को निश्चय ही किसी प्रकार का "ऐतिहासिक" संकोच नहीं था; यह तो स्पष्ट है कि जिस कथा का उन्होंने वर्णन किया है उसमें उनका विश्वास है, पर रामचरितमानस किसी प्रकार भी न तो प्रबंध-काव्य ही है और न काव्य। तुलसीदास के राम आदिकाव्य के राम के चरित्र व गुणों के भागी हैं पर उनका व्यक्तित्व और भी अधिक उच्च है। वे काल तथा स्थान की सीमाओं के अधीन नहीं और उनकी कथा व चरित अनन्त है। अतः वे सभी "ऐतिहासिक" सीमाओं के परे हैं। वेदों में, परम्परा में, या कवियों की कृतियों में जो कुछ भी राम के विषय में कहा गया है सत्य भले ही है पर वास्तव में वह सब, कुछ भी था लगमग कुछभी नहीं है।[2] तुलसीदास को कोई प्रसंग, अन्य प्रसंगो की अपेक्षा अधिक अच्छा लगा है, पर उन्हों ने उन में से किसी को भी छोड़ा नहीं; वे प्रत्येक प्रसंग से कुछ न कुछ सीखने को तय्यार हैं क्योंकि राम के विषय में कोई भी कथानक उनके लिये अद्भुत नहीं। वाल्मीकि की रामायण में वर्णित राम के सम्पूर्ण वृत्तान्त को वे स्वीकार करते हैं परन्तु उन्हें उन सब वृत्तान्तों में भी आस्था है जो वाल्मीकिरामायण में नहीं हैं। जानबूझकर वे इसके मूल से भेद नहीं करते, इसके प्रति उनके हृदय में पूजाभाव है पर साथ ही, यदि उन्हें किसी प्रसंग का संस्करणविशेष अधिक अच्छा लगता है या उनकी दृष्टि में उन में एक समान 'सत्य' है या उनके लक्ष्य की सिद्धि के लिये वह अधिक साधक है तो उसे अपनाने में भी उन्हें आपत्ति नहीं।

अत एव वाल्मीकिरामायण व रामचरितमानस के भेदों को विरोधी नहीं समझा जा सकता। न तुलसीदास की धार्मिकधारणाओं के कारण "सबोध", या साधारणत्रुटियों अथवा स्मरणशक्ति के स्खलन के परिणामस्वरूप "अबोध", परिवर्तन बताकर ही उन भेदों की व्याख्या की जा सकती है। उपलब्ध सामग्री को देखते हुए, समस्या को सुलझाने के लिये प्रश्न तो यह उठाना चाहिये कि तुलसीदास

---

[1] इल रामचरितमानस ए इल रामायण" बाई ल. न. टेसिटोरी, ज. रा. ए. सो १९१२, पृ० ७९४।

[2] रा. च. मा. १, ३३, २ दोहा; १०५, २; १२० सोरठा ३; ७, ५२, १-२; ९१, १-२।

ने वाल्मीकि से सीधे ही कहाँ और क्यों परिग्रहण किये। निश्चय ही, बहुत से स्थलों पर इन परिग्रहणों को केवल साधारण प्रतिध्वनियाँ नहीं कहा जा सकता, इनका कोई विशेष कारण रहा होगा। वाल्मीकि की कथावस्तु का कोई भी प्रसंग, देखने में चाहे वह कितना भी महत्वहीन हो, यदि राम की आराधना के निमित्त थोड़ा भी सहायक हो सका, तो उसे तुलसीदास ने छोड़ा नहीं—कुछ विशेषताओं से नायक के कुल सम्बंधी व सामाजिक गणों की परिचय मिलता है;[१] कुछ से उनके प्रति सभी जीवजन्तुओं के प्रेम की[२]; और कुछ दूसरी विशेषताओं से राम-नाम की महिमा[३] का बोध होता है।

कई प्रसंग, विशेषकर अरण्यकाण्ड से लेकर लंकाकाण्ड तक में उपलब्ध, ऊपरी तौर से ही वाल्मीकि से प्रभावित हैं। यद्यपि उनकी प्रेरणा इस रामायण से अवश्य मिली, पर था तो भागवत पुराण या अन्य कोई साम्प्रदायिक रामायण ही उनका प्रत्यक्ष मूल है।[४] ऐसा प्रतीत होता है कि अयोध्याकाण्ड के लिये वाल्मीकि ही तुलसीदास के पथप्रदर्शक—और आदर्श रहे होंगे, पर इसके बाद के तीन काण्डों में, वाल्मीकि पथप्रदर्शक रहे पर आदर्श बहुत कम। अंत में, लंकाकाण्ड में तुलसीदास ने अत्यधिक स्वतंत्रता का परिचय दिया है। फिरभी अनेक "नवीनताओं" तक में। आदिकाव्य का सम्मान व तुलसीदास की कल्पना पर वाल्मीकि का प्रभाव दृष्टिगोचर है—अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये, वाल्मीकिकृत कई कथाओं को दोहराने की प्रवृत्ति मानस में व्यक्त है।[५]

अतः वाल्मीकिरामायण और रामचरितमानस के परस्पर सम्बन्ध को संक्षित से निम्नवत् बताया जा सकता है—

तुलसीदास द्वारा वर्णित रामकथा का और सामान्यतया उनके द्वारा प्रयुक्त राम-साहित्य का, मूल आधार वाल्मीकिरामायण है। अत एव हम यह मान सकते हैं कि जहाँ तक रामचरितमानस के आधारों का प्रश्न है उन में वाल्मीकिरामायण को एक प्रकार से प्राथमिकता का अधिकार प्राप्त है।

मानस की कथावस्तु की रूपरेखा वाल्मीकि द्वारा वर्णित कथा के अनुरूप है और तुलसीदास ने अपनी कविता में उसका प्रत्यक्ष अनुकरण किया है। फिर भी, अयोध्याकाण्ड को छोड़कर, शेष ग्रन्थ में प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट परिग्रहण कुछ कम ही हैं। कुछ स्थल तो केवल साधारण प्रतिध्वनियाँ हैं, कुछ को तुलसी ने अबोध पूर्वक इसी लिये चुना कि उनसे वे अपने नैतिक तथा धार्मिक सिद्धांतो की

---

[१] अपने गुरुजनों के प्रति राम आज्ञाकारी हैं (वा. रा. १, १८, २८; रा. च. मा. १, २०५, ४)। राम विवाह के समय, ४००० गौओं की दान करके दशरथ ने ब्राह्मणों के प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय दिया था (वा. रा. १. ७२, २१-२३; रा. च. मा. १, ३३१, १)।

[२] सुमंत्र के घोड़े हिनहिनाकर राम का अभिनन्दन करते हैं (वा. रा. २, ५९; रा. च. मा. २, ९९, दो०)।

[३] राम के शस्त्रप्रहार से हताहत राक्षस हे राम! हे राम! कह कर एक दूसरे पर गिरते हैं (वा. रा. संस्करण 'ख' ३, ३१, ४६-४७)। रा. च. मा. (३. २०) में राम नाम लेने से इन राक्षसों का मोक्ष निश्चित है।

[४] दे० कागजयंत की कथा, (३, २) अध्याय ८ पृ० १७८-९; तथा वर्षा और शरद् ऋतु के वर्णन (४, १३-१७) अध्याय ९, पृ० २१०-२१३।

[५] दे० अध्याय ११ पृ० २४२।

पुष्टि कर सकते थे। मानस में वाल्मीकि की कई कथाओं का तो रूप ही बदल गया है, ऐसा चाहे कवि की धारणाओं के कारण हुआ हो, चाहे किसी अन्य आधार के प्रभाव के परिणामस्वरूप। यद्यपि तुलसीदास ने (बहुत मात्रा में) वाल्मीकीय परम्परा का आश्रय लिया है तथापि कुल मिला कर, जहाँ तक वाल्मीकिरामायण के मूल का प्रश्न है तुलसी ने पर्याप्तमात्रा में स्वतंत्रता प्रदर्शित की है।

आ—अध्यात्मरामायण तथा रामचरितमानस

वाल्मीकिरामायण के समान अध्यात्मरामायण का प्रभाव भी रामचरितमानस पर सम्यक् रूप से है। इन दोनों ही ग्रंथों के प्रभाव का क्षेत्र एक जैसा हैं, जिसके अन्तर्गत रामकथा के बाह्यभूत, बालकाण्ड का पूर्वार्द्ध व प्राय: सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड नहीं आते।

अवशिष्ट ग्रन्थ में अध्यात्मरामायण का प्रभाव लगभग सर्वत्र अनुभव किया जा सकता है, पर कहीं कम कहीं अधिक। रामचरितमानस व अध्यात्मरामायण की तुलना करने से, परिगृहीत स्थलों का संख्या व उन के महत्व के अतिरिक्त, तुलसीदास की रचनापद्धति तथा उनकी दार्शनिक और धार्मिक प्रवृत्तियों के विषय में भी अनेक अमूल्य संकेत प्राप्त होते हैं। अतएव इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन मानस को समझने में भी महत्वपूर्ण है।

मानस के, बालकाण्ड के शिवपार्वतीसंवाद व अध्यात्मरामायण के प्रस्तावनास्वरूप शिवपार्वती संवाद में कई समानताएँ हैं। फिर भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि इस के लिये तुलसीदास सीधे अध्यात्मरामायण के ही ऋणी हैं।[1] द्रष्टव्य यह है कि इस प्रकार की पुराण तथा तंत्र ग्रंथों के लक्षणों के समन्वय की पद्धति अध्यात्मरामायण में तो सामान्यरूप से प्राप्य है, पर वह रामचरितमानस जैसे ग्रन्थ के लिये उपयुक्त नहीं, क्योंकि हमारा ग्रन्थ न तो किसी अज्ञात लेखक की कृति ही है और, अध्यात्मविषयक भी कठिनाई से ही समझा जा सकता है—चाहे मानस का शिव-पार्वती संवाद अध्यात्मरामायण से लिया गया या नहीं, वह राम कथा को प्रस्तुत करने के लिये कृत्रिम भी है और कुछ मात्रा में अस्थिर भी।

वाल्मीकि की कथा को संक्षिप्त करने की चिंता से, तुलसीदास ने भी कथा को गुथा हुआ तथा सरल बनाने के लिये प्राय उसी प्रणाली को अपनाया है जो अध्यात्मरामायण में विद्यमान है[2]। इस प्रकार के संयोग अनेकों हैं पर उन के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि तुलसीदास अध्यात्मरामायण के ऋणी हैं, उन से यह अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि तुलसीदास अध्यात्मरामायण के मूल से भली भाँति परिचित थे।

इस आधार से परिगृहीत प्रसंगों की संख्या व उनकी और ब्यौरों की बहुलता, मानस के किसी भाग में अधिक तथा किसी भाग में कम है। राम के बालपन तथा युवावस्था की कथा में, इन दोनों ग्रन्थों में केवल ब्यौरे में ही अन्तर प्रतीत होता है ओर वहाँ भी तुलसीदास ने इन का इच्छानुसार

---

[1] दे० अध्याय ३ पृ० ५३-५४।

[2] उदाहरणत: वा. रा. १, सर्ग ३१-३४ का विषय (राम व लक्ष्मण का विश्वामित्र की कुटी में निवास, उनका प्रस्थान, तथा सोन नदी के तट पर मुनिद्वारा बताई कथाएँ) अध्यात्मरामायण (१, ५, ११) और रा. च. मा. (संस्करण 'ग' २१०, ४) में एक समान संक्षिप्त किया गया है।

अर्थ लगाया और विकास किया है।[1] दो सौ दसवें पद्य से लेकर, बालकाण्ड के अन्त तक तुलसीदास वाल्मोकिरामायण व अध्यात्मरामायण दोनों ही ग्रंथों से काफी दूर हैं।

अयोध्याकाण्ड में भी अध्यात्मरामायण की कथा से लिये स्थल कम ही हैं—केवल शारदा व हठी नाविक की कथा ही अधिक महत्वपूर्ण हैं, परन्तु इनको भी तुलसीदास ने, अपनी इच्छानुसार विकासित किया है।[2]

इस के विपरीत, अरण्यकाण्ड से लंकाकाण्ड तक में, जो मानस का प्रमुख भाग है, अध्यात्मरामायण से लिये स्थलों के अधिक उदाहरण उपलब्ध हैं—बालकाण्ड में आरब्ध शिव-पार्वती संवाद का विषय इन्हीं काण्डों में है।

कथावस्तु के विकास की दृष्टि से, मानस के अरण्यकाण्ड तथा किष्किन्धाकाण्ड में अध्यात्मरामायण का प्रभाव विशेष द्रष्टव्य है, इसका बोध पहले तो कथा के सामान्य आकार ही से हो जो संक्षिप्त और लगभग रूपेरखात्मक है। फिर कुछ विशेषताएँ भी अध्यात्मरामायण से प्रत्यक्ष परिगृहीत प्रतीत होती हैं। तुलसीदास ने राम के चरित्रों के मायवी लक्षण को रेखांकित कर, अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थ के दृष्टिकोण को, मानस के अन्य भागों की अपेक्षा इस भाग में कुछ अधिक अपनाया है—जैसे, उन्होंने सीताहरण से पहले सीता अग्नि में प्रवेश संबन्धी प्रसंग को स्वीकार किया है (अरण्यकाण्ड २४) ; व अपनी पत्नी के खो जाने पर साधारण मनुष्य की भाँति राम का दुःखी होना और सुग्रीव के प्रति क्षोभ केवल देखने मात्र का है, ऐसा कहा है। पात्रों के आचार व्यवहार में भी मानवता के स्थान पर कुछ आध्यात्मिकता की झलक मिलती है। निश्चय ही तुलसीदास इस दिशा में अध्यात्मरामायण की भाँति आगे नहीं बढ़े और उन्होंने उस प्रकार की पद्धति को अपनाने में विवेक से काम लिया है। फिर भी, मानस के अरण्य तथा किष्किन्धाकाण्ड की कथावस्तु में कुछ पाण्डित्य आजाने के कारण, और अयोध्याकाण्ड के समान प्रत्यक्षता व सजीवता न होने से, वे अध्यात्मरामायण से प्रभावित दीखते हैं।

सुन्दरकाण्ड में इसकी प्रतिक्रिया है—अध्यात्मगमायण से परिगृहीत स्थल कम भी हैं और महत्वहीन भो। कथावर्णन पुनः प्रधान होजाता है और पात्रों में भो स्वाभाविकता दृष्टिगोचर होता है।

यद्यपि लंकाकाण्ड में भो, अध्यात्मरामायण की कथावस्तु का प्रभाव है तथापि दोनों ग्रंथों में घटनाक्रम एक सा नहीं है। इसके अतिरिक्त तुलसीदास ने अध्यात्मरामायण की पद्धति से भो दूर हैं—ऐसा प्रतीत होता है कि राम के "वास्तविक स्वभाव" के विषय में, अध्यात्मरामायण में बाहुल्य से दी

---

[1] विष्णु के पास देवगण की उपस्थिति के प्रसंग में (अ. रा. १, २, ७-८), तुलसी ने परमात्म के रहस्यात्मक "निवास" पर एक विलक्षण विवाद प्रस्तुत किया है (रा. च. मा. १, १८५) दे० अध्याय ५ पृ० ८४। सम्भव है कि दो कथानकों को अध्यात्मरामायण से नकल की गई हो—एक राम के शैशव की कथा और दूसरी अहल्या की शापमुक्ति की। पहली कथा में भागवतपुराण का प्रभाव प्रत्यक्ष है (अ. रा. भी इसी पुराण से प्रभावित है); दूसरी कथा में प्रतीत होता है कि तुलसी ने कथा का कोई ऐसा परकालीन रूप अपनाया है जो कालिदास के अतिरिक्त, पद्मपुराण तथा कथासरित्सागर में भी उपलब्ध है—दे० अध्याय ६ पृ० १००-१०१।

[2] दे० अध्याय ७ पृ० १३१-१३९।

गई "श्रुतियों" को वे स्थान देना नहीं चाहते। रावण को छोड़कर सारे ही पात्रों के लिये राम की भक्ति ही एकमात्र प्रेरक है। इस में कृत्रिमता बहुत ही कम है।

रामचरितमानस के गीतात्मक तथा दार्शनिक भागों में—"स्तुति" और "गीता"—में अध्यात्मरामायण का प्रभाव कथावस्तु से भी अधिक है—मानस की कई स्तुतियाँ और उपदेश ऐसे हैं जिनमें वाल्मीकि से कुछ भी नहीं लिया गया पर उन सब का आदर्श था कम से कम अनुरूप प्रसंग अध्यात्मरामायण में प्राप्य है। इन दोनों ही ग्रंथों में एक जैसी परिस्थितियों में एक समान पात्र बोलना आरम्भ करते है। और सामान्यतया एक जैसी ही बात करते हैं। फिर भी, ऐसे उदाहरण भी हैं जिनमें विषय में भेद हो जाता है और यहाँ तक कि उसका स्वरूप ही परिवर्तित हो जाता है।

अध्यात्मरामायण से लिये हुए अधिकतर दार्शनिक वचन (अथवा गीताएँ) मानस के पहले तीन काण्डों में प्राप्त होते है। इन में से प्रत्येक "गीता" विषय की दृष्टि से अध्यात्मरामायण के अनुरूप है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानस के इस भाग में तुलसीदास ने अपने आदर्श का अनुकरण करने का प्रयत्न किया, बल्कि कहा जा सकता है कि कुछ सीमा तक उन्हों ने अध्यात्मरामायण के "अद्वैतवाद" को भी, अपनाया है। अध्यात्मरामायण का प्रभाव अयोध्याकाण्ड में कथावस्तु पर जितना ही कम है। दार्शनिक तत्वों की दृष्टि से वह उतना ही अधिक द्रष्टव्य है।

यद्यपि मानस के प्रथम तीन काण्डों की "गीताओं" का स्वरूप दार्शनिक है पर "स्तुतियों" में ऐसा नहीं—इन में सामान्यतया सैद्धांतिक पक्ष का विकास नहीं हुआ है और वे शब्दावली तथा प्रवाह में भागवतपुराण की स्तुतियों के समान हैं—ब्रह्मा, कौशल्या, अहल्या और परशुराम द्वारा की राम की स्तुतियों के विषय में यह कथन विशेषतया घटित होता है।[1]

किष्किन्धाकाण्ड से लेकर लंकाकाण्ड के अंत तक मानस में लम्बी "गीताएँ"[2] नहीं हैं। कविने यातो अध्यात्मरामायण के दार्शनिक तत्व को संक्षेप में कहा है या उसकी ओर कोई संकेत ही नहीं किया—जैसे अध्यात्मरामायण के किष्किन्धाकाण्ड में तारा के विलाप पर राम ने उसे समझाया है, पर मानस में, राम के इतने लम्बे भाषण को केवल एक चौपाई में ही संक्षिप्त कर दिया गया है (किष्किन्धाकाण्ड, ११, २३); इसी प्रकार अध्यात्मरामायण के सुन्दरकाण्ड में रावण को दिये हनुमान के अज्ञानविषयक (सर्ग ४, १७ इत्यादि) उपदेश को मानस में स्थान ही नहीं मिला।

मानस के सुन्दरकाण्ड व लंकाकाण्ड में, तुलसीदास अध्यात्मरामायण के दर्शनिक सिद्धांतों से बिल्कुल उदासीन रहे हैं। इन दोनों काण्डों में, अध्यात्मरामायण से प्रेरित उपदेशात्मक स्थल कम नहीं हैं, परिस्थितियाँ भी एक समान प्रस्तुत की गई हैं और एक जैसे पात्र भाषण भी करते हैं, पर उनके भाषण का विषय भिन्न है। राम की दिव्यता को तो दोनों काण्डों में सर्वत्र तथा सदा स्वीकृत किया गया है पर उसको "सिद्ध करने" का कष्ट नहीं किया गया, राम के चरित्र के मायावी लक्षण की व्याख्या करने का तो और भी कम प्रयास हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानस के लेखक ने

---

[1] रा. च. मा. १, १८६; १९२; २११; २८५; उपरिनिर्दिष्ट प्रथम तीन स्तुतियाँ हरिगीतिका छंद में हैं।

[2] केवल मन्दोदरीगीता को छोड़कर; यह भागवतपुराण के आधार पर है—दे० अध्याय ११ पृ० २४५-२४६।

दार्शनिकता का लगभग त्याग ही कर दिया और भगवान राम की कृपालुता की महिमा और उनकी भक्ति के प्रसाद बताकर ही वे संतुष्ट हैं। उन्हों ने राम के स्वभाव के रहस्य को जांचने का प्रयत्न नहीं किया। दूसरी ओर, इन दोनों काण्डों में, विशेषकर लंकाकाण्ड के उत्तरार्द्ध में तो ऐसे कथन भी हैं जो अध्यात्मरामायण के अद्वैतवाद के सिद्धांत के सर्वथा प्रतिकूल हैं।[1] उत्तरकाण्ड में तो इस सिद्धांत का खण्डन ही किया गया है, क्योंकि मानस के इस काण्ड में, अध्यात्मरामायण का तनिक भी प्रभाव नहीं।

इ—भागवतपुराण तथा रामचरितमानस

ग्रन्थ के आरम्भ में तुलसीदास ने महाभारत व पुराणों के मर्यादित लेखक व्यास की वन्दना की है—

> ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना॥
> चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे।...[2]

व्यास को प्रसिद्ध भागवतपुराण का प्रणेता भी समझा जाता है; यह पुराण रामचरितमानस के मुख्य मूलाधारों में से एक है—श्री राम नरेश त्रिपाठी[3] के अनुसार तुलसीदास ने "वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्मरामायण, भागवतपुराण, प्रसन्नराघव तथा हनुमन्नाटक का" विशेषतः प्रयोग किया है। इन आलोचक के अनुसार मानस के आधारों में भागवतपुराण को तीसरा स्थान प्राप्त है। इन्हों ने उदाहरणों की एक लम्बी सूची भी दी है जिससे भागवतपुराण पर मानस के अवलम्बन का सुव्यक्त बोध होता है (भाग १, पृ० २९४-३९२, इन तुलनात्मक पदों में सन्दर्भ संकेत नहीं दिये गए हैं)।

श्री त्रिपाठी द्वारा दी गई सूची लाभदायक तो है पर यहाँ इतना कहना आवश्यक है कि इस प्रकार की कोई भी सूची, चाहे वह कितनी भी पूर्ण क्यों न हो, मानस पर भागवतपुराण के प्रभाव को निश्चित करने में पर्याप्त नहीं। माना कि वाल्मीकि या अध्यात्मरामायण से रामचरितमानस की तुलना करके पदों को साथ साथ प्रस्तुत करना इतना कठिन नहीं क्योंकि उनका विषय एकही है और मानस व भागवतपुराण की तुलना करना अपेक्षाकृत अधिक कठिन है—भागवत के प्रधानपात्र राम नहीं पर विष्णु-हरि के दूसरे अवतार, कृष्ण हैं और तत्सम्बधी साहित्य भी भिन्न है। मानस पर भागवतपुराण का प्रभाव विशेष प्रकार का है—वह प्रत्यक्ष नहीं अपितु विषय-साम्यता के आकर्षण के कारण है। वह श्री त्रिपाठी द्वारा प्रकाशित (बहुत कुछ लम्बी) सूची द्वारा अनुमानित प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

बालकाण्ड के, अवतारों के "कारण", रामजन्म तथा शैशव से संबन्धित भागों में भागवत-पुराण का प्रभाव विशेषतया परिलक्षित होता है। राम के अवतारों की "व्याख्या" के निमित्त वर्णित अनेकों कथाएँ इस पुराण से प्रेरित हैं। राम के परमभक्त, मनु व प्रतापभानु अपने इष्टदेव को

---

[1] दे० अध्याय ११, पृ० २६५-२६६।

[2] रा. च. मा. १, १४, १-२।

[3] भाग १, पृ० २९०।

"वासुदेव" कहकर सम्बोधित करते हैं और यह कृष्ण का नाम है। मनु "द्वादशाक्षर वाले मंत्र" का पाठ करते हैं और यह भागवतों का विलक्षण मंत्र है। राम के शैशव के प्रसंग में तो भागवतपुराण का अनुकरण और भी अधिक प्रत्यक्ष है—बाल-राम के चित्रण का आदर्श बाल-कृष्ण हैं, यहाँ तक कि इन दोनों दिव्यबालकों में अंतर ही नहीं रह जाता। बालकाण्ड के अंतिम भाग में प्रस्तुत, राम की युवावस्था की कथा में भी इस प्रसिद्ध पुराण से कुछ परिग्रहण हैं।

यद्यपि बालकाण्ड में राम की स्तुतियों के पद अध्यात्मरामायण से प्रेरित हुए तथापि उनके विषय की दृष्टि से वे भागवतपुराण के कृष्ण-स्तुति विषयक पदों के अधिक समीप हैं। भागवतपुराण के समान, इन स्तुतियों में प्रयुक्त छन्द, कथा के छन्द (चौपाई) से भिन्न है। इसी प्रकार, अरण्यकाण्ड से लंकाकाण्ड तक की अधिक तर स्तुतियाँ हरिगीतिका या अन्य छन्दों में हैं। इसके विरुद्ध, अयोध्याकाण्ड में स्तुतियों की छन्दयोजना में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नही होता क्योंकि उसमें भागवतपुराण का बहुत ही कम प्रभाव है।

अरण्यकाण्ड से लंकाकाण्ड तक, मानस की कथावस्तु पर भागवत की प्रभाव निरन्तर अनुभव होता है यद्यपि प्रत्यक्ष परिग्रहण यत्र तत्र ही सुव्यक्त हैं—इन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण—किष्किन्धाकाण्ड में, वर्षा व शरद् ऋतुओं का वर्णन—सम्भवत: वास्तविक परिग्रहण न होकर, केवल स्थानानुरूपता की दृष्टि से दिया गया हो। ऐसा ही लंकाकाण्ड की "मन्दोदरी-गीता" के विषय में है। परन्तु कविता के इस भाग में सभी स्तुतियों ने भागवतपुराण की पद्धति व भाषा को लिया है और इन में राम को उन्हीं विशेषणों से सम्बोधित किया गया है जो विष्णु-कृष्ण के लिये भागवतपुराण में प्रयुक्त हुए हैं।

उत्तरकाण्ड में और विशेषकर, इस के उत्तरार्द्ध में, भागवत का प्रभाव विशेष ज्ञातव्य है—कृष्ण व राम की समानताएँ इस भाग में बहुत ही बढ़ गई हैं। फिर भी, सम्भव है कि तुलसीदास ने भागवतपुराण का प्रत्यक्ष प्रयोग न किया हो और किसी ऐसी साम्प्रदायिक रामायण का प्रयोग किया हो जो भागवतपुराण के भावों से ओतप्रोत रही हो। यदि उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध की पर ध्यान न भी दिया जाय तो भी यह निर्विवाद है कि रामचरितमानस के एक बड़े भाग पर—अर्थात् बालकाण्ड के मध्यभाग में (१, १२१-१२२), अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड के पूर्वार्द्ध (१-५२) में,—या कहना चाहिये कि आधा से कुछ कम कविता पर, भागवतपुराण की प्रभाव प्रचुरमात्रा में पड़ा है।

ई—शिवपुराण तथा रामचरितमानस

भागवतपुराण के विरुद्ध, शिवपुराण (अथवा उपपुराण)[1] का प्रभाव मानस के थोड़े से ही भाग—अर्थात् बालकाण्ड के शैव-प्रसंगों अथवा 'शिव-चरित' और 'नारद मोह'—पर पड़ा है। पर यह प्रभाव अधिक अविच्छिन्न तथा प्रत्यक्ष है।

मानस पर शिवपुराण का प्रभाव 'शिव-चरित' (सती-चरित) के पूर्वार्द्ध में और 'नारद-मोह' में अत्यधिक निकट का है और इन दोनों ग्रन्थों में शाब्दिक समानताएँ इतनी हैं कि यहाँ स्मृति से

---

[1] दे० भूमिका पृ० १९।

उद्धृत पदों का प्रश्न नहीं हो सकता, अपितु तुलसीदास की शिवपुराण के सबोध अनुकूल रहने का इच्छा प्रकट होती है—उन्हों ने सचेत रूप से शिवपुराण का अनुकरण किया है, चाहे यह पुराण उन्हें कण्ठस्थ रहा हो अथवा यह ग्रन्थ उनके समक्ष रहा हो।

पर इस अनुकूलता से एक समस्या उपस्थित होती है—मानस के लेखक ने किसी भी अन्य आधार का इस प्रकार अनुकरण नहीं किया। जब वाल्मीकि, अध्यात्मरामायण या भागवतपुराण से वे कुछ भी लेते है तो वे वाक्यों या उपमाओं को कुछ बदलने का प्रयत्न करते ही हैं, पर इसके विरुद्ध यहाँ प्रतीत ऐसा होता है कि वे पौराणिक कथा को यथासम्भव शब्दश: उद्धृत करना चाहते थे।

पौराणिक आधार को जैसा का तैसा रखने के प्रयास के साथ साथ उन्होंने उसे विषयानुरूप भी बनाया है—रामचरितमानस में परम ब्रह्म का स्थान शिव को नहीं, राम को प्राप्त है। जब विष्णु का प्राधान्य होता है तो उन्हें राम से अभिन्न बताया गया है—‘नारदमोह’ में ऐसा ही है। परन्तु ‘शिवचरित’ में राम व विष्णु में एकाकारता नहीं। मानस में शिवचरित की स्वरूप रामरञ्जित है वैष्णव नहीं।

मानस के ‘शिवचरित’ में कार्पेण्टर के अनुसार हमें तुलसीदास की सहनशीलता का प्रमाण प्राप्त होता है[1]। परन्तु “सहनशीलता” का यह अभिप्राय तो नहीं कि मानस के कवि किसी भी प्रसंग को (राम कथा के बाह्य होने पर भी) इतना अधिक विकसित कर देते अथवा उसको रामकथा के विषयानुकूल बनाने का कष्ट करते—वास्तव में बालकाण्ड के ‘शिवचरित’ का ध्येय सैद्धांतिक है—रामभक्ति में शैवमत का समावेश कर इस चरित द्वारा, वैष्णव और शैवों में प्राचीन विवाद के समाधान का प्रयत्न हुआ है।

भागवतों ने शिव को विष्णु-हरि का ‘महाभक्त’ बनाकर इस विवाद को शांत किया। प्रथम भक्त होने के कारण, भागवतों के लिये शिव भी पूजा के पात्र हैं। महाभारत के ‘नारायणीय’ खण्ड में शिव को भगवान का एक स्वरूप बताया है—जो कोई शिव की पूजा करता है वह भगवान की भी पूजा करता है (१२, ३४४)[2]। वैष्णव सुधारकों में से एक, विष्णुस्वामी ने भी अपने को शिव का अवतार बताया और ‘रुद्रसम्प्रदाय’ की नींव डाली। परन्तु शिव को चाहे “महाभक्त” माना जाय चाहे विष्णु हरि का स्वरूप, भागवतों के लिये वे और ब्रह्मा अव्यय नहीं हैं। भक्तमाला में दी गई “महाभक्तों” की सूची में शिव का नाम ब्रह्मा व नारद के पश्चात् आया है। शिव को राम का परम भक्त और शैव-कथाओं का एक रामरञ्जित संस्करण देकर, तुलसीदास शैवों का अपेक्षा, भागवतों के सिद्धांत की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं क्योंकि लौकिक वैष्णव धर्म के अनुसार राम और विष्णु एक हैं। इसीलिये, अर्धशताब्दी के पश्चात्, नाभाजी की भक्तमाला की व्याख्या करते हुए प्रियादास ने हरि के प्रति शिव की भक्ति को प्रदर्शित करने के लिये तुलसीदास के ‘सतीचरित’ का आश्रय लिया है।[3]

---

[1] ‘थिओलोजी ऑफ़ तुलसीदास’—पृ० ७१—“इट् इज़ टौलरेंस विच अलाऊज़ इट ए प्लेस एण्ड पोयेटिक एक्ज़्युबरेंस विच गिव्ज़ इट ए प्रौमिनेंस इन दैट बुक”।

[2] (भगवान् ने रुद्र से कहा)—“जो मुझे जानता है, वह तुझे भी जानता है। जो मेरा अनुयायी है वह तेरा भी अनुयायी है। हम दोनों में कोई अन्तर नहीं।”

[3] दे० अध्याय २ पृ० ५१।

फिर भी, शिव के प्रति भागवतों की जो परम्परागत धारणा है उस से रामचरितमानस में इन देवता के महत्व के विषय में विशदीकरण नहीं होता। मानस में सामूहिक रूपसे और अयोध्याकाण्ड में विशेषतया, शिव का स्थान अनूठा है—वे "महादेव" हैं और राम तथा सारा ही कुटुम्ब उनकी पूजा करता है। वे राम के केवल महाभक्त ही नहीं परन्तु राम को प्रिय भी हैं और राम की कृपा से ही विश्व के ईश्वर भी हैं। कई स्थानों पर तो यह भी कहा है कि शिव की भक्ति के बिना राम की भक्ति संभव नहीं। परन्तु यह कभी नहीं कहा गया कि शिव राम का ही स्वरूप हैं। उनका निरन्तर पृथक् व्यक्तित्व रहता है। अत एव मानस में शिव का लगभग वही स्थान है जो कि इन्हें सामान्यतया असाम्प्रदायिक हिन्दु धर्म में प्राप्त है। पर तुलसीदास के अनुसार, उनका यह स्थान, उनकी राम के प्रति अनन्य भक्ति के कारण है—यही बालकाण्ड के शिवचरित की उपदेश है। यदि शिव की पूजा के बिना कोई रामभक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता तो स्वाभाविक है कि रामकथा के लिये शिवचरित एक अनिवार्य तथा प्रारम्भिक भाग है।

शैवों को अपने मतानुकूल करने के प्रयास से तुलसीदास भागवतों से भी आगे बढ़ गये हैं। वे केवल शिव को ही नहीं अपितु शिवभक्ति को भी राम के धर्म में समन्वित करने का प्रयत्न करते हैं। इस मौलिक पर अस्थिर स्थिति से ही बालकाण्ड के 'शिवचरित' व 'नारदमोह' के परस्पर विरोध का समाधान किया जा सकता है। इसी के आधार पर मानस के लेखक की शिवपुराण में श्रद्धा की व्याख्या की जा सकती है—दोनों ग्रंथों की समानता—यद्यपि आँशिक—तुलसीदास के शैवधर्मनिष्ठ होने की परिचायक भी है।

उ—रामाश्रयी नाटक तथा रामचरितमानस

महानाटक या हनुमन्नाटक रामचरितमानस के "मुख्य मूलाधारों" में से एक है—सारे ही मानस में इस नाटक से लिये प्रसंग हैं। श्री रा. न. त्रिपाठी ने (बिना संदर्भ संकेतवाली) एक तुलनात्मक सूची प्रस्तुत की है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदास ने नाटक के दोनों ही संस्करणों का, अधिकतर मधुसूदनवाले संस्करण का, उपयोग किया है।

इन नाटकों में से अधिकतर ने सीतास्वयंवर तथा परशुराम की कथा को अधिक महत्व दिया है। मानस के लेखक ने बालकाण्ड के अंतिम भाग में इन नाटकों से बहुत कुछ लिया है। मानस में परशुराम की कथा से हमें ज्ञात होता है कि तुलसीदास कुछ द्विविधा में रहे क्योंकि नाटकों की परम्परा के अनुसार तो परशुराम एक भयंकर पात्र हैं और भागवतों की परम्परा के अनुसार उनको विष्णु-हरि का गौण अवतार माना गया है।

इन नाटकों में से अधिकतर में शृङ्गारिता व अलंकारिता एकसमान है। रामचरितमानस में शृंगार का सर्वथा बहिष्कार है यहाँ तक कि सीता के सौन्दर्य के वर्णन को भी बड़ी चतुराई से बचाया गया है। पर इसके विरुद्ध, जब कभी तुलसीदास ने किसी भी नाटक से कुछ लिया है तो उनकी शैली अलंकारिक हो गई है जो उनकी सामान्य सरल शैली के विरुद्ध है, उदाहरणत: बालकाण्ड के सीतास्वयंवर में और इससे भी बढ़कर प्रसन्नराघव से लिये सुन्दरकाण्ड के दृश्यों में। इस अंतिम नाटक से लिये गये प्रसंगों की संख्या से ज्ञात होता है कि तुलसीदास की दृष्टि में इस का बहुत आदर था।

ऊ—भुशुण्डिरामायण तथा रामचरितमानस

रामचरितमानस के व्याख्याकारों के अनुसार भुशुण्डिरामायण भी मानस के मुख्य मूलाधारों में से एक है, पर जब तक यह रामायण अनुपलब्ध व अगम्य है तब तक मानस पर उसके प्रभाव की मात्रा को आँकना असम्भव रहेगा। भुशुण्डिरामायण की सत्ता के विषय में कठिनाई से संदेह किया जा सकता है। जैसा कि हमने प्रदर्शित करने का प्रयास किया है मानस के उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध का आधार एक ऐसी रामायण रही होगी जिसका प्रणेता काग भुशुण्डि समझा जाता है और जिसकी रचना योगवसिष्ठ, अध्यात्म, या अद्‌भुतरामायण जैसी मध्यकालीन रामायणों के आदर्श पर हुई होगी। जहाँ तक मानस के अध्ययन से अनुमान लगाया जा सकता है, यह भुशुण्डि रामायण वल्लभसम्प्रदाय के किसी अनुयायी की रचना रही होगी और इस रचना का ध्येय (वैष्णव) सम्प्रदाय के दार्शनिक तथा धार्मिक सिद्धांतों का राम के धर्म से समन्वय करना रहा होगा। बाल-राम के परमभक्त, काग भुशुण्डि (योगवसिष्ठ में भुशुण्ड) ने पक्षिराज गरुड़ को रामभक्ति द्वारा मोक्ष के मार्ग का उपदेश दिया था। सभी मध्यकालीन रामायणों के समान इसमें भी रामकथा की कथावस्तु का सम्भवत: गौण स्थान थी और सैद्धांतिक तत्व की ही प्रधानता थी, तथा च योगवसिष्ठ के समान दार्शनिक सिद्धांतों के विवेचनार्थ दृष्टांत भी इस में दिये गये थे।

यदि तुलसीदास ने अपने महान ग्रन्थ में भुशुण्डि की कथा को स्थान दिया है और उसे राम कथा के प्रस्तुतकर्ताओं में प्रमुख बतायी है तो ऐसा लगता है कि भुशुण्डि के प्रति तुलसीदास का अत्यधिक आदर थी और वे उसे "राम-भक्ति" का गुरु समझते थे। पर मानस में भुशुण्डि का स्थान बहुत कुछ रहस्यमय है और महाकाव्य के विभिन्न भागों में वह विषम भी है।

बालकाण्ड के अंतिम भाग और अयोध्याकाण्ड में भुशुण्डि की चर्चा नहीं है, चाहे तो इसलिये कि इन के रचनाकाल में तुलसीदास भुशुण्डिरामायण की सत्ता से अनभिज्ञ थे या अगर जानते भी थे तो उन्हों ने उसका प्रयोग करने का विचार नहीं किया।

बालकाण्ड के प्रथम भाग में, भुशुण्डि कभी भी रामकथा के प्रस्तुतकर्ता के रूप में नहीं आता परन्तु दो बार अन्यपुरुष का प्रयोग कर उसका उल्लेख हुआ है। 'मनु-सतरूपाचरित' में मनु ने राम को 'भुशुण्डि-मन-मानस-हंस" (१, १४६, ३) कह कर सम्बोधित किया है। 'बालचरित' में शिव बताते हैं कि राम के जन्म के समय भुशुण्डि उपस्थित था। परन्तु यह अंश पुन: ढाला गया प्रतीत होता है।[1]

आमुख के द्वितीय भाग में शिव पर निर्भर, भुशुण्डि को रामकथा का प्रस्तुतकर्ता कहा है। यह अंश उत्तरकाण्ड की रचना के बाद का है। बालकाण्ड के १२० वें पद्य के सोरठे में, भुशुण्डि को शिव से पूर्व का प्रस्तुतकर्ता कहा जाता है पर यह बाद में जोड़ा गया जिससे उत्तरकाण्ड (७, ५२) में भुशुण्डि-गरुड़ संवाद की प्रसंग अनुचित न लगे। स्पष्ट है कि बालकाण्ड के प्रथम भाग की रचना के समय, तुलसीदास भुशुण्डि को बाल-राम के परमभक्त के रूप में जानते और आदरपूर्वक मानते थे परन्तु तब तक उन्हों ने रामचरितमानस के प्रस्तुतकर्ता के रूप में भुशुण्डि की कल्पना नहीं की थी।

---

[1] दे०, अध्याय ५ पृ० ९०।

इस के विरुद्ध, अरण्यकाण्ड से लंकाकाण्ड तक और उत्तरकाण्ड के पूर्वार्द्ध में, कभी रामकथा के प्रस्तुतकर्ता के रूप में भुशुण्डि की उपस्थिति समस्याजनक है क्योंकि भुशुण्डि-गरुड़ संवाद तो उत्तरकाण्ड के केवल ५३ वें पद्य से आरम्भ होता है।

इतना निश्चित है कि काव्य के इस भाग में भुशुण्डि नहीं अपितु शिव कथा के वास्तविक प्रस्तुतकर्ता हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार कथाप्रवाह में भुशुण्डि की इस प्रकार की अप्रत्याशित उपस्थिति का कोई महत्व नहीं और वह उपेक्षणीय है। डा० गुप्त का अनुमान है कि ये स्थल उत्तरकाण्ड की रचना के बाद और उत्तरकाण्ड के भुशुण्डि-गरुड़ संवाद को प्रसंगोचित सिद्ध करने के लिये जोड़े गये।[1] उनका कथन है कि इस प्रकार के भुशुण्डि द्वारा गरुड़ को सम्बोधित स्थल सदैव अनियमित पद्यों में आये हैं अर्थात् जिनमें दस से अधिक अर्धालियाँ हैं। परन्तु यह अंतिम तर्क दुर्बल है क्योंकि अरण्यकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक यह अनियमितता ही सामान्य नियम है और अधिकतर पद्यों में दस से अधिक अर्धालियाँ हैं। फिर यह भी देखने में आता है कि मूल का अर्थ परिवर्तन किये बिना भुशुण्डि के वाक्यों को हटादेना सदा सम्भव नहीं। साथ ही, उत्तरकाण्ड के पूर्वार्द्ध में, काग भुशुण्डि एक ऐसे लम्बे विषय का प्रस्तुतकर्ता है जो रामकथा का अंग है। अत: पुन: ढाले जाने की परिकल्पना संतोषजनक नहीं और फिर इससे सारी बात का विशदीकरण भी नहीं हो सकता।

अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड व सुन्दरकाण्ड में, जिन थोड़े से स्थानों पर भुशुण्डि उपस्थित होता है, वे एक प्रकार से कथा के सहारे सहारे विचारात्मक उद्धरणों के समान हैं। और "हे पक्षिराज ...." से आरम्भ होनेवाले गरुड़ को सम्बोधित पद्यों को हमारे विचार में, किसी विशेष मूलाधार के सूचक समझना चाहिये। यह मूलाधार सम्भवत: भुशुण्डिरामायण है।

लंकाकाण्ड में, भुशुण्डि के कथन और भी कम हैं (कुल मिलाकर तीन)। परन्तु वे कथावस्तु के बीच में आते हैं और अर्थ को बिना आघात पहुँचाये उनको हटा देना सर्वथा असम्भव है। शिव प्रमुख पात्र तो अवश्य हैं पर ऐसा आभास होता है कि यहाँ पर कवि भुशुण्डि व उसके सिद्धांत को उत्तरोत्तर महत्व देना चाहते हैं, क्योंकि हम देखते हैं कि लंकाकाण्ड के उत्तरार्द्ध में, उत्तरकाण्ड में उपलब्ध काग भुशुण्डि द्वारा दिये गये धर्मोपदेश की घोषणा है।

उत्तरकाण्ड के पूर्वार्द्ध में इस आधार का महत्व अधिक हो जाता है। एक लम्बे अंश में (१२-२१) कथा का प्रस्तुतकर्ता शिव नहीं भुशुण्डि है और जिन सिद्धांतों की वह उपदेश करता है, उत्तरार्द्ध में उन्हीं की व्याख्या है—कथा के प्रस्तुतकर्ता का परिवर्तन यहाँ प्रेरणा के परिवर्तन के साथ होता है।

बालकाण्ड के प्रथम भाग में और अरण्यकाण्ड से लंकाकाण्ड तक, काग भुशुण्डि का जो स्थान है वह उत्तरकाण्ड की रचना के बाद के "समावेश" की परिकल्पना की अपेक्षा, भुशुण्डिरामायण के प्रभाव को मानने से अधिक बोधगम्य है। बालकाण्ड के प्रथम भाग में भुशुण्डि को राम का 'महा भक्त' कहा गया है। तुलसीदास पहले से ही, भुशुण्डि की कथा तथा किसी रामायण के प्रस्तुतकर्ता के रूप में उस से परिचित थे। अरण्यकाण्ड से लेकर, वे कभी कभी भुशुण्डिरामायण को "उद्धृत" करते हैं और सम्भवत: उसका प्रयोग भी। तथ्य यह है कि अरण्यकाण्ड से लंकाकाण्ड तक ऐसे प्रसंग हैं जो

---

[1] गोस्वामी तुलसीदास—पृ० २६८।

विषय तथा सामान्यगति में उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध से मिलते जुलते हैं जिन में भुशुण्डि ही नायक है। यही प्रभाव लंकाकाण्ड के उत्तरार्द्ध में व्यक्त है और "भुशुण्डिरामायण" से ठीक पहले आनेवाले उत्तरकाण्ड के प्रथम ५० पद्यों में प्रधान है।

हमारे विचार में, रामचरितमानस की रचना में भुशुण्डिरामायण के इतने बढ़ते हुए आकर्षण की सहायता से ही उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध में भुशुण्डि को प्राप्त महत्व को समझा जा सकता है—यहाँ तक कि तुलसीदास के मत में, शिव द्वारा पार्वती को बताई रामकथा, भुशुण्डि द्वारा गरुड़ को बताई कथा में मिलती प्रतीत होती है, उन के लिये दोनों कथाएँ एक हैं और दोनों प्रस्तुतकर्ता अन्योन्यावलम्बित हैं। इस प्रकार यह स्वाभाविक ही है कि अंत में एक संवाद दूसरे से घुलमिल जाता। उत्तरकाण्ड के ५२ वें पद्य में यही हुआ है। उत्तरकाण्ड का शिवपार्वती संवाद और शिव द्वारा पार्वती को बताया 'गरुड़-मोह', तीसरे से छटे काण्डों में प्राप्त भुशुण्डि के संवादों की व्याख्या करते हैं, उनका कारण नहीं हैं।

२—मानस की रचना

इस समस्त विश्लेषण से यह ज्ञात हो जाता है कि रामचरितमानस के आधारों व उसकी रचना की समस्याएँ परस्पर सम्बन्धित व अवियोज्य हैं। प्रस्तुतकर्ताओं, पद्य व्यवस्था, शब्दावलि, कथावस्तु के सामान्य प्रवाह तथा उसके दार्शनिक व धार्मिक विषय के अनुसार ही सामग्री का चयन, तथा उसके अनेकों उपरिनिर्दिष्ट प्रयोगभेद हुए हैं। प्रयोग के इन भेदों का अध्ययन तथा तुलना के परिणामस्वरूप रामचरितमानस की रचना की कम से कम तीन प्रधान अवस्थाएँ ज्ञात होती हैं जिन्हें सरलतया पहचानने के लिये हम उन्हें 'रामचरित' 'शिवरामायण' और 'भुशुण्डिरामायण' कह सकते हैं।

क—"रामचरित"

श्री राम नरेश त्रिपाठी व डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने यह स्वीकार किया है कि अयोध्याकाण्ड रामचरितमानस के अन्य काण्डों से पहले का है; इन दोनों विद्वानों का मत है कि आदिम केन्द्रबिन्दु के आधार पर ही पूरे काव्य का विकास हुआ है। श्री त्रिपाठी के अनुसार यह केन्द्रबिन्दु अयोध्याकाण्ड था; इसके विरुद्ध डा० गुप्त का प्रस्ताव है कि इस प्रथम संस्करण ("प्रथम पाण्डु लिपि") के साथ बालकाण्ड का अंतिम भाग (२०६-२६१) भी जोड़ना चाहिए, क्योंकि रचना का दृष्टि से यह भाग अयोध्याकाण्ड से मिलता जुलता है।[1] इस प्रकार जिस स्वरूप में मानस हमें उपलब्ध उस में इस "प्रथम पाण्डु लिपि" के अवशिष्ट लगभग ५०० पद्य हैं। इन्हीं समीक्षक का यह भी अनुमान है कि अंतिम छंद ही (उत्तरकाण्ड १३०, छन्द २) जहाँ "सतपंच चौपाई" का उल्लेख हैं इस आदिम ग्रन्थ की प्राचीन पुष्पिका रही होगी।[2]

---

[1] दे० अध्याय ७, पृ० १७० इत्यादि।

[2] गोस्वामी तुलसीदास पृ० २७१-२७२; दे० अध्याय १३, पृ० ३०० पादटिप्पणी ४।

इस केन्द्रबिन्दु की सत्ता में सन्देह नहीं; परन्तु हमारे विचार में इस के आकार में बालकाण्ड के उत्तरार्द्ध (१८४-३६१) व अयोध्याकाण्ड के अतिरिक्त, आमुख का सम्पूर्ण पूर्वार्द्ध (बालकाण्ड १-२९) और अरण्यकाण्ड के पहले छ पद्यों को भी सम्मिलित करना चाहिये। फिर भी, नवीन संस्करण में "रामचरित" को समाविष्ट करते समय, बालकाण्ड के १८४ वें से २०२ वें पद्यों और अरण्यकाण्ड के पहले छ पद्यों को पुन: ढालागया होगा। आमुख की सूचना के आधार पर[1] यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस आदिम कविता का नाम 'रामचरित' था और उसकी रचना सं० १६३१ (अर्थात् १५७४ ई०) से पूर्व, अयोध्या में हुई। इस समय, यह चरितमात्र थी वे इस कविता का ध्येय न धार्मिक सिद्धांतों को प्रस्तुत करना था और न उसका कोई आध्यात्मिक पक्ष ही था; वह तो केवल अपनी आत्मा के संतोष के लिये राम के भक्त द्वारा बताई एक कथा थी—एक पावन कृति, पर "धर्म ग्रंथ" नहीं। इस की रचना के लिये जिन पूर्वजों का उल्लेख किया गया है उन में सर्वप्रथम वाल्मीकि, फिर पुराणों के प्रणेता व्यास तथा महानाटक के रचयिता हनुमान थे। इस के अतिरिक्त, कवि ने अन्य ग्रन्थों के प्रयोग को भी अपनाया है और इन कृतियों में अध्यात्मरामायण तथा प्रसन्नराघव की गणना अवश्य होना चाहिए।

भाषा तथा छन्दयोजना की दृष्टि से यह "रामचरित" कवि की युवावस्था की लघुकृतियों से, विशेषकर जानकीमंगल से, मिलता जुलता है, डा० गुप्त के अनुसार यह 'मंगल' संवत् १६२७ (अर्थात् १५७० ई०) की रचना है।[2] यह 'चरित' प्राय: शुद्ध अवधी में है और ब्रज भाषा के रूप बहुत कम प्रयुक्त हैं। प्रत्येक पच्चीस पद्यसमूह के पश्चात् हरिगीतिका छंद के प्रयोग से कथावस्तु में छन्द सम्बन्धी नियमितता आगई है। अवशिष्ट मानस में छन्दनियमितता का यह क्रम लुप्त होगया है। इस विलक्षण छन्दयोजना का अभिप्राय यह है कि "रामचरित," इस काल की अन्य कविताओं के समान, आरम्भ में एक ग्रंथ के रूप में लिखा गया और काण्डों में उसका विभाजन करने की पद्धति बाद में सूझी, अयोध्याकाण्ड की वन्दना को बालकाण्ड की वन्दना के अनुसार बनाया गया होगा जिससे वे दोनों समान हो गईं। एक बात जो इसी दिशा में संकेत करती है वह यह है कि रामचरितमानस के प्रथम दो काण्डों को विशेष नाम नहीं दिये गये।[3] दोनों काण्डों की पुष्पिकाएँ भी अन्य पाँच काण्डों का पुष्पिकाओं के आधार पर पुन: बनी प्रतीत होती हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि "रामचरित" के आदिम आकार में प्रवासी राम के अत्रि आश्रम में पहुंचने तक का वर्णन था, अर्थात् उसकी सीमा ठीक वही थी जो वाल्मीकिरामायण के "ग" संस्करण की है। ऐसा या तो इसलिये हुआ होगा कि तुलसीदास इससे आगे बढ़ना नहीं चाहते थे अथवा कदाचित् इसलिये कि ग्रंथ समाप्त नहीं हुआ। जो भी हो, अरण्यकाण्ड के छटे पद्य के पश्चात् इस बात का पता नहीं लगता। सम्भव है कि कवि के वाराणसी जाने के कारण इस "चरित" की रचना में विघ्न पड़ा हो। यह सर्वविदित है कि रामचरितमानस का किष्किन्धाकाण्ड इसी नगरी में

---

[1] रा. च. मा. १, ३४, २-३; दे० अध्याय १ पृ० २०-२२।

[2] दे० अध्याय ६ पृ० १२४-१२५।

[3] दे० अध्याय ६ पृ० १२२ व १२६; अध्याय ७ पृ० १६३-१६४।

रचा गया और सम्पूर्ण ग्रंथ वाराणसी में समाप्त हुआ। अतः "रामचरित" को पुनः ढाल कर एक ऐसे नवीन काव्य में समाविष्ट किया होगा जिसकी योजना भिन्न थी।

ख—"शिवरामायण"

यह निश्चित रूप से कहना असम्भव है कि तुलसीदास को, शिव द्वारा पार्वती के लिये राम कथा प्रस्तुत करवाने का विचार कब आया। जो भी हो, इस प्रकार शिव का इस कथा को प्रस्तुत करना महत्वहीन नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि इस समय से लेकर तुलसीदास की यह अभिलाषा रही होगी कि उनकी कृति वास्तव में एक ऐसा "धर्मग्रन्थ" बन जाय जो तंत्र तथा कई वष्णव ग्रंथों के अनुमानित प्रतिपादक शिव के अधीन हो—और इस प्रकार "चरित" एक "धर्मग्रन्थ" बन गया।

बालकाण्ड के १०५ वें पद्य में प्रस्तावित शिव-पार्वती संवाद का क्षेत्र, एक ओर तो राम के बालपन-विषयक (१, १०५-२०५)[1] बालकाण्ड के प्रथम भाग तक, और दूसरी ओर, अरण्यकाण्ड से लंकाकाण्ड व उत्तरकाण्ड के पूर्वार्द्ध (१-५२) तक है। बालकाण्ड के प्रथम भाग में याज्ञवल्क्य और अरण्यकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक भुशुण्डि जैसे गौण प्रस्तुतकर्ताओं की संक्षिप्त उपस्थिति के बावजूद भी, इन अंशों में शिव, कथा के प्रणेता तथा प्रमुख प्रस्तुतकर्ता के रूप में उपस्थित होते हैं।

बालकाण्ड के इस प्रथम भाग में, जो शिवरामायण की आरम्भावस्था है हम देखते हैं कि कुछ अपवादों को छोड़कर पद्य प्रायः नियमित ही हैं। छन्दे पच्चीसवें पद्य समूह के पश्चात् नहीं आते, पर वे सभी हरिगीतिका हैं। इस प्रकार की छन्दोव्यवस्था से और प्रस्तुतकर्ता के रूप में भुशुण्डि की अनुपस्थिति से, शिवरामायण को पूर्वार्द्ध में और आदिम केन्द्रबिन्दु में निकटता आजाती है। परन्तु यहाँ भागवतपुराण का प्रभाव बहुत ही अधिक व्यक्त है, और कवि कुछ साम्प्रदायिक मूलाधारों का भी कदाचित् भुशुण्डिरामायण का प्रयोग करते प्रतीत होते हैं।

इसके विरुद्ध, अरण्यकाण्ड से लंकाकाण्ड तक, अधिकतर पद्यों में दस से अधिक अर्धालियाँ हैं और छंदों में हरिगीतिका के अतिरिक्त और भी ऐसे छन्दों (तोमार, तोटक इत्यादि) का प्रयोग हुआ है जो अभी तक प्रयुक्त नहीं हुए थे। वाल्मीकि से भिन्न अन्य आधार जैसे भागवतपुराण, अध्यात्म-रामायण तथा अन्य मध्यकालीन रामायणों का प्रभाव प्रधान है। भागवतपुराण का अनुकरण सर्वत्र व्यक्त है और काग भुशुण्डि कई बार प्रस्तुतकर्ता के रूप में बीच में आता है; (कदाचित् केवल सुन्दरकाण्ड को छोड़कर) उपदेशात्मक तत्व के कारण कथा का महत्व कम हो गया है; परन्तु राम के उदात्त देवत्व का पक्षपात और कथा का एकांगित्व उत्तरोत्तर स्पष्ट होता जाता है—सम्पूर्ण बातों के ध्येय, राम की आराधना, उनकी कृपा की अभिव्यक्ति, तथा उनकी भक्ति के सुफल हैं। बालकाण्ड के प्रथम भाग के समान कृष्णरञ्जित वातावरण यहाँ अत्यधिक स्पष्ट है।

इस प्रकार, "रामचरित" को अपने आंचल में समाविष्ट करनेवाली यह "शिवरामायण" एक प्रकार की साम्प्रदायिक रामायण है जिसे शिव ने रामभक्तों को उपदेश देने और उनका उत्थान

---

[1] ऐसा प्रतीत होता है कि राम के जन्म तथा शैशव की कथा (१, १८४-२०५) आदिम रामचरित में रही होगी और नयी योजना के अनुसार उसको पुनः ढाला गया। दे० ऊपर पृ० ३२०।

करने के लिये कहा क्योंकि केवल रामभक्त ही इस कथा का श्रवण करने योग्य हैं। इस "श्रुति" का आध्यात्मिक लक्षण पार्वती को दिये शिव के कई उपदेशों में दीखता है। स्वयं तुलसीदास (१, ३०) ने कहा है कि वे अपने गुरु से आप्त राम की इस "रहस्यात्मक कथा" के व्याख्याकार या "अनुवादक" ही होना चाहते हैं।[१] "रामचरित" के प्रस्तावनास्वरूप आमुख के प्रथम भाग की और 'शिव रामायण' या 'भुशुण्डिरामायण' से सम्बन्धित उसके दूसरे भाग की विषमता से ही दृष्टिकोण के परिवर्तन का काफ़ी प्रमाण मिल जाता है।

अब जानना यह है कि क्या इस "शिवरामायण" में बालकाण्ड का याज्ञवल्क्य द्वारा प्रणीत माना जानेवाला "शिवचरित" (१, ४४-१०४) समाविष्ट था या नहीं। सिद्धांततः बालकाण्ड का याज्ञवल्क्य-भारद्वाज-संवाद शिवपार्वती-संवाद का उपक्षेप है। स्वयं याज्ञवल्क्य ने 'शिवचरित' को इस रामकथा का प्रारम्भिक भाग कहा है। जिसे उन्हों ने भारद्वाज के संदेहों का समाधान करने के लिये सुनाने का बिचार किया।[२] पर तथ्य यह है कि याज्ञवल्क्य रामकथा के प्रस्तुतकर्ता नहीं हैं और नही वे "शिवचरित" के अंतर्गत आते हैं—भारद्वाज के साथ उनका संवाद 'शिवचरित' को बाकी काव्य से जोड़ने का एक प्रकार का साधन है। बालकाण्ड के प्रथम भाग में याज्ञवल्क्य की क्षणिक उपस्थिति होती है और फिर वे पूर्णतया लुप्त हो जाते हैं। भारद्वाज से उनका संवाद समाप्त नहीं होता, और वह त्रिशंकुवत् रह जाता है। अंतिम उपसंहार तक में उनका उल्लेख नहीं है। आमुख के उत्तरार्द्ध में (१, ३०) कहा गया है कि याज्ञवल्क्य ने जो कथा भारद्वाज को बताई वह उन्हें भुशुण्डि से प्राप्त हुई—इस कथन का स्पष्ट तात्पर्य यह है कि जैसे तैसे याज्ञवल्क्य का भी रामचरितमानस के प्रस्तुतकर्ताओं में गणना हो सके। 'शिवचरित' को राम की कथा से सम्बन्धित करने के लिये यदि तुलसीदास ने इस प्रकार के साधन को अपनाया है तो इस का अभिप्राय यह है कि यह प्रसंग बाद में जोड़ा गया। दूसरी ओर, भुशुण्डि के द्वारा कथित रामायण में (उत्तरकाण्ड ६४-६८) शिवचरित की कोई चर्चा नहीं है, कदाचित् उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध की रचना के पश्चात् यह प्रसंग बालकाण्ड में जोड़ा गया। बालकाण्ड के याज्ञवल्क्य-भारद्वाज संवाद और उत्तरकाण्ड के शिवपार्वती संवाद[३] की समानताओं से यह संकेत मिलता है कि इनमें से कोई सा एक संवाद दूसरे के आदर्श पर बना—परन्तु प्राथमिकता सम्भवतः उत्तरकाण्ड के संवाद की है।

इस परिकल्पना की एक कठिनाई है। बालकाण्ड के प्रथम भाग में याज्ञवल्क्य कई बार प्रस्तुतकर्ता के रूप में उपस्थित हुए हैं और रामचरितमानस का यह भाग उत्तरकाण्ड से निश्चय ही पहले लिखा गया। वे 'नारद मोह' (१, १२४ सोरठा, और १२७, ४), 'मनु-सतरूपाचरित' (१, १४१, ४ दोहा), 'प्रतापभानुचरित' (१, १५२ दोहा; १५३), 'रावणचरित' (१, १७५ दोहा, १७६) की प्रस्तावना में अकस्मात् ही बोलने लगते हैं। परन्तु १२४ वें पद्य का अतिरिक्त सोरठा निश्चय ही बाद मे जोड़ा गया, अन्य कथाएँ पर्याप्तमात्रा में असम्बद्ध हैं और याज्ञवल्क्य का कार्य केवल उनमें सम्बन्ध जोड़ना ही प्रतीत होता है।

---

[१] दे० अध्याय १ पृ० १७।

[२] दे० अध्याय २ पृ० २७-२८।

[३] दे० अध्याय १३ पृ० २८२-२८४।

बहुत सम्भव है कि बालकाण्ड के इस भाग को 'शिवचरित' के समावेश के पश्चात् फिर ढाला गया हो।

आमुख के दूसरे भाग में, 'शिवचरित' के प्रमुख विषय, शिव व पार्वती के विवाह का व प्रस्तुतकर्ता याज्ञवल्क्य का उल्लेख हुआ है। इसका निष्कर्ष यह हुआ कि आमुख का यह भाग बालकाण्ड में इस चरित के समावेश के निश्चय ही बाद का है।

शिवरामायण सात काण्डों में विभाजित थी, पर क्या तुलसीदास ने उसको 'रामचरितमानस' अर्थात् रामचरित का मानसरोवर (जिसके सात काण्ड इस मानस झील के सात सोपान हैं) नाम देने का विचार उत्तरकाण्ड की भुशुण्डिरामायण की रचना से पहले किया था? यदि सातों काण्डों की पुष्पिकओं को जो कदाचित् बाद में जोड़ीं गईं, पृथक् रखा जाय, तो ज्ञात होगा कि इस महाकाव्य के शीर्षक "रामचरितमानस" का उल्लेख (उत्तरकाण्ड पद्य ५२-५३ के सूचक बालकाण्ड १२० वे पद्य के सोरठे के अतिरिक्त) आमुख के दूसरे भाग में (१, ३५) और उत्तरकाण्ड (११३) के भुशुण्डिचरित में हुआ है। उत्तरकाण्ड के ११३ वें पद्य के समान, बालकाण्ड के १२० वें पद्य के सोरठे में, रामचरितमानस की कथा का प्रणेता काग भुशुण्डि को बताया गया है। उसने यह कथा लोमश से ग्रहण की और गरुड़ को बताई अर्थात् वास्तव में भुशुण्डिरामायण का ही नाम 'रामचरितमानस' है। तुलसीदास की कृति का यह शीर्षक 'भुशुण्डिरामायण' के समावेश के पश्चात् ही पड़ा होगा क्योंकि सिद्धांततः इन दोनों में एकता है।

ग—भुशुण्डिरामायण

उत्तरकाण्ड का अंतिम भाग (७, ५३-१३०), जिसमें काग भुशुण्डि नायक तथा प्रधान प्रस्तुतकर्ता है, शेष रामचरिमानस से भिन्न है और 'शिवरामायण' से भी यद्यपि इस रामायण से उसे कृत्रिमतया सम्बन्धित किया गया है। इस नवीन "रामायण" को पहली रामायण में समाविष्ट करने में कवि को जो कठिनाइयाँ हुईं उनसे और समावेश के कारण उत्पन्न विरोधों से यह स्पष्ट है कि उत्तरकाण्ड की "भुशुण्डिरामायण" की सम्पूर्ण ग्रन्थ की योजना में कोई स्थान नहीं था।[1] फिर भी, यह मानने का आवश्यकता नहीं कि 'शिवरामायण' का समाप्ति और उसके पश्चात् आनेवाली 'भुशुण्डिरामायण' का रचना के बीच में कोई 'व्यवधान' रहा होगा। हम देख चुके हैं कि अरण्यकाण्ड से ही, शिव कभी कभी भुशुण्डि का उल्लेख करते हैं। जहाँ तक आकार तथा विषय का सम्बन्ध है लंकाकाण्ड का उत्तरार्द्ध और उससे भी अधिक, उत्तरकाण्ड का पूर्वार्द्ध भुशुण्डिरामायण से बहुत मिलते जुलते हैं—ये अंश इस नायक के तथा उसके धार्मिक विचारों के तुलसीदास पर विपुल प्रभाव के परिचायक हैं अत एव इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि गोस्वामीजी ने अपनी कृति में भुशुण्डि चरित और रामभक्ति परक भुशुण्डि-गरुड़ संवाद को वैसे का वैसा ही देदिया जैसा कि उन्होंने उस ग्रंथ में पाया जिसे मर्यादानुसार भुशुण्डि-रामायण की संज्ञा दी जाती है।

आपाततः इस भुशुण्डिरामायण में शिव ने पार्वती को राम की वही कथा (रामचरितमानस) दोहराई जिसको उन्हों ने भुशुण्डि से पाया—मानस के उत्तरकाण्ड (५७) में यही कहा गया है।

---

[1] दे० अध्याय १३, पृ० ३०२ इत्यादि।

परन्तु सम्पूर्ण कविता (शिवरामायण) में शिव को उस कथा का प्रणेता बताया है जिसे उन्हों ने उमा को बताया, और उन्हों ने किसी अन्यव्यक्ति का आश्रय भी नहीं लिया। अंतिम उपसंहार (उत्तरकाण्ड १२६-१३०) यह प्रमाणित करता है कि तुलसीदास शिव की प्राथमिकता सुरक्षित रखना चाहते थे। आमुख का दूसरा भाग यह प्रदर्शित करता है कि तुलसीदास को उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध व शेषकाव्य के विरोधों की चेतना थी; अतएव उन्हों ने समन्वय की ओर प्रयत्न किया और शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज, और भुशुण्डि-गरुड़ के संवादों को स्थान देते हुए भी शिव का प्राथमिकता सुरक्षित रखी—उन्हों ने कल्पना की कि **भुशुण्डि ने रामचरितमानस को शिव से ग्रहण** किया और तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य को बताया—यह वास्तव में समाधानायोग्य विरोधों का परिहार करने के लिये काल्पनिक कथन है। इस प्रकार भुशुण्डि द्वारा गरुड़ को बताया गया 'रामचरितमानस' और शिव द्वारा पार्वती को बताई गई 'शिवरामायण' अन्ततो गत्वा एक होगई। परन्तु बाद की इस एकता को मान लेने पर भी इन दोनों रामायणों की विषमताओं में संदेह नहीं रह जाता। इसी प्रकार, रामचरित के मानसरोवर के चरण, सोपानस्वरूप सात काण्डों की पुष्पिकाएँ भी सब से अंत में जोड़ी गई होंगी।

यदि रामचरितमानस की रचना की यही पद्धति रही हो और यदि आमुख का दूसरा भाग कविता का अर्वाचीनतम भाग है तो बालकाण्ड के ३५ वें पद्य में दी गई संवत् १६३१ की तिथि का क्या अर्थ लगाया जाय?[1] हम देख चुके हैं कि 'रामचरित' की रचना इस तिथि से निश्चय ही पहले हुई। कदाचित् शिवरामायण के आरम्भ की तिथि हो। पर फिर, यह मानना होगा कि तुलसीदास ने अपने पण मोड़े और वर्तमान काल का अयथार्थ प्रयोग किया। यदि "संबत सोरह सै एक तीसा। करउँ कथा. . . ." में वर्तमान का अर्थ वर्तमानकालिक ही है तो यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि संवत् १६३१ से तात्पर्य उस समय से है जब कि काव्य का अंतिम रूप निर्धारित हुआ था अर्थात् वह लगभग समाप्त हो चुकाथा। और प्रसंग को देखते हुए यह अंतिम परिकल्पना ही अधिक सम्भावनीय प्रतीत होता है। जो भी हो, एक बात निश्चित है—कि इस महान काव्य की रचना कई वर्षों में हुई होगा। आमुख में दी इस १६३१ संवत् की तिथि को सामान्यतया प्रारम्भिक तिथि माना जाता है। पर काव्य के अर्वाचीनतम भाग में होने से और "आरम्भ" की ओर संकेत करने के कारण (". . . अवधपुरीं यह चरित प्रकासा") यह असम्भव नहीं कि वास्तव में यह काव्य की समाप्ति की तिथि हो।

रामचरितमानस का महत्व

इस प्रकार के विविध और समृद्ध ग्रंथ को सरलतया न तो श्रेणीबद्ध किया जा सकता है और न ही परिभाषाबद्ध। रामचरितमानस का गम्भीर रहस्य और उसका वास्तविक अर्थ क्या है? कवि ने किस ध्येय से इसकी रचना हाथ में ली? और इसकी रचना से उसका अभिप्राय क्या था? श्री श्यामसुन्दरदास द्वारा उद्धृत 'मूल गोसाई चरित' में बताई कथा के साक्ष्य पर ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत पहले से ही, कवि के समनागरिकों को इस काव्य के श्रेणीबद्ध करने में संकोच था। रामचरित-

---

[1] दे० अध्याय १ पृ० १९ इत्यादि।

मानस का सच्चा महत्व जानने के लिये शाम को एक मंदिर में, श्रुति, स्मृति और पुराणों—सब के नीचे इस ग्रंथ को रखा गया और प्रात:काल यह देखा गया कि शिव ने इस को सब से ऊपर रख दिया।[1]

मानस के महत्व की समस्या अब भी अनिश्चित है और प्रस्तुत अध्ययन इसका कोई अंतिम समाधान नहीं कर सका है—इस विश्लेषण से व्यक्त है कि रामचरितमानस को समष्टि रूप मानकर उसके विषय में कुछ कहनी कठिन है क्योंकि उसके अनेक भागों में विविधता है। फिर भी सामूहिक दृष्टि से इस कविता में गूढ़ एकरूपता है जो लेखक की प्रतिभा और मौलिकता अथवा उनके संतचरित के कारण ही नहीं अपितु विशिष्ट लक्षणों व विशेषप्रवृत्ति के कारण है। उपसंहार में, इस प्रवृत्ति की संक्षिप्त व्याख्या की जा सकती है।

रामचरितमानस और उसके मूल आधारों की तुलना करने से व्यक्त है कि यह कविता न तो प्रबंध काव्य है, न वाल्मीकिरामायण की भाँति काव्य है, न योगवासिष्ठ और अध्यात्मरामायण के समान दार्शनिक काव्य है, यद्यपि इन सब के समान उसमें कई बातें हैं। सर्वप्रथम और प्रधानतया यह "भक्ति" से प्रेरित एक रचना है। कदाचित् डा० बलदेव प्रसाद मिश्र का यही अभिप्राय है जब कि वे कहते है कि रामचरितमानस "राम और उनके भक्तों की कथा है"। आमुख में तुलसीदास ने स्वयं भी यही समझाया है कि राम की कथा कहने की प्रेरणा उन्हें राम की भक्ती से ही मिली—इस भक्ति न ही उन्हें कवि बना दिया और इसीसे उनकी दृष्टि में इस रचना का महत्व है।[2] इसकी रचना उन्होंने अपने आत्मसंतोष के लिये तो की ही है पर उन सब के आध्यात्मिक कल्याण के लिये भी जो इस कथा का श्रवण करेंगे और उसका पाठ करेंगे। यह कथा सब को पावन करेगी और शरीर व आत्मा के सब दु:खों का हरण करेगी क्योंकि "एहि महँ रघुपति नाम उदारा"[3]. . .

एक अर्थ में, रामचरितमानस सिद्धांत प्रतिपादक ग्रंथ है—परन्तु इस सिद्धांत प्रतिपादन का अभिप्राय न तो राम की दिव्यता से है, न उपनिषदों ब्रह्म-आत्मन् के साथ उनकी एकता बताना, न अद्वैत के आधार पर रामधर्म की स्थापना करना है। यदि यह ग्रंथ कुछ भी "प्रमाणित" करना चाहता है तो केवल यह कि प्रभु राम की कृपा अनन्त है और उनकी भक्ति उत्कृष्ट व विश्वकल्याण का साधन है। क्षुद्र अथवा महान्, पुण्य करनेवाला अथवा पापी, पुनीतात्मा अथवा हीनात्मा सब के लिये राम की कृपा का प्रसाद—निश्चित है। जाति या किसी विशेष सम्प्रदाय अथवा धार्मिक संघ का अनुकरण, किसी को इस पथ के अयोग्य नहीं करता। तुलसीदास के अनुसार उसमें शैव भी प्रवेश पा सकते हैं, और वेद में आस्था न रखने के कारण मर्यादा से संबन्ध तोड़ने वाले वाममार्गी ही इस के बाहर रहते हैं। तुलसीदास लोमश जैसे सम्प्रदायानुयायियों भी भर्त्सना करते हैं। रामचरितमानस के अनुसार वेद में अनास्था और सम्प्रदायों की बहुलता ही कलियुग के सब से बड़े दोष हैं। तुलसीदास की धार्मिक धारणा का विलक्षण आधार, मर्यादा के आदर से मुक्त विभिन्न धर्मों का समन्वय है।

---

[1] दे० श्यामसुन्दरदास—गोस्वामी तुलसीदास पृ० १२२।

[2] रा. च. मा. १, ८-१०।

[3] वही १, १०, १।

इस प्रवृत्ति की दृष्टि से रामचरितमानस मध्यकालीन रामायणों से भिन्न है क्योंकि योगवासिष्ठ, अध्यात्मरामायण, अद्भुतरामायण अथवा भुशुण्डिरामायण, सब की सब एक एक विशिष्ट दार्शनिक सिद्धांत के आधार पर रामधर्म की स्थापना करना चाहती हैं। इसके विपरीत तुलसीदास हिन्दुधर्म के धार्मिक, दार्शनिक या नैतिक रिक्थ में से किसी की बलि नहीं देना चाहते। उनकी रामभक्ति में न केवल वैष्णवधर्म अपितु हिन्दुमर्यादा का अभिन्न अंग असाम्प्रदायिक शैवधर्म भी समाविष्ट है। इस प्रकार रामचरितमानस एक विशाल यद्यपि जटिल समन्वयात्मक ग्रंथ प्रतीत होता हैं और भागवतपुराण का स्मरण कराता है। भागवतपुराण के व्यापक स्वरूप की चर्चा करते हुए, ब्युर्नूफ़ ने ठीक ही कहा था कि किसी भी यूरोपीय साहित्य की कृति से उसकी तुलना नहीं की जा सकती[1]—पर इसके विपरीत भारत में तुलसीदास ने भागवत को आदर्श ही नहीं माना उसका अनुकरण भी किया है।

हमारा विश्वास है कि भागवतपुराण की सत्ता और उत्तरभारत में उसके प्राचीन परम्परागत (तथा आधुनिक) विशेष आदर से ही रामचरितमानस के उद्गम और उसके प्रमुख लक्षणों की व्याख्या की जा सकती है। भागवत के प्रणेता ने विष्णु-हरि के अवतार, कृष्ण को केन्द्र मानकर वैष्णव सम्प्रदायों और विशेषकर उन प्राचीन भागवतों का प्रेरणा और उत्तेजित आस्तिकता को परिशुद्ध रूप में प्रस्तुत किया है जिन के धर्म के मूल भारतभूमि के गर्भ में निहित हैं। भागवत के अज्ञात लेखक ने जो कृष्ण के लिये किया, वही तुलसीदास राम के लिये करना चाहते प्रतीत होते हैं—अपने विशाल ग्रन्थ रामचरितमानस की रचना करने से वे किसी सम्प्रदायविशेष (उदाहरणत: रामानन्दी सम्प्रदाय) के धर्म का इतना प्रचार करना नहीं चाहते जितना कि रामभक्ति को कैसा ही विश्वव्यापक बना देना, जैसा कि भागवतपुराण ने उत्तरभारत में कृष्णभक्ति को बनाया और अब भी बना रखा है।

तुलसीदास और भागवतों का इष्टदेव एक ही है। यदि तुलसीदास ने कृष्ण की अपेक्षा राम के "रूप" और "नाम" को अधिक अच्छा समझा है तो यह वैयक्तिक रुचि का प्रश्न है और फिर, रामानन्दियों से उनके सम्बन्ध की सहायता से भी यह बात समझ में आती है। तुलसीदास में राम को विष्णु से पृथक् करने की प्रवृत्ति भी है और उन्हों ने वैष्णवों के प्रिय "अवतार" के सिद्धांत को गौण स्थान दिया है। यह प्रवृत्ति ग्रन्थ के प्राचीनतम भाग में विशेष द्रष्टव्य है। सम्भव है कि ऐसा रामानन्दियों के प्रभाव के फलस्वरूप हो। यह निश्चित है कि एक देवत्व का जो स्वरूप रामचरितमानस में सामूहिक प्रकार से उपलब्ध है वह भागवतपुराण की अपेक्षा अधिक शुद्ध और प्राचीन भागवतधर्म के अधिक समीप है। डा० भाण्डारकार[2] के अनुसार, इस प्राचीन भागवतधर्म के दो प्रमुख लक्षण हैं अर्थात् वासुदेव को परमब्रह्म और 'भक्ति' के मार्ग को मोक्ष का साधन मानना। इन विद्वान् के अनुसार लोकधर्म के इस सिद्धांत की कोई आध्यात्मिक आधार नहीं है, और फिर, गोपालकृष्ण से वासुदेव की एकरूपता भी बाद में सिद्ध की गई। तुलसीदास के देव, प्राचीन पाँचरात्रों के वासुदेव हैं पर उनका नाम राम है—रामचरितमानस में राम से अभिप्राय केवल दशरथ के पुत्र से ही नहीं, प्राय: वह परमात्मा का नाम भी है।

---

[1] यू. ब्युर्नूफ़—'प्रेफ़ास आ ला त्राद्युक्स्यों फ्रांसैज़ द्यु भागवतपुराण', पेरिस १८४०।

[2] "दि रामानुजीय ऐण्ड दि भागवत और पाञ्चरात्रसिस्टम्स" ७ वीं कांग्रेस ओरियंटालिशेन १८८८, पृ० १०१ इत्यादि।

पाँचरात्र की दृष्टि से, कृष्ण की अपेक्षा, तुलसीदास का राम को भक्ति का पात्र मानना सर्वथा न्यायसंगत है—रामविषयक समन्वय कृष्णविषयक समन्वय के समान मान्य है—बस अंतर इतना है कि वह प्राचीन भी कम है और लोकप्रिय भी कम। भागवतपुराण, रामचरितमानस से कई शताब्दियों पहले का ग्रंथ है, तथा लौकिक धर्म और कल्पना में इतना स्थान प्राप्त कर चुका है कि सामान्य जनता के लिये 'भगवान्', 'विष्णु', और 'कृष्ण' एक ही देवता के अभिन्न तत्व हो गये हैं। अत: यदि तुलसीदास रामचरितमानस की रचना करके कृष्ण की पूजा के बदले राम की पूजा का उपदेश देते और एक के स्थान पर दूसरे को बैठाते तो वे असफल रहते, क्यों कि प्राय: सम्पूर्ण उत्तरभारत कृष्ण भक्त है। परन्तु उनका ऐसी विचार था यह बात प्रमाणित नहीं की जा सकती। यदि रामचरितमानस में कृष्ण का तनिक भी उल्लेख नहीं है तो इसलिये कि रामविषयक समन्वय में इस अवतार का कठिनाई से समावेश होता। पर कृष्णविषयक समन्वय को तुलसीदास ने कम मूल्य की नहीं माना है—इसका प्रमाण उनकी 'कृष्णगीतावली' है जिसमें कृष्ण की स्तुति है। स्पष्ट है कि तुलसीदास कृष्ण को एक दूसरा स्वरूप मानते थे, राम का प्रतिद्वन्द्वी नहीं।

भागवतपुराण की तुलना में, रामचरितमानस धर्मसंश्लेषण की दिशा में एक नया प्रयास है और लौकिक हिन्दुधर्म के विभिन्न तत्वों को व्यापक रूढ़िप्रियता की स्थिति को मान्यता देता है। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार मानस "सनातन हिन्दुधर्म का विशुद्ध रूप"[1] है। धार्मिक संश्लेषण व रूढ़िप्रियता के इस द्वन्द्व का कारण तत्कालीन इस्लाम के विजयी आक्रमण से आहत हिन्दुधर्म की सभी सजीव शक्तियों को एक करने की आवश्यकता थी। एक महाकवि की प्रतिभा से उत्पन्न, व भक्ति पर आश्रित, रामचरितमानस, ऐतिहासिक दृष्टि से सुरक्षा की प्रतिक्रिया स्वरूप है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, तुलसीदास और उनके महान् समकालीन वैष्णव कवि सूरदास ने "इसी भक्ति के सुधारस से सींच कर मुरझाते हुए हिन्दु जीवन को फिर से हरा किया।" पर सूरदास या अन्य किसी भी कवि की अपेक्षा, रामचरितमानस के लेखक अपने देशवासियों की आत्मा में अधिक अच्छी तरह प्रवेश कर सके और राम में ही, 'पूज्य' 'विश्वात्मा', व्यक्त और अव्यक्त देव को दर्शा कर, उनकी बुद्धि और हृदय दोनों की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। यही कारण है कि यह ग्रन्थ इतना मान्य है और उत्तरभारत की जनता के धार्मिक व नैतिक जीवन पर इसका अद्वितीय प्रभाव रहा है और अब भी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है—"किसी श्रेणी का हिन्दु हो, वह अपने प्रत्येक जीवन में राम को साथ पाता है—संपत्ति में, विपत्ति में, घर में, वन में, रणक्षेत्र में, आनन्दोत्सव में, जहाँ देखिए वहाँ राम। . . . . गोस्वामीजी के वचनों में हृदय को स्पर्श करने की जो शक्ति है वह अन्यत्र दुर्लभ है।"[2]

समाप्त

---

[1] तुलसी दर्शन—अध्याय ८, "तुलसीमत की विशेषता"।

[2] रा. च. शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास, इलाहाबाद १९३५, पृ० ४।

ग्रन्थ-सूचि

(तिथिक्रमानुसार)

१—रामचरितमानस के प्रमुख संस्करण

१८८७ चरणदास कृत सम्पादन तथा व्याख्या, दो भाग, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १८८७, तृतीय संस्करण, १८९०।

१८८९ रामेश्वरभट्ट कृत सम्पादन तथा 'पीयूषधारा' टीका, आगरा, संवत् १९५६ (१८८९) [अनेक संस्करण]।

१९०२ सुखदरद्विवेदी, राधाकृष्णदास, श्यामसुन्दरदास, कर्किका प्रसाद तथा अमीर सिंह कृत सम्पादन व टीका, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, १९०२।

१९०८ तुलसीदास कृत (रामचरितमानस का) अयोध्याकाण्ड। राजापुर हस्तलिपि पर आश्रित, सम्पादक, लाला सीताराम, रायबहादुर, किशोर ब्रदर्ज़, इलाहाबाद १९०८ (द्वितीय संस्करण १९२१)।

१९२३ रामदासगौड़ कृत सम्पादन व टीका, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, संवत् १९८० (१९२३)।

१९२३ "तुलसीदास ग्रन्थावली", रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन व ब्रजरत्नदास कृत सम्पादन। जिल्द १, मूल रामचरितमानस, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् १९८० (१९२३)।

१९२७ श्यामसुन्दरदास कृत सम्पादन व टीका, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, १९२७।

१९३४ "मानस पीयूष", (नौ भाग) रामकुमार वर्मा रामवल्लभ व रामबालकदासजी की टीकाएँ व तिलक, प्रकाशक—शीतल सहाय, १९३४ इत्यादि।

१९३६ रामनरेश त्रिपाठीकृत सम्पादन तथा व्याख्या, हिंदी मंदिर, प्रयाग, संवत् १९९२ (१९३६)।

१९३७ विजयानन्द त्रिपाठी द्वारा सम्पादित मूल (पाठान्तर सहित), भारती भण्डार, काशी, १९३७।

१९३८ चिन्मनलाल गोस्वामी तथा नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा सम्पादित तथा टीकासहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, १९३८ (कल्याण मासिक का "मानसाङ्क")[1]

---

[1] हमारे अध्ययन का मूल।

२—यूरोपीय भाषाओं में रामचरितमानस के अनुवाद

१८३९ गार्सें द तासी—इस्त्वार द ला लितेराच्युर ऐंदुइ ए ऐंदुस्तानी, प्रथम संस्करण, १८३९-१८४७, द्वितीय जिल्द, पृ० २१५-२७२, रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड का फ्रांसीसी अनुवाद।

१८७१ अदालत खाँ—रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड का अंगरेज़ी भाषा में अनुवाद, कलकत्ता १८७१।

१८७६ ग्राउज़, एफ्. एस्.—दि प्रोलोग टु दि रामायण ऑफ़ तुलसीदास, ए स्पेसीमेन ऑफ़ ट्राँस्लेशन, ज. अ. एस्. बी. १८७६, १।

१८९७ ग्राउज़, एफ्. एस्.—इंग्लिश ट्राँस्लेशन ऑफ़ दि रामायण ऑफ़ तुलसीदास, इलाहाबाद १८७७-१८८१ (सातवीं बार, १९३७) [इ. टी.]।

१९०३ ग्रियर्सन, जि—"त्राद्युक्स्यों आँग्लेज़ द ला देस्क्रिप्स्यों द ला सेज़ों दे प्लुई ए द ल्लेतौन" (वर्षा तथा हेमन्त ऋतु के वर्णन का अंगरेज़ी अनुवाद) रामचरितमानस ४, १४ इत्यादि। ज. रा. ए. सो, १९०३, ४६३। "तुलसीदास, पोयट एण्ड रिलिजस रिफ़ौर्मर" (परिशिष्ट दो।

१९०९ रामेश्वर भट्ट, इंग्लिश ट्रांस्लेशन ऑफ़ दि रामायण ऑफ़ तुलसीदास, आगरा, १९०९।

१९५० वोदविल, शा०—त्राद्युक्स्यों फ्रांसैज़ द लयोध्याकण्ड द्यु रामायण द तुलसीदास (रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड का फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद) भूमिका तथा नोट सहित, पेरिस, १९५० (थीसिस)।

३—तुलसीदास सम्बन्धी सामान्य कृतियाँ

विल्सन, एच्. एच्.—स्केच आफ दि रिलिज्यस सेक्ट्स् ऑफ़ दि हिंदुज़, लंदन, १८३१ (वर्क्स, जिल्द १, व २)।

गार्सें द तासी—इस्त्वार द ला लितेराच्युर ऐंदुइ ए ऐंदुस्तानी, पेरिस, १८३९-१८४७, दो भाग।

ग्रियर्सन, जि. ए.—दि मोडर्न वर्नेक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्थान, कलकत्ता, १८८९ (प्राच्यविदों की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस, वियेना १८८६, में पढ़े निबंध का विस्तृत रूप—शीर्षक "मिडिवल वर्नेक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान विथ स्पेशल रेफ़रेंस टु तुलसीदास"। [मि. व. लि. हि.]।

ओमन, जे. सी.—दि मिस्टिक्स, असेटिक्स एण्ड सेंटस् ऑफ़ इण्डिया, लन्दन, १९०३।

मेकॉलिफ़—दि सिख रिलिजन (छ भाग), ऑक्सफ़ोर्ड, १९०९।

मिश्रबन्धु—हिन्दी नवरत्न, १९१०, चौथा संस्करण, लखनऊ, संवत् १९९५ (१९३८)।

भाण्डारकार, आर. जी.—वैष्णविज़्म, शैविज़्म, अण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम्ज़, स्ट्रासबुर्ग १९१३।

मेकनिकोल, एन.—इण्डियन थीईज़्म, ऑक्सफ़ोर्ड, १९१५।

मिश्रबन्धु—मिश्रबन्धुविनोद (३ भाग), इलाहबाद, १९१६।

ग्रीवज़, ई.—स्केच ऑफ़ हिंदी लिटरेचर, १९१८ (क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी फ़ौर इण्डिया)।

के, एफ़.—हिन्दी लिटरेचर, लंदन, १९२०।

फ़रकुहर—आउटलाइन ऑफ़ दि रिलिजस लिटरेचर ऑफ़ इण्डिया, ऑक्सफ़ोर्ड, १९२०।

कार्पेण्टर, आर. जी.—थीईज़्म इन मिडिवल इण्डिया, लंदन, १९२१।

शुक्ल, आर. सी.—हिंदी साहित्य का इतिहास, इलाहाबाद, संवत् १९८६, (१९२९)।

दास, एस्. एस्.—हिंदी भाषा और साहित्य, इलाहाबाद, संवत् १९८७, (१९३०)।

धीरेन्द्रवर्मा—हिंदी भाषा का इतिहास, इलाहाबाद, १९३३।

बाबू राम सक्सेना—इवोल्युशन ऑफ़ अवधी, इलाहाबाद, १९३७।

ग्रियर्सन, जि.—लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया, कलकत्ता, १९०४ से (जिल्द १, इण्ट्रोडक्शन, जिल्द ६, स्पेसिमेन ऑफ़ ईस्टर्न हिंदी)।

हेस्टिंग्ज़—एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलिजन एण्ड एथिक्स, एडिनबरो (तुलसीदास पर ग्रियर्सन लिखित निबंध)।

४—तुलसीदास व रामचरितमानस के विषय पर आलोचनाएँ

क—ग्रंथ

शिवनंदन सहाय—श्री गोस्वामी तुलसीदास, आराह, १९१६।

कार्पेण्टर, जे. एन्.—दि थियोलोजी ऑफ़ तुलसीदास, मद्रास, १९१८।

मेक्फ़ि, जे. एम्.—दि रामायण ऑफ़ तुलसीदास और दि बाइबल ऑफ़ नार्दन इण्डिया, एडिनबरो, १९३०।

दास, एस्. एस्. व बड़थ्वाल, पी.—गोस्वामी तुलसीदास, हिंदुस्तानी अकादेमी, इलाहाबाद, १९३१।

रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास, प्रयाग, इण्डियन प्रेस, १९३५।

सद्गुरुशरण अवस्थी—तुलसी के चार दल (दो भाग), इण्डियन प्रेस, १९३५।

माताप्रसाद गुप्त—तुलसी संदर्भ, इलाहाबाद, १९३५ ("हिंदुस्तानी" नामक पत्रिका में प्रस्तुत लेखों का संग्रह)।

राम नरेश त्रिपाठी—तुलसीदास और उनकी कविता, हिंदी मंदिर, प्रयाग, (इलाहाबाद) १९३७ (दो भाग)।

सूर्यकान्त शास्त्री—इण्डेक्स वर्बोरम टु दि तुलसीरामायण, लाहौर, १९३७।

बलदेव प्रसाद मिश्र—तुलसी दर्शन, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९३८।

हुक्कु, एच्.—एन एनालिसिस ऑफ़ तुलसीज़ क्राफ़्ट्स्मेनशिप इन दि रामचरितमानस, आगरा, १९३८ से (आगरा विश्वविद्यालय की संशोध डिग्री की थीसिस)।

माता प्रसाद गुप्त—गोस्वामी तुलसीदास, प्रयाग, इण्डियन प्रेस, १९४६ (समालोचनात्मक ग्रंथसूची सहित)।

ख—निबंध

ग्रियर्सन, जि. ए.—"नोट्स ऑन तुलसीदास" इण्डियन एंटिक्वेरी (इ. एं.) (१८९३), पृ० ८९, १२२, १९७, २२५, २५३।

टेसिटोरी, एल. पी.—"इल रामचरितमानस ए इल रामायण," (इटालियन निबंध का अंगरेजी अनुवाद) दे० इं. ए, ४१, (१९१२)।

ग्रियर्सन, जि. ए.—उपर्युक्त इटाली भाषा के निबंध की आलोचना, दे० ज. रा. ए. सो, १९१२, पृ० ७९४।

—"तुलसीदास" पर निबंध, इ. आर. इ, १२, पृ० ४६९।

—"तुलसीदास, पोयट एण्ड रिलिजस रिफ़ौर्मर", ज. रा. ए. सो, १९०३, पृ० ४४७।

—"इज़ दि रामायण ऑफ़ तुलसीदास ए ट्रांस्लेशन"? ज. रा. ए. सो, १९१३, पृ० १३३।

सीता राम—"दि ओरिजिनेलिटी ऑफ़ दि रामायण ऑफ़ तुलसीदास," ज. रा. ए. सो, १९१४, पृ० ४१६

बाबू राम सक्सेना—"डिक्लेशन ऑफ दि नाउन इन दि रामायण ऑफ़ तुलसीदास" इ. एं. ५२, (१९२३), पृ० ७१।

—"दि वर्ब इन दि रामायण ऑफ़ तुलसीदास", दि इलाहाबाद यूनिवर्स्टी सीरिज़)।

माता प्रसाद गुप्त—"एन इम्पौर्टेण्ट इण्टरप्रेटेशन इन दि रामचरितमानस कन्सर्निंग इट्स् डेट", ज. रा. ए. सो, १९३५, पृ० ७१७।

—तुलसी संदर्भ तथा अन्य निबंध, कल्याण, गोरखपुर, १९३०।

वोदविल, शा.—"ल प्रोब्लेम द ला कम्पोज़िस्यों द्यु रामायण हिंदी द तुलसीदास" (फ्रांसीसी में)। प्राच्य विदों की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस, पेरिस १९४८, की रिपोर्ट, पृ० १९३।

५—रामचरितमानस के मूल आधार

(प्रयुक्त सम्पादनों, अनुवादों अथवा अन्यकृतियों की सूचि)

वाल्मीकिरामायण

—वाल्मीकिरामायण का इतालवी संस्करण व अनुवाद (वंगला संस्करण)—अनुवादक तथा सम्पादक-गोरेसियो।

—वाल्मीकिरामायण का फ्रांसीसी अनुवाद, पेरिस, १९०३ अनुवादक ए. रूसेल।

—*(दक्षिणीसंस्करण के अनुसार) वाल्मीकिरामायण—सम्पादक टी. आर. कृष्णाचार्य (बम्बई, १९०५)।

—(पश्चिमोत्तर संस्करण) वाल्मीकिरामायण—सम्पादक विश्वबन्धु शास्त्री तथा पीताम्बरदत्त शास्त्री, लाहौर, १९२३।

—का. बुल्के, दि थ्री रिसेंशंस ऑफ़ दि वाल्मीकिरामायण, ज. ओ. रि. म. १७ (१९४९), प्रथम भाग।

अध्यात्मरामायण

—अध्यात्मरामायण का अंगरेज़ी अनुवाद—लाला बैजनाथ कृत। इलाहाबाद, १९१३।

—*संस्कृत मूल तथा हिंदी अनुवाद—मुनिलाल कृत, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् १९८९ (१९३२) [अ. रा.]।

—"स्टडीज़ ऑन दि अध्यात्म रामायण" (विस्तृत भूमिका सहित सम्पादन)—पी. सी. बागचीद्वारा (कलकत्ता संस्कृत सीरिज, संख्या ११, १९३५)।

योगवाशिष्ठरामायण

—योगवाशिष्ठ का अंगरेज़ी अनुवाद—मित्र कृत, कलकत्ता, १८९९।

—दि फ़िलोसोफ़ी ऑफ़ दि योगवाशिष्ठ—बी. एल. आत्रेय कृत, मद्रास, १९३६।

अद्भुतरामायण

—संस्कृत मूल, श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई।

—ग्रियर्सन, जि. "ऑन दि अद्भुत रामायण," बु. स्कू. ओ. स्ट. जिल्द चार, (१९२६), भाग १, पृ० ११-२७।

शिव-(उप) पुराण

—शिवपुराण भाषा, मुंशी नवाब किशोर साहब, लखनऊ, १९२५।

—* संस्कृत मूल, हिंदी अनुवाद, श्री इन्द्रब्रह्मचारी महाराज कृत, मथुरा, संवत् १९९८, (१९३१) [शि. पु.]।

महानाटक

—हनुमाननाटक, दामोदर का संस्करण तथा मोहनदास कृत व्याख्या सहित, बम्बई १८६०, (द्वितीय संस्करण, १८८६)।

—महानाटक (९ अङ्कों में), मधुसूदन कृत, सम्पादक जीवानंद विद्यासागर, कलकत्ता, १८७८ (द्वितीय संस्करण १८९०)।

—*हनुमानकृत महानाटक, कालिकृष्ण बहादुर द्वारा सम्पादित तथा अनूदित, कलकत्ता, शकाब्द १८४० [महाना०]।

—एस्टेलर ए. द्वारा सम्पादित महानाटक का प्राचीनतम संस्करण, लाइपत्सिग, (जर्मनी) १९३६ [डि ऐल्टिस्ट रिंसेंशन डेस महानाटकम्]।

प्रसन्नराघव

—* जयदेव कृत प्रसन्नराघव, परांजपे तथा पांसे द्वारा सम्पादित तथा भूमिका व टिप्पणियों। सहित, पूना, १८९४ [=प्र० रा०]

भागवतपुराण

—* संस्कृत मूल तथा ब्युर्नुफ़ कृत फ़ांसीसी अनुवाद सहित, पेरिस, १८४० [भा. पु.]

नोट—अध्ययन के लिये हमने ताराङ्कित ग्रंथों से सन्दर्भों को उद्धृत किया है।

विशेष-सूचि

अगस्त्य, राम के प्रति भक्त, I, ३५-३६; II, १३

अगस्त्यरामायण, मूल आधार, I, ३५-३६, ८६

अत्रि, राम के प्रति भक्त, II, ८-९

अद्भुतरामायण, मूल आधार, xviii-xix, I, ७४-७५, ८३, १२७; II, २०

अद्वैत, I, ६२-६४, १९०; II, १५, १०६, ११०, १३९, १६०

अध्यात्मरामायण, मूल आधार, xv-xvi, I, ५९-६६, ९२-१०७, १५३-१५४, १५५-१५६, १६१-१६६, १७२-१७३, १८५-१८६, १९०; II, ७, १२-१६, १८-२०, २६-२७, ३३-३९, ४८, ७०, ८९-९०

अनन्तता, राम के चरित की, I, १३९, १६०

अवतार, I, ६७-६८, १८७; II, ८, १००
  - कारण, I, ८९-९१

अहल्या, राम के प्रति भक्त, I, १११-११३

ईश-ईश्वर, हरि-भगवान्, II, ११६, १३३, १३९, १४१, १४९
  - ब्रह्मा-विधि, I, १८८ और सर्वत्र
  - ब्रह्म, I, १९०

कालनेमि, राम के प्रति भक्त, I, ८९-९०

कुमारसंभव, मूल आधार, I, ३९-४०, ४२, ४३, ४५-५२

कुम्भकर्ण, पूर्वजन्म = विजय, दे० **रावण** (जय)
  - राम के प्रति भक्त, II, ९१-९२

कृष्ण (हरि), I, १६, २८, ४८; II, १०५, १७३-१७४
  - वासुदेव, I, ८२, ८६
  - मुकुन्द, I, ९४; II, ९७, ११०

कैकेयी, पश्चात्ताप, I, १७९

- **कौसल्या,** पूर्वजन्म, (अ) अदिति, (आ) शतरूपा; दे० **दशरथ**
  - व्यक्तित्व, I, १४९-१५०, १७२
  - राम के प्रति भक्त, I, १०२-१०३
- **गुह,** राम के प्रति भक्त, I, १५८, १७५-१७७; II, १०२
- **जटायु,** राम के प्रति भक्त, II, १३
- **जनक,** राम के प्रति महाभक्त, I, ११५, १३५, १८१-१८२
- **जाम्बवान्,** राम के प्रति भक्त, II, ४७
- **तत्त्व,** I, ४, १७, ५९
- **तारा,** राम के प्रति भक्त, II, ४१
- **तुलसीदास,** अपने पक्ष की वकालत, I, ६-१०, २०, २८
  - गुरु, vi-vii, I, ५, १९, १४४
  - राम के दर्शन, viii, I, १६०
  - प्रस्तुतकर्ता, I, २०, ८३, ९६, १०७, १४३; II, ५, १४४
- **दशरथ,** पूर्वजन्म, (अ) कश्यप, I, ७०, ७५
  - (आ) मनु और शतरूपा, I, १७४; II, १००-१०१
- **नाम,** राम का, I, १३-१६; II, १८, ३०-४१, ९७, १३७
- **नारद,** राम-हरि के प्रति महाभक्त, I, ७२-७९; II, ३०-३१, ११८-११९
- **निर्गुण-सगुण,** I, १३-१६, १८८, १९०; II, १३ और सर्वत्र
  - सगुण की प्रमुखता, II, १०६, ११०, ११३, ११६, १३१ इत्यादि, १३९-१४०, १४९-१५०
- **परशुराम,** I, १२४, १२७-१३२
  - शिव के प्रति भक्त, I, १२८
  - विष्णु का अवतार, II, १००
  - राम के प्रति भक्त, I, १३२
- **प्रसन्नराघव,** मूल आधार, xviii, I, ११६, १२२-१२३, १२९; II, ५२, ५६-५९, ७०, ७९-८२, १६३
- **प्रहस्त,** राम के प्रति भक्त, II, ८०, ८४-८५
- **भक्त,** II, १४२, १७२
- **भक्ति,** मानस का विषय, II, १७२
  - भक्ति-सगुण, I, १५-१६; II, १०१
  - भक्ति और ज्ञान, I, ६०-६१, १५५; II, १३, १५-१६, १०६, ११०, ११६, ११८, १३३, १४१-१४३, १४६-१४७, १५०

भक्ति और धर्म-नीति, I, १७४-१७५, १८२-१८३; II, ६५
भक्ति और जाति, I, १७८; II, १०२-१०३, १३६ और सर्वत्र
भक्ति के भेद, I, १६४-१६५; II, २६
भक्ति-प्रपत्ति, II, २६-२८, १०२, ११८, १३४, १४९ और सर्वत्र
भेद-भक्ति, II, ११, १०१, १४९-१५०
बाल-राम के प्रति भक्ति, I, ६१, ९६-९७, ९९-१०५; II, १३२-१३४, १४०

भगवान्, राम-हरि, I, ५-१३, ९३-९४, १०९, १८६-१८८; II, १४९, १७४ और सर्वत्र

भरत, राम के प्रति महाभक्त, I, १७४ इत्यादि, १८३-१८४; II, १०९

भरद्वाज, राम के प्रति भक्त, I, ३०-३१, १५८; II, १०२

भागवत-पुराण, मूल आधार, xx, I, ३८, ६९, ८२-८३, ८९-९१, ९३-१००, ११३, ११४, १२५-१२६; II, ४४-४५, ८४, १३२, १४५, १५०-१५१, १६०-१६१, १७३-१७४

भागवत-मत, I, १३; II, १७३-१७४
दे० **भगवान्**, **लीला**, **अनन्तता**, राम के चरित की, **अवतार**, **भक्ति**, **राम-नाम**, **राम-कृपा**

भुशुण्डि, कथा का प्रस्तुतकर्ता, xx, I, १९-२०, २४-२५, ६५-६६, ९१; II, २, ७, २२, ३२-३३, १०९, १११-११३, ११४, १२०, १२४-१२५, १२८ इत्यादि, १४८-१४९, १६४-१६६
राम के प्रति महाभक्त, II, ६६, १३१-१४१
बाल-राम के प्रति भक्त, I, १००-१०४; II, १३२-१३४, १४०
भुशुण्डि-रामायण, II, १२८-१३१

भुशुण्डि-रामायण, मूल आधार, xix, I, ६५-६६; II, ३३, ८६, १०६, १११, १४८-१५१, १६४-१६६, १७०-१७१

मनु, हरि के प्रति महाभक्त, I, ८०-८३

मन्दोदरी, राम के प्रति भक्त, II, ६३-६४, ८३-८४, ८६, ९७

महानाटक, मूल आधार, xviii, I, १२१-१२५, १३०, १६१; II, ८४-८५, ९६, १६३

माया, कपट, I, ७८, १८९-१९०; II, ७१, ८७ और सर्वत्र
अविद्या, I, ६२, १८९-१९०; II, ७१, १५१ और सर्वत्र
योगमाया, I, १८०
माया-सीता दे० **सीता**
माया-पार्वती दे० **सती-पार्वती**
माया-अविद्या, I, ६२; II, १४१

- माया, राम से नचायी गयी कठपुतली, I, १०२; II, १०५
- माया-भक्ति, II, १४१
- माया-कृपा, I, ७९; II, ३१, १२८, १३१ इत्यादि, १४९ और सर्वत्र
- दे० **राम-कृपा**

मारीच, राम के प्रति भक्त, I, ११०; II, १९-२१

माल्यवान्, राम के प्रति भक्त, II, ८८

याज्ञवल्क्य, प्रस्तुतकर्ता, I, १९, २७, ३०-३१, ३९, ५७, ६७, ७३, ७८-७९, ८३, ८७, ९०; II, १२५, १३०-१३१, १७०
- राम के प्रति महाभक्त, I, ३१, ९१

राम, परब्रह्म, मायापति, I, ३६, ५५, ७७-७८, १०२, १८७; II, ४७, ६१, ७१, ११०-१११ और सर्वत्र
- राम-विष्णु, I, ५, ७०, ७२, ७७-७८, ८९-९०; II, ८, ११, २३, १००, १०५, १११, १४५, १६२
- विष्णु से भिन्न, I, ३७-३८, ५५-५६, ८२, १८६; II, १६२ और सर्वत्र
- जितेन्द्रिय, I, १४७, १५२, १८९; II, २२-२३, २९, ३३, ४५-४६, ७१, ८९, ९५
- सर्वज्ञ, I, १०६; II, ४६, ९८
- अद्भुत-कार्य, I, १७९-१८०; II, ४६
- रामकृपा, I, ७९, ११३, १५७-१५८; II, ६-७, २३, २७, ६६-६७, ८८, १०६ और सर्वत्र
- निर्हेतु-कृपा, II, ६५-६७, ११६, १५०, १५१

रामचरितमानस
- प्रबन्ध का शीर्षक, I, ११, १८, २४-२८; II, १२४-१२५, १२९-१३१, १४०, १४३-१४४, १४८-१४९, १७०
- रचनाकाल, ix, I, २२-२४, १९१-१९४; II, १७१
- रचना, I, २२-२४, २८-२९, ६६, १०६-१०७, १४०-१४१, १९१-१९४; II, १२३-१२६, १२८-१३१, १३५-१४३, १४६, १४७-१५१, १६८-१७१
- मूल-ग्रन्थ (१) छन्दस्, ix-x; I, २-३, ३०, ६७, ८८, ९२, १०८, १४२, १६३-१६४; II, १, ८-९, १७, ३८, ४९, ७२, ९४, ९६, १०६-१०७, १०९, ११३-११४, ११५, १२०
  - (२) प्रक्षेपक, I, ८८, १३७, १५९; II, १०, ६४
  - (३) पुनर्लेखन, I, ११-१२, २२-२३, ६५, १३७, १४१, १५९, १६३, १८४, १९१-१९२; II, १०, ३९, ९४, १६७, १६९, १७१
  - (४) संस्कृत, I, ३-४, २०, १४१, १८४; II, ७, ११०, १३८, १४५-१४६

- **रावण**
  - पूर्वजन्म, (१) जय (और विजय) : I, ६९
    - (२) जलंधर, I, ७०
    - (३) प्रतापभानु, I, ८६; II, १०६
  - स्वभाव, I, ८८-८९, ९०; II, २२, ७०-७१, १०६
  - राम के प्रति भक्त, II, १९, २२
- **लक्ष्मण,** मानव, I, ९६, १५१, १५५; II, ७१
  - शेष, I, ९६, १६३; II, ४७, ८९, ९३, ९५, १०५
- **लीला,** (राम के), I, २२, ६०, ९१, १८९; II, १०५, १४९
- **वसिष्ठ,** राम के प्रति भक्त, II, ११८
- **वाली,** राम के प्रति भक्त, II, ३९
- **वाल्मीकि,** राम के प्रति भक्त, I, १६१-१६३
- **वाल्मीकि-रामायण,** मूल आधार, xiii-xiv, I, ४, ९२-९६, १०५-१०६, १८५-१८६; II, १४६, १५३-१५७ और सर्वत्र
- **विभीषण,** राम के प्रति महाभक्त, II, ५४-५५, ६४-६६, ६७
- **विश्वामित्र,** राम के प्रति भक्त, I, १०८-१०९
- **विष्णु,** अवतार, I, ९६, १३२
  - व्यक्तित्व, I, ५०; दे० **राम-विष्णु**
- **शबरी,** राम के प्रति भक्त, II, २५-२७
- **शरभङ्ग,** II, ११
- **शाक्त,** I, ५५-५६, ६३, ८२-८३, १९०; II, १४९, १७२
- **शिव,** प्रस्तुतकर्ता, xvii, I, १८-१९, २४, २७, ३०-३१, ५९-६१, ६४-६५, ६७, ७९, ८३, ८७, ८९, ९२, १०८, १३७; II, २, ३३, ४९, ७२, १०९, ११५, ११९, १२०, १२४-१२६, १४३-१४४, १६८-१७१
  - परब्रह्म, I, ५१, ५६; II, १३८
  - महादेव, II, १६३
  - राम के प्रति महाभक्त, I, १७, ४३, ५७, ६१, १३२, १८८; II, १०२, ११०, १४९, १६२
  - बाल-राम के प्रति भक्त, I, ६१
  - शिव-भक्ति, I, ५७, ७७, १३२; II, ११६-११७, १३७, १४९, १६३
  - “ शिव-रामायण ”, II, १६८-१७०

- **शिव-पुराण,** मूल-आधार, xvii, I, ३३-३८, ३९-५८, ७४-७८, १३४-१३५; II, १६१-१६३
- **शुक,** राम के प्रति भक्त, II, ६८
- **सती-पार्वती,** प्रकृति, I, ५०-५१
  - शक्ति-माया, I, ५६
  - शिव के प्रति भक्त, I, ४६-४७, ४८, ५६
- **सरस्वती,** राम के प्रति भक्त, I, १४७
- **सांख्य,** II, ८३-८४
- **सीता,** मानव-रूप, I, ६४, १३६, १४०, १८७; II, ४७, ७१, १०५, १४९
  - जगज्जननी, I, १८७; II, ८, ११३
  - शक्ति-माया, I, ३७, ८२, ११८, १६३, १८०; II, ८, १११
  - अद्भुतकार्य, I, १३३, १८०; II, १९, ३३, ९८-९९
- **सुग्रीव,** राम के प्रति भक्त, II, ३९
- **सुतीक्ष्ण,** राम के प्रति भक्त, II, १२-१३
- **सुमित्रा,** राम के प्रति भक्त, I, १५१
- **स्वयंप्रभा,** राम के प्रति भक्त, II, ४६
- **हनुमान्,** राम के प्रति महाभक्त, II, ३६, ३७, ५२-५५, ६०, ६३-६४, ७१, ९०-९१

टिप्पणियों में दिये हुए फ्रांसीसी मूल ग्रन्थ के पत्राङ्कों के संबन्धी हिन्दी अनुवाद ग्रन्थ के पत्राङ्कों की सूचि

भाग	पृष्ठ	पादटिप्पणी	फ्रांसीसी मूल का पृष्ठ	हिन्दी अनुवाद का पृष्ठ
I	vii	२	४	I, ५
,,	xx	,,	१७	I, १९
,,	xxii	,,	५	I, ६
,,	४	,,	१५	I, १७
,,	११	३	२१	I, २२
,,	२४	१	१७०	I, १९१
,,	२५	,,	३२३	II, १७०
,,	२७	३	२८७-२८८; ३०२	II, १३०-१३१; १४७
,,	२८	१	२८६-२८७	II, १२९
,,	३७	३	७५	I, ८२
,,	६१	१	२७४	II, ११५
,,	६५	,,	२७८	II, ११९
,,	,,	२	२८२	II, १२४
,,	,,	४	,,	,,
,,	६६	१	१७१-१७२	I, १९२-१९३
,,	,,	२	२९९	II, १४३
,,	८२	३	८७	I, ९८
,,	९६	१	२३५	II, १०५
,,	१०४	२	२८८	II, १३१
,,	११२	६	१०२	I, ११४
,,	,,	,,	१३९-१४०	I, १५६-१५७
,,	११४	२	,, ,,	,, ,, ,,
,,	११८	,,	१२१	I, १३५
,,	१३२	१	२६०	II, १००

भाग	पृष्ठ	पादटिप्पणी	फ्रांसीसी मूल का पृष्ठ	हिन्दी अनुवाद का पृष्ठ
I	१४१	२	१७०-१७३	I, १९१-१९४
,,	,,	३	२५	I, २८
,,	,,	४	१६३-१६४	I, १८४-१८५
,,	१८०	२	१२१	I, १३५
,,	१८४	१	१२२	I, १३६-१३७
,,	,,	२	१२६	I, १४१
,,	१८५	१	१२३	I, १३७
,,	१८७	,,	१४५-१४६	I, १६३-१६४
,,	१९०	,,	११	I, १३
,,	१९२	,,	१६५	I, १८५
II	७	,,	२८४-२८५	II, १२७
,,	,,	२	२९०	II, १३३
,,	११	४	२६५	II, १०६
,,	,,	,,	३०४	II, १४९-१५०
,,	१९	,,	२३१-२३२	II, ६७
,,	६७	१	२८८	II, १३१
,,	८६	३	१७८	II, ५ इत्यादि
,,	,,	४	१९२	II, २२
,,	,,	५	२१०	II, ४१
,,	८९	४	१९३	II, २३
,,	९०	२	१९१	II, २०
,,	९५	३	१८९	II, १७
,,	९६	,,	१८९ पादटिप्पणी १	II, १७ पादटिप्पणी २
,,	९९	१	१९१	II, २०
,,	१०१	,,	१८३	II, ११
,,	,,	२	१८९ पादटिप्पणी १	II, १७ पादटिप्पणी २
,,	११४	३	१९९	II, ३० इत्यादि
,,	११५	४	२००	II, ३१
,,	११९	३	५८-५९	I, ६५
,,	१२५	२	२७-२८	I, ३१
,,	१२८	,,	१७८-१७९	II, ६-७
,,	,,	४	६७-६९	I, ७४-७६
,,	,,	५	२००	II, ३०

भाग	पृष्ठ	पादटिप्पणी	फ्रांसीसी मूल का पृष्ठ	हिन्दी अनुवाद का पृष्ठ
II	१२९	३	२२	I, २५
,,	१३०	१	२४	I, २८
,,	१३२	३	९०	I; १००
,,	१३३	,,	९२-९३	I, १०३
,,	१३५	,,	२८३	II, १२५
,,	१४३	४	२७८	II, ११९
,,	,,	५	२८२	II, १२४
,,	१४४	३	१७	I, १९
,,	,,	,,	५८	I, ६४
,,	१४५	१	१३-१४	I, १५
,,	,,	२	३१९-३२०	II; १६६-१६७
,,	१४६	१	३-४, ८-१०	I, ४, I, १०-१२
,,	१४७	,,	१८-१९	I, २१
,,	१४८	,,	५८-५९	I, ६४-६५
,,	,,	२	५४	I, ६०
,,	१५३	१	xv	I, xiv
,,	१५६	४	१७८-१७९	II, ६-७
,,	,,	,,	२१०, २१३	II, ४१, ४५
,,	,,	५	२४२	II, ७९
,,	१५७	१	५३-५४	I, ५९-६०
,,	१५८	,,	८४	I, ९३
,,	,,	,,	१००-१०१	I, १११
,,	,,	२	१३१-१३९	I, १४६-१५६
,,	१५९	,,	२४५-२४६	II, ८४
,,	१६०	१	२६५-२६६	II, १०६
,,	१६१	,,	xix	I, xvii
,,	१६२	३	५१	I, ५७
,,	१६४	१	९०	I, १००
,,	१६६	,,	१७०	I, १९१ इत्यादि
,,	,,	२	३०० पादटिप्पणी ४	II, १४५ पादटिप्पणी २
,,	१६७	१	२०-२२	I, २३-२५
,,	,,	२	१२४-१२५	I, १३९-१४०
,,	,,	३	१२२ व १२६	I, १३६ व १४१

भाग	पृष्ठ	पादटिप्पणी	फ्रांसीसी मूल का पृष्ठ	हिन्दी अनुवाद का पृष्ठ
II	१६७	३	१६३-१६४	I, १८४-१८५
,,	१६८	१	३२०	II, १६७
,,	१६९	,,	१७	I, १९
,,	,,	२	२७-२८	I, ३०-३१
,,	,,	३	२८२-२८४	I, १२४-१२६
,,	१७०	१	३०२	II, १४७
,,	१७१	,,	१९	I, २२

विषय - सूचि

प्रथम भाग

पृष्ठ

प्राक्कथन .. iii-iv

भूमिका .. v-xxii

अध्याय १—रामचरितमानस का बालकाण्ड—आमुख .. १-२९

आमुख १; वन्दना ३; आमुख का प्रथम भाग ६; आमुख का दूसरा भाग १८; सम्पूर्ण रामचरितमानस में आमुख २८;

अध्याय २—रामचरितमानस का बालकाण्ड—शिवचरित .. ३०-५८

भूमिका ३०; सती-चरित ३२; दक्ष-यज्ञ ३७; पार्वती-चरित ३८; मानस का "पार्वती-चरित" और "पार्वती-मंगल" ५३; रामचरितमानस में शिव-चरित का स्थान ५५;

अध्याय ३—रामचरितमानस का बालकाण्ड—शिवपार्वती संवाद .. ५९-६६

शिव का व्याख्यान ६१; रामचरितमानस में शिव-पार्वती संवाद ६६;

अध्याय ४—रामचरितमानस का बालकाण्ड—अवतार के कारण .. ६७-९१

जय-विजय उपाख्यान ६९; जलन्धर उपाख्यान ७०; नारद-मोह ७२; नारद-मोह और शिवपुराण ७४; नारद-मोह में शिव और विष्णु ७७; मनु-सतरूपाचरित ७९; प्रतापभानु-चरित ८३; रावण-चरित ८७; रामचरितमानस में अवतार के कारण ८९;

अध्याय ५—रामचरितमानस का बालकाण्ड—राम का जन्म तथा शैशव .. ९२-१०७

देवसभा ९२; रामजन्म ९६; राम का शैशव १०१; राम की कुमारावस्था १०५;

अध्याय ६—रामचरितमानस का बालकाण्ड—राम की युवावस्था तथा विवाह .. १०८-१४१

मिथिलायात्रा १०८; मिथिला में राम तथा लक्ष्मण ११४; धनुर्यज्ञ तथा सीता-स्वयंवर ११९; परशुरामकथा १२७; राम तथा सीता का विवाह

पृष्ठ

१३३; बालकाण्ड का राम-सीता-विवाह तथा जानकीमंगल, १३७; रामचरितमानस में राम की युवावस्था १४०;

अध्याय ७—रामचरितमानस का अयोध्याकाण्ड .. १४२-१९४

अयोध्याकाण्ड का पूर्वार्ध १४३; वन्दना १४४; वनगमन १४४; राम की यात्रा १५२; दशरथ का देहावसान १६६; अयोध्याकाण्ड का उत्तरार्ध १६८; भरत की यात्रा १७१; चित्रकूट में भरत १७८; अयोध्याकाण्ड की विशेषताएँ १८५; अयोध्याकाण्ड की पूर्ववर्तिता १९१;

द्वितीय भाग

अध्याय ८—रामचरितमानस का अरण्यकाण्ड .. १-३४

कथा का सारांश २; वन्दना ४; अरण्यकाण्ड के छ: प्रारम्भिक पद्य ४; वन में राम व लक्ष्मण—तपस्वियों से भेंट १०; पञ्चवटी में लक्ष्मण को राम का उपदेश १४; राक्षसों से युद्ध—सीताहरण १७; सीता की खोज में राम की शबरी से भेंट २४; पम्पासर पर राम व लक्ष्मण २८; रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड की विशेषताएँ ३२;

अध्याय ९—रामचरितमानस का किष्किन्धाकाण्ड .. ३५-४८

कथासार ३५; (सुग्रीव के निवासस्थान) किष्किन्धा में राम व लक्ष्मण ३६; वर्षा तथा शरद् ऋतुका वर्णन ४१; किष्किन्धाकाण्ड की विशेषताएँ ४८;

अध्याय १०—रामचरितमानस का सुन्दरकाण्ड .. ४९-७१

कथा का सार ४९; सुन्दरकाण्ड का पूर्वार्ध ५२; सुन्दरकाण्ड का उत्तरार्द्ध ६३; सुन्दरकाण्ड की विशेषताएँ ७०;

अध्याय ११—रामचरितमानस का लंकाकाण्ड .. ७२-१०६

लंकाकाण्ड का कथासार ७२; १—विद्रोह का आरम्भ (१-३९) ७९; २—लंका में युद्ध (३९-१०९) ८७; ३—लंकाकाण्ड की समाप्ति (११०-१२१) ९९; ४—रामचरितमानस के लंकाकाण्ड की विशेषताएँ १०३;

अध्याय १२—रामचरितमानस का उत्तरकाण्ड—पूर्वार्ध .. १०७-११९

उत्तरकाण्ड के पूर्वार्ध का कथासार १०७; १—कथा की समाप्ति १०९; २—रामकथा का सैद्धांतिक परिशिष्ट ११५;

पृष्ठ

अध्याय १३—रामचरितमानस का उत्तरकाण्ड—उत्तरार्द्ध १२०-१५२

उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध का सारांश १२०;

१—भूमिका १२३; २—गरुड़मोह १२६; ३—भुशुण्डिद्वारा कथित रामायण १२८; ४—भुशुण्डि-गरुड़ संवाद—भुशुण्डि-मोह १३१; ५—भुशुण्डि चरित १३५; ६—भुशुण्डि चरित का धार्मिक परिशेष १४१; ७—रामचरितमानस का उपसंहार १४३; ८—उत्तरकाण्ड की भुशुण्डिरामायण की गठन १४७;

कागदर्शन १४९;

अध्याय १४—रामरितमानस के मूलाधार व उसकी रचना .. १५३-१७४

१—मूल आधार १५३;

अ—वाल्मीकिरामायण तथा रामचरितमानस १५३; आ—अध्यात्मरामायण तथा रामचरितमानस १५७; इ—भागवतपुराण तथा रामचरितमानस १६०; ई—शिव-पुराण तथा रामचरितमानस १६१; उ—रामाश्रयी नाटक तथा रामचरितमानस १६३; ऊ—भुशुण्डिरामायण तथा रामचरितमानस १६४;

२—मानस की रचना १६६;

क—रामचरित १६६; ख—शिव-रामायण १६८; ग—भुशुण्डि-रामायण १७०;

रामचरितमानस का महत्त्व १४१

ग्रन्थ-सूचि .. १७५-१८०

विशेष-सूचि .. १८१-१८६

टिप्पणियों में दिये हुए फ्रांसीसी मूल ग्रन्थ के पत्राङ्कों के संबन्धी हिन्दी अनुवाद ग्रन्थ के पत्राङ्कों की सूचि .. १८७-१९०

PUBLICATIONS DE L'INSTITUT FRANÇAIS D'INDOLOGIE

NOS.

1. Kārāvelane—*Kāreikkālammeiyār.* Oeuvres éditées et traduites. Introduction par Jean Filliozat. 1956
2. Jean Filliozat—*Les Relations Extérieures de l'Inde* (1)
    1. *Les Échanges de l'Inde et de l'Empire Romain aux Premiers Siècles de l'Ère Chrétienne.*
    2. *La Doctrine Brahmanique à Rome au IIIème Siècle.* 1956
3. Madeleine Biardeau—*Le Tattvabindu de Vācaspatimiśra.* Édition critique, traduction et introduction. 1956
4. J. Monchanin, J. Filliozat, A. Bareau—*Entretiens* 1955. 1956
5. Louis Renou—*Études sur le Vocabulaire du Ṛgveda.* Première Série. 1958
6. Suzanne Siauve—*La Voie vers la Connaissance de Dieu* (*Brahma-Jijñāsā*) *selon l'Anuvyākhyāna de Madhva.* 1957
7. Dev Raj—*L'Esclavage dans l'Inde Ancienne d'après les Textes Palis et Sanskrits.* Avec une préface du Dr. Jean Filliozat, Professeur au Collège de France 1957
8. Alain Daniélou—*Tableau comparatif des intervalles musicaux.* 1958
9. Alain Daniélou—*La Musique du Cambodge et du Laos.* 1957
10. André Bareau—*La Vie et l'Organisation des Communautés Bouddhiques Modernes de Ceylan.* 1957
11. Alain Daniélou et N. R. Bhatt—*Textes des Purāṇa sur la Théorie Musicale. Vol. I, Édition critique, traduction française et introduction,* 1959
12. Charlotte Vaudeville—*Kabīr Granthāvalī* (*Doha*). Avec introduction, traduction et notes. 1957
13. Madeleine Biardeau—*Sphoṭa Siddhi* (*La Démonstration du Sphoṭa*) *par Maṇḍana Miśra.* Introduction, traduction et commentaire. Texte Sanskrit établi par N. R. Bhatt avec la collaboration de T. Ramanujam. 1958
14. Suzanne Siauve—*Les Noms Védiques de Viṣṇu dans l'Anuvyākhyāna de Madhva* (*Brahma-Sūtra* I, 1, *adhikaraṇa* 2 *à* 12). Texte avec traduction et notes. 1959
15. Charlotte Vaudeville—*Étude sur les Sources et la Composition du Rāmāyaṇa de Tulsī-Dās.* Traduction en hindi par J. K. Balbir. fasc. I 1959; fasc. II, 1965
16. Alain Daniélou et N. R. Bhatt—*Le Gītālaṃkāra.* L'ouvrage original de Bharata sur la musique, Édition critique, traduction française et introduction. 1959
17. Rasik Vihari Joshi—*Le Rituel de la Dévotion Kṛṣṇaïte.* Préface par Jean Filliozat. 1959